श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

(४४)

सरल जैन रामायण

(प्रथम भाग)

रचयिता

अध्यात्मरत्न ब्र० कस्तूरचन्द जी

"नायक"

प्रकाशक

मंत्री श्री सहजानन्द शास्त्र माला

२०१ पुलिस स्ट्रीट मेरठ सदर (उ. प्र.)

अक्टूबर सन् १९५५

[प्रति रुपया कमीशन व १५ प्रति खरीदने पर १ प्रति विना मूल्य।]

न्यो० ३) रुपये
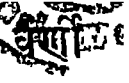
श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तकों की शुभ नामावली निम्न प्रकार हैं:—

१	श्रीमान्	ला०	महावीर प्रसाद जीजैन बैंकर्स सदर मेरठ	३००१)
२	,,	,,	मित्रसैन जी नाहरसिंह जी जैन मुजफ्फरनगर	१००१)
३	,,	,,	प्रेमचन्द जी ओमप्रकाश जी निवार वर्कस मेरठ	१००१)
४	,,	,,	सलेखचन्द जी लाल चन्द जी मुजफ्फरनगर	११०१)
५	,,	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस देहरादून	१००१)
६	,,	,,	दीपचन्द जी जैन रईस देहरादून	१००१)
७	,,	,,	वारूमल जी प्रेमचन्द जी जैन मसूरी	११०१)
८	,,	,,	बाबूराम जी मुरारीलाल जी जैन ज्वालापुर	१००१)
९	,,	,,	केवलराम जी उग्रसैन जी जगाधारी	१००१)
१०	,,	,,	गैंदामल जी दगडूसाह जी जैन सनावद	१००१)
११	,,	,,	मुकन्दलाल जी गुलशनराव जैन नईमंडीमु०	१००१)
१२	,,	,,	कैलाशचन्द जी जैन देहरादून	१००१)
१३†	,,	,,	शीतल प्रसाद जी जैन मेरठ सदर	१००१)
१४†	,,	,,	सुखवीरसिंह जी हेमचन्द जी सर्राफ बड़ोत	१००१)
१५†	,,	,,	बाबूराम जी अकलंक प्रसादजी जैन रईस तिस्सा	१००१)
१६†	,,	,,	जयकुमार वीरसैन जी सर्राफ मेरठ	१०००)
१७†	,,	,,	फूलचन्द बैजनाथ जी मुजफ्फरनगर	१०००)
१८†	,,	,,	सेठमोहनलालजी ताराचन्दजी बड़जात्या जयपुर	१००१)
१९†	,,	,,	सेठ भवरीलाल जी जैन कोडरमा	१०००)
२०†	,,	,,	बा दयाराम जी जैन S. D. O. मेरठ सदर	१०००)
२१†	,,	,,	मुन्नालाल यादवराय जी मेरठ सदर	१०००)
२२×	,,	,,	जिनेश्वरदास जी श्रीपाल जी जैन शिमला	१००१)
२३×	,,	,,	बनवारीलाल जी निरंजनलालसे जी शिमला	१००१)

नोट—जिनके कुछ रुपये आगये है उनके पहले †यह निशान अंकित है।
×इनके रुपये इन्हीं के पास है। और सबके रु० आ गये हैं।

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

—.०★०:—

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥

१

मैं वह हूँ जो हैं भगवान। जो मैं हूँ वह हैं भगवान॥
अन्तर यही ऊपरी जान। वे विराग यह रागवितान॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान। अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान॥
किन्तु आशवश खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अजान॥

३

सुख-दुख दाता कोइ न आन। मोह राग रुष दुखकी खान॥
निजको निज परको पर जान। फिर दुखका नहिं लेश निदान॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम। विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम॥
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम। आकुलताका फिर क्या काम॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम॥
दूर हटो परकृत परिणाम। 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम॥

श्री पं० बनारसीदास जी द्वारा विरचित भजन

पुनः राग सारग वृंदावनी।

विराजै रामायण घटमाहिं। मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नांहि, विराजै रामायण० ॥१॥ आतम राम ज्ञान गुण लछमन सीता सुमति समेत। शुभपयोग बानरदल मंडित वर विवेक रणखेत, विराजै० ॥२॥ ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति भाग। भई भस्म मिथ्यामय लंका उठी धारण आग, विराजै० ॥३॥ जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरे निकांक्षित सूर। जूझे रागद्वेष सेनापति संसै गढ़ चकचूर विराजै० ॥४॥ विलखत कुम्भकरण भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव। थकित उदार वीर अहिरावण, सेतुबंध समभाव, विराजै० ॥५॥ मूर्छित मंदोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान घटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे छपकगुण बान। विराजै० ॥६॥ निरखिसकति गुन चक्रसुदर्शन उदय विभीषण दीन। फिरै कबंध मही रावण की, प्राणभाव शिरहीन, विराजै० ॥७॥ इह विधि सकल साधुघटअंतर, होय सहज संग्राम, यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम, विराजै० ॥८॥

—: प्रस्तावना :—

रामचरित— वर्त्तमान संसारका एक आदर्श चरित्र माना जाता है। अपनी मुक्ति साधनाके अनुरूप साधु अवस्था में तो उन्होंने अपने पूर्वज तीर्थङ्करोंका अनुकरण किया था यह निर्विवाद है तथापि उनकी जगत्‌में प्रसिद्धि, उक्त कारण से इतनी नहीं हुई कि जितनी गार्हस्थिक उच्चकोटिके जीवन से हुई है। तीर्थंकर प्रभु अपने जन्मके पूर्वसे ही केवल मुक्ति साधनाके लिए ही संस्कारोंके लिए उस पर्यायमें अवतरित होते हैं इसलिए उनके जीवन-चरित्रोंमें जितनी आदर्श घटनाएं मिलेंगी वे सब अपनी साधनाके ही अनुकूल मिलेंगी। गृहस्था-वस्थामें आदर्श लौकिक जीवन व्यतीत करने वाले महापुरुषों मे श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र जीवन एक अत्यन्त उत्कृष्ट और अनु-करणीय जीवनचरित्र माना है।

महापुरुषोंके जीवनचरित्रोंको निरूपित करने वाला साहित्य सदा आदरणीय रहा है। यह जब तक जीवित रहे तब तक जनतामें उच्चचारित्रका निर्माण करता है। श्रीरामचन्द्रजी के उज्ज्वल चरित्रको प्रतिपादन करने के लिए जैनेतर ग्रन्थकारों ने भी अथक परिश्रम किया है। वाल्मीकि रामायणका नाम आज हिन्दू जनता बहुत आदर के साथ लेती है। तुलसी रामा-यण का तो घर २ आदर है। बच्चे २ की जिह्वा पर रामका नाम तुलसी रामायणके कारण ही प्रतिष्ठित है। प्रतिवर्ष अनेक

नगरों में 'रामलीलाका प्रदर्शन तुलसी रामायणके आधार पर ही किया जाता है।

यद्यपि वाल्मीकि एक हिन्दू ऋषि हुए हैं और तुलसीदास एक सद्‌गृहस्थ थे (बादमे उदासीन होनेके कारण उन्हे सन्त कहा गया है) तथापि वाल्मीकि की अपेक्षा श्री रामचन्द्रजीके चरित्र चित्रण करनेमे श्री तुलसीदासजी को ही विशेष सफलता व श्रेय प्राप्त है। वाल्मीकि ऋषि यद्यपि वनवासी थे, तथापि उनका स्वयका आचार संभवत. सात्त्विक न था, इसलिए उन्होने रामको भी विचित्र ही चित्रित किया है जब कि तुलसीदास जी ने उन्हें वनफल भोजी, शाकाहारी और सात्त्विक जीवन व्यतीत करने वाला चित्रित किया है।

श्रीवाल्मीकिपर यह आक्षेप नहीं है बल्कि एक संभावित तथ्य है: वाल्मीकिके आश्रम पर जब वसिष्ठ ऋषिका आगमन हुआ तब उनके सम्मान और भोजनके लिए आश्रमका एक नव शिशु गोवत्स मृत्यु के द्वार पहुंचा दिया गया और उसके मासंसे उनकी तृप्ति की गई। भवभूति कवि ने उत्तररामचरित के चौथे अङ्क मे इस घटनाका उल्लेख किया है। यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि उस सतयुग के ऋषि इस प्रकार अनार्योचित पदार्थोंका सेवन करते होगे तथापि उनके द्वारा लिखित ग्रन्थोंमे श्री रामचंद्रजी जैसे आदर्शपुरुषोंका जिसप्रकार चरित्र चित्रण किया गया है उस पर आजका साधारण धर्मप्रिय हिन्दू भी विश्वास नहीं कर सकता।

भवभूति ने "निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः"

इस वाक्यसे यह स्पष्ट कर दियाहै कि महाराजा जनक मास के त्यागी थे। मांसका त्याग जैन गृहस्थके चारित्र का प्रथम

सीढ़ी है। महाराजा जनक का चरित्र जैनगृहस्थ का चरित्र थी और उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री 'सीता' अपने से भी अधिक आदर्शचरित्र, प्रतापशाली वीर श्री रामचन्द्र जी को प्रदान की थी।

राम, जनक, दशरथ, हनुमान आदि रामायण के गणनीय पुरुष के सम्बंधमे यद्यपि जैन ग्रन्थकारोंने उन्हें जैन तथा हिन्दू ग्रंथाकरोंने उन्हें 'हिंदू' माना है तथापि यह सुनिश्चित है कि उक्त चरित्रनायकों के आचार अत्यंत आदर्श थे, और इसलिए वह 'जैनाचार' के नाम से पुकारे जा सकते हैं।

प्राचीन भारत मे वैदिक परम्परा और श्रमण परम्परा ऐसी दो धाराएं प्रचलित थीं यह आज के इतिहासज्ञ मानते हैं। तथापि वेद निर्माण काल के पूर्व "वैदिक परम्परा" नाम की कोई वस्तु नहीं थी। उसका निर्माण वेद-निर्माण काल के बाद हुआ यह मानी हुई बात है। श्रमण परम्परा इसके भी पूर्व थी और उस समय वही एक परम्परा अक्षुण्ण चली आ रही थी। श्री रामचंद्रजीके समय श्रमण-परम्परा ही थी, दूसरी कोई परम्परा नहीं थी। 'योगवासिष्ठ' नामक प्रसिद्ध हिंदू धर्म पुस्तकमें श्री रामचंद्रजीके भावोंका चित्रण किया गया है जिससे उक्त बात स्पष्ट हो जाती है। श्री रामचंद्रजी अपने आत्मनिरीक्षणके बाद अपनी अन्तरात्माकी ध्वनिको निम्नलिखित शब्दोंमें कितनी सुन्दरतासे व्यक्त करते हैं देखिए—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शान्तिमासितुमिच्छामि स्वात्मन्येव यथा जिनः॥

श्री रामचंद्र जी कहते हैं कि मैं 'राम' नही हूं। कारण 'राम' तो एक लोककल्पित नाम है, और मनुष्य जन्मकी एक पर्याय है जो नाशवान् है। मैं एक शाश्वत नित्य अनंत गुणोका पिण्डस्वरूप 'आत्मा' हूं।

मुझे ससारके किसी भी पदार्थकी इच्छा नहीं है, इन्द्रिय भोग क्षणभंगुर हैं। मैं अब इनसे विरक्त हो चुका हूं। मैं अब पर पदार्थोंसे भिन्न स्वात्मामे ही 'शांति' प्राप्त करने की इच्छा करता हूं जैसी कि "श्रीजिनने" पाई है।

उक्त श्लोक मे श्री रामचंद्र जी ने यथा शब्दके बाद जिनका उदाहरण दिया है वे 'जिन' तीर्थङ्कर ही थे। उक्त कथनसे यह सिद्ध है कि—जो 'जैन धर्म' के उपदेशक माने जाते हैं। भारत मे उस समय एक ही आदर्श परम्परा थीः और वह थी 'जैन-परम्परा' या 'श्रमण परम्परा'।

यद्यपि योगवाशिष्ठके हस्तलिखित प्रतियोंमे 'जिनः' पाठ है तथापि वर्तमानमें ग्रन्थप्रकाशकोंने जैन परम्पराको महत्त्व प्राप्त न हो सके इस संकुचित मनोवृत्तिके कारण 'जन.' पाठ छापा है और उसका यद्यपि अर्थ साधारणतया 'मनुष्य' होता है पर टीका में 'यथा कश्चित् वीतराग' पुरुष. जैसे कोई प्रसिद्ध वीत-राग पुरुष ऐसा अर्थ कर दिया है। यथा शब्दके बाद जिसका उल्लेख होता है वह कोई अति प्रसिद्ध व्यक्ति होता है न कि साधारण सर्वनाम द्वारा उल्लिखित कोई भी व्यक्ति। यह बात प्रत्येक भाषाविज्ञ जानते हैं। अत' यह सिद्ध है कि श्री रामचंद्र जी के समय केवल एक जैन-परम्परा ही प्रसिद्ध थी और प्रत्येक व्यक्ति उस ही आदर्श को प्राप्त करने की कामना करता था। दो धाराएं या दो धर्म उस समय नहीं थे।

श्री भर्तृहरि ने भी वैराग्य शतक में अपनी अन्तरात्माकी आकांक्षा इसी प्रकार व्यक्त की है, वे लिखते हैं—

एकांकी निस्पृहः शान्तः, पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाहं संभविष्यामि, कर्मनिर्मूलनक्षमः॥

अर्थात् — मैं—एकला-विषयों की वान्छा रहित—निष्कषाय हाथमें ही भोजन करने वाला—वस्त्र मात्रसे भी रहित—नग्न दिगम्बर—श्रमण—अवस्थाको कब प्राप्त करूंगा जो कि श्रमणावस्था हमारे अनादिबद्ध कर्मों को जड़से मिटानेकी सामर्थ्य रखती है।

उक्त श्लोकसे भी स्पष्ट है कि भर्तृहरि जैसे योगीभी जिनकी वैदिक धर्म में बहुत बड़ी मान्यता है उस प्राचीन सर्वश्रेष्ठ जैन-परम्पराकी श्रमणावस्थाको प्राप्त करना अपने योगी जीवन का आदर्श मानते थे।

श्री तुलसीदास जी ने श्री रामचन्द्र जी को स्वयं भगवान् माना है और अत्यन्त श्रद्धापूर्ण भावोंसे उनका सदा स्मरण किया है। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धांजलि उनके चरणों में ही बखेर दी है। श्री कृष्णजीकी स्तुतिका जब उनके सामने प्रसंग आया तब वे उस मूर्तिको देखकर उनकी प्रशंसा करते हुये भी अन्तमें कहते हैं कि—

"तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बाण लो हाथ।"

अर्थात् हिन्दू-धर्म शास्त्रों के आधार पर श्री कृष्ण जी भी भले ही भगवान्के अवतारहों पर तुलसीदास तो उन्हेंभी मस्तक तब नवाना चाहते हैं जब वे धनुष-बाण लेकर 'रामरूप' हो जाते है, अन्यथा नहीं। उक्त उक्तिसे उनकी रामभक्तिकी उत्कृष्टता और भी स्पष्ट हो जाती है।

रामचरित्र को जितना अपनी शक्त्यानुसार संभव था, तुलसीदासजीने उत्तमसे उत्ताम वर्णित किया है तथोपि उनको अपने कथानकके वर्णनमे आधार-शिला रूप केवल वाल्मीकि रामायण ही संभवत. प्राप्त थी। अत: रावणको राक्षसके रूप में और हनुमान आदिको वानरके रूपमें उन्होंने चित्रित किया है। उनके कार्योंका वर्णन भी उन्होंने लगभग वैसाही किया है।

अपनी रामायण की पूर्ति कर चुकने के बाद तुलसीदास जी ने विचार किया कि इस समय आगरामें कविवर .श्री बनारसी-दास जैन एक अत्यन्त प्रतिभाशाली अध्यात्मवेत्ता कवि हैं उनको रामायणकी प्रति भेजी जाय और उनसे भी इसपर सम्मति ली जाय। उन्होंने एक कापी करके रामायण बड़ी प्रीतिसे श्री बनारसीदासजीके पास भेजी। पाठक यहा न भूलेंगे कि वह समय छापाग्रन्थके चलनका नहीं था। उस समय केवल हस्त-लिखित ही ग्रन्थ तैयार होते थे। छापाखानोंका आविष्कार तब नहीं हुआ था. अत अपने हाथमे रामायणकी हस्तलिखित प्रति तैयारकर अर्पण करनेकी बात बहुत कठिन थी। तो भी तुलसी-दासजीने अपनी सज्जनताके तथा बनारसीदासजीकी विद्वत्ता सबधी स्नेहके कारण प्रतिलिपि करनेका परिश्रम उठाया और प्रति भेजी रामायणकी प्रति पाकर बनारसीदास जी प्रसन्न हुए और उनको कविवर तुलसीदासजीके प्रति बहुत आस्था उत्पन्न हुई। वे अध्यात्मरसिक थे अत प्रत्येक वस्तुको वे अध्यात्मकी तराजू पर तौलते थे। उन्होंने रामचरित्रको भी तोला और उसका आध्यात्मिकरूप एक पद्यमे लिखकर श्री तुलसीदासजीके पास भेजा जिसका शीर्षक था—

विराजत रामायण घट मांहि ।
आतम राम, ज्ञान लक्ष्मण, सीता सुमति समेत ।
शुभोपयोग वांदर दल, वर विवेक रणक्षेत्र ॥
भज रामायण सार, भज रामायण सार ।
ज्ञानी ज्ञान विचारहीं, मूर्ख मर्म न धार ॥

उन्होंने आत्माको 'राम' आत्माके ज्ञानगुणका जो सदा सहयोगी रहता है उसे 'लक्ष्मण' अपनी चिरसहेली सुबुद्धि को 'सीता', आत्माके असख्य गुणोंको वानरदल, विवेकको रणक्षेत्र', 'मोह' को रावण, आदिका रूपक देकर यह बताया कि ऐसी रामायण आपके अन्तरात्मामे है उसे देखिए ।

कविवर को तुलसीदास जी जैसे उच्चकोटिके कविसे साक्षात्कार करनेकी इच्छा हुई । उस समय 'अध्यात्मरामायण' के रूपमे कविवरका उत्तर पाकर तुलसीदासजीके भी चित्त में कविश्रेष्ठ बनारसीदासजीके प्रति अमित श्रद्धा हुई और दोनों कवि एक दूसरेसे मिलनेकी इच्छा करके घरसे निकल पड़े और मार्गमे ही किसी स्थानपर दोनों कविश्रेष्ठों का आनन्ददायी सम्मेलन हो गया । यद्यपि दोनोंकी कभी परस्परावलोकन क्रिया सम्पन्न नही हुई थी तो भी मार्ग मै एक दूसरे को देखते मात्रम वे एक दूसरेसे उनका सहज ही नामोच्चार कर बैठे, और बड़े प्रेमसे मिले । इस घटनाका उल्लेख कविवर बनारसीदासजीने अपने 'बनारसी विलास' मे स्वय किया है ।

तुलसीदासजीकी यह सद्भावना थी कि रामके आदर्श चरित्र का घर २ प्रचार हो। लोक उसे पुण्यचरित्रसे शिक्षा

लें। घर घर में देवियां सीता जैसे सती साध्वी बनें। रामकी मातृ-पितृ-भक्ति, राज्यका निर्मोह, कर्तव्यकी प्रेरणा, भ्रातृ प्रेम सीताके प्रति स्नेह, प्रजानुरंजनके लिये स्वार्थ कापरित्याग आदि ऐसी आदर्श घटनाऐं हैं जोकि अपना प्रभाव चित्तमे अङ्कित किए बिना नहीं रह सकतीं।

श्रीदिगम्बर जैनाचार्य श्री रविषेणने भी 'पद्मचरित' नामक संस्कृत भाषामे एक बृहद् काव्य बनाया है। रविषेणाचार्यके कथानकके वर्णनका 'आधारशिला' भगवान् महावीरकी वाणी थी अत उनके वर्णन करनेमे कोई असमंजस बात नहीं आने पाई जो युक्ति तर्क व प्रमाणसे खण्डित हो। इसमे जिन श्री रामचन्द्रजी'का चरित्र अङ्कित है वे एक लोकोत्तर पुरुष हैं वे भूमिगोचरी थे, जबकि रावण विद्याधर था। यद्यपि 'रावण'बहुत समझदार बुद्धिमान था पर होनहारके अनुसार उसकी मति पलट गई और उसने परस्त्रीका हरण किया। जिसका दुष्कर्म फल भी उसे मिला।

यद्यपि दिगम्बर जैनाचार्य सदा लोक भाषामे ही शास्त्र रचना अधिकतर करते आए हैं। भगवान् की वानी स्वय 'अर्द्ध-मागधी' थी जो उस समयकी लोकभाषा थी। उसके बाद प्राकृत और संस्कृत भाषाका युग आया, तब जैन ग्रन्थकारोंने प्राकृत और सस्कृत भाष में शास्त्र बनाए। जब हिन्दीके पूर्व रूप अपभ्रन्श भाषा का युग आया तब जैन कवियों ने अपभ्रन्श भाषा मे सैकड़ों ग्रन्थोंकी रचना की। आज इस भाषामें जो प्राकृत और हिन्दीके मध्यकालीन समयमे देश भाषा थी केवल जैन-ग्रन्थ ही पाए जाते हैं। समय की गति के अनु-सार हिन्दी भाषा अवतरित हुई और इस में भी ग्रन्थरचना प्रारंभ हुई। आज प्राय. सभी प्राचीनसे प्राचीन

ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद गत ४०० वर्षोंसे होते हुए चले आ रहे है। प्रांत-भेदसे जहां भाषा-भेद हो जाता है वहां भी जैन ग्रन्थकारोंने प्रांतीय भाषाओंमे भी ग्रन्थोंके अनुवाद किए है।

जैनाधार के नियमों के अनुसार 'स्वाध्याय' एक आवश्यक दैनिक क्रियामें गिनाया गया है। प्रत्येक गृहस्थको जिस श्रद्धा व भक्तिसे देव पूजा व गुरुका सम्मान करना व दान आवश्यक है, उतनाही स्वाध्याय करना आवश्यक है। यही कारण है जो प्रत्येक भाषा-भाषी जैन गृहस्थकेलिए जैन साहित्यकारांने विभिन्न भाषाओंमें ग्रन्थ रचनाएं की हैं। और उनकी प्रतियां प्रत्येक जैन मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित की गई हैं। प्राचीन शास्त्र-भण्डार तो आज भी अनेक स्थानोंमें वृहत् रूप में विद्यमान हैं।

ग्रन्थोंका निर्माण, उनका संग्रह और उनके स्वाध्याय का प्रचार, जैनोंकी विशेषता रही है। प्राचीन भण्डारोंमें हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियां आज भी हजारों की संख्यामें पाई जाती हैं। दक्षिण प्रांतकी कन्नड़ी और तेलङ्ग में आज भी हजारों जैन ग्रन्थ अपने मूलरूपमे विद्यमान हैं. जिनका अब तक भाषान्तर नहीं हुआ और न अब तक प्रकाशमे आए हैं। अनेक ग्रन्थ भण्डार जिस ग्राम के जिस जिनालय मे थे, वहां जैन जन-संख्या की न्यूनता या अभाव के कारण आज भी अस्त-व्यस्त या नष्टप्राय: हो रहे हैं। जिनके सम्हालकी ओर, जैन समाजकी सभाओं व संगठनोंका ध्यान नहीं है। मैसूर गवर्नमैंटकी लाइब्रेरी (ग्रन्थालय) में मात्र जैन ग्रन्थोंकी संख्या १० हजार है, जिसकी सूची कईवार मैंने तीर्थयात्राके प्रसंगपर कुमारैयाशास्त्रीके

पास श्रवणबेलगोलामे देखी थी, जो आजकल मैसूरमें है। ये ग्रन्थ प्रायः सभी अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। यदि इस ओर समाजकी सभाओंका ध्यान जावे तो जैन-धर्मकी यह सब से बड़ी सेवा होगी।

जैन-मूर्तियोंका, जैन-मन्दिरोंका, मठोंका, चाँदी और सोने के बने हुए सिंहासन, मण्डल, पालकी, रथ आदिका पुनर्निर्माण किसी भी समय किसी भी धनी के द्वारा संभव है, पर एक ग्रन्थ की १ पंक्ति भी नष्ट हो जाय तो उसकी पूर्ति होना सर्वथा असंभव है। इसलिए साहित्य रक्षा का महत्त्व, धर्म के सम्पूर्ण अङ्गोंसे, बहुत अधिक महत्त्व रखता है।

जैन-साहित्य भगवान् तीर्थङ्कर महावीर स्वामीकी वाणीका समय प्रवाहसे चला आया रूप है। उसकी रक्षा बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान रखती है। श्रीश्रेणिकनरेन्द्र द्वारा भगवान्के प्रति किए गए ६०००० प्रश्नो में से श्रीरामचरित क्या था यह भी एक प्रश्न था, जिसका उत्तर भगवान् ने दिया, और परम्परा से वह लिपि-बद्ध किया गया, जो आज श्री रविषेणाचार्य के "पद्म-चरित" के रूप में है। 'पद्म-चरित' यद्यपि विस्तीर्ण-गंभीर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ है तथापि संस्कृत भाषा का होने के कारण वर्तमान जनता जो आज इस भाषाज्ञानसे कोसों दूर है 'लाभ नहीं' ले पाती।

स्वयम्भूकविकृत एक जैनरामायण प्राकृत या अपभ्रन्श भाषा में भी है। यह रामायण अभी तक अप्रकाशित है। यह राज-नीति समाजरीति 'धर्मनीति का प्रतिपादन करने वाला एक महान् ग्रन्थ है। श्रीतुलसीदासजी ने अपनी रामायण की रचना में यद्यपि कथानक को अङ्कित करने में अधिकतर बाल्मीकि रामायण का आधार ले लिया है पर जिन सुन्दर

उक्तियों, सातिशय अलंकारों,नीतियों के कारण, तुलसी-रामायण को ख्याति प्राप्त है, वह सब उन्हे स्वयंभू कविकी जैन-रामायण से प्राप्त हुई है। यदि स्वयंभू रामायण प्रकाशित हो जाय तो पाठक यह सहज ही जान सकेंगे कि तुलसी-रामायणमे जो कुछ उत्तमत्ता है उसका अधिकाश श्रेय स्वयभू कविको है। यदि तुलसीदास जी अपने काव्यके कथानक के लिये भी इस ग्रन्थका आधार रखते तो उनका काव्य निर्दोष व सर्वश्रेष्ठ होता।

पद्मचरितके आधारपर रामचरित हिन्दी भाषामें आज पाया जाता है। जैन समाजमें पद्म-पुराणका बहुत बड़ा आदर है। यह प्रकाशित हो चुका है अतः आबाल वृद्ध वनिता उसका स्वाध्यायकर श्रीरामके व सीताके पवित्र जीवनसे शिक्षा प्राप्त करते हैं। फिर भी एक कमी थी और वह यह कि हिन्दी भाषामे कविता-मय कोई रामचरित जैन रामायणके आधार पर नहीं था जिसे लोग सुन्दरताके साथ गायन वादनके साथ पठन-पाठन कर मनोरंजन करते और सुन्दर आदर्श चरित्रको तथा उनकी नीतियों को हृदयङ्गम करते।

जिस प्रकार तुलसी-रामायण का घर-घरमे पाठ होता है वैसा जैन गृहस्थोंको काव्यमय रामायणके अभावसे तद्रूप स्वाध्याय करनेकी सुविधा प्राप्त नहीं थी। यह एक कमी थी जो लोगोंको समय समय पर खटकती थी पर जैन कवियों का इस ओर ध्यान नहीं था। प्राचीन समयके जैन कवियोंने अनेक ग्रन्थोंके अनुवाद कर भाषाकाव्योंका निर्माण किया है। हजारों पद्य-स्तुतियां-पूजायें-जीवन कथाएं काव्यके रूपमे निर्मितकर अपनी कवित्व शक्तिको सफल किया है। यद्यपि वर्तमान समय में भी अनेक जैन कवि है तथापि उनका ध्यान

अभी तक इस ओर नहीं गया। आजकल कवियों की कविताओ के विषय केवल—'आसू' 'विरह-वेदना' 'विधवा-विला.' 'तरुणों के प्रति' 'छाया-लोक' आदि रहते हैं या किसी सेठ साहूकार का अभिनन्दन करके उनकी कविता कृतकृत्य हो जाती है। छायावादी कविता करने का भी कुछ व्यसनसा होता जाता है, पर भगवान जिनेन्द्रकी भक्ति-स्तुति-गीता उपदेशी पद्य-भजन-कविताएं-महापुरुषोंकी जोवन गाथा आदि उपयोगी विषयोंपर अब तक जैन कवियोंकी लेखनी वर्तमानमें बहुत कम चली है।

आजसे ५ वर्ष पूर्व सं० २००३ में श्री १०५ पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी क्षुल्लक जबलपुर चातुर्मासके बाद कटनी (म०प्र०) पधारे। पूज्य वर्णीजी बहुत बड़े अध्यात्मवेत्ता इस युगके माने गए हैं। उनकी सरल, सरस अमृतमयीवाणीको श्रवण कानेके लिए दूर २ से लोगाका आगमन होता था। श्रीनेमिचंदजी पाटणी किशनगढ़ वालेभी उससमय पधारे। श्रीस०सि०धन्यकुमारअभय कुमारजीकटनीके मनोरम उद्यानमे पाटणीजीनेवर्णीजीको आहार दान दिया। उस समय दोपहरको अनेक भाई वर्णीजीके समाप बैठे थे, अनेक उपयोगी चर्चाओंके बीच, कटनीके श्री चन्द्रभानु जैन ने जगन्नाथ कविके 'पद्माकर' के या अन्य जैनेतर कवियोंके उत्तम नैतिक छन्द व काव्य सुनाए, जिन्हे सुनकर उपस्थित लोग मुग्ध हुए, पर पूज्य वर्णीजीके मुखपर प्रसन्नता के स्थानपर कुछ विषादकी रेखा दौड़ गई।

दर्शकों मेंसे २-४ सज्जनोंने उसे भाप लिया और जिज्ञासा की दृष्टिसे उस ओर देखने लगे। पूज्य वर्णीजीने कहा 'जो भैया! पराये पुत्र खिलाये, पर स्वयंके पुत्र न खिला सकने वालेको

संसारमे खेद होता है। ये बच्चे अन्य निर्मित काव्योंको पढ़ते हैं पर जैन कवियोंका ध्यान आजकल स्वयं अपने धर्मप्रचारके लिये काव्य निर्माणका नहीं है यह दुखकी बात है।"

वर्णीजीकी यह हार्दिक वेदना ही उनके मुखारबिन्द पर विषाद रेखा खींच रही थी। श्रीमान् ब्रह्मचारी पण्डित कस्तूरचन्द्रजी नायक जबलपुर निवासी उस समय सभामें थे। इनको वर्णीजीके शब्द और उनकी वेदना खटक गई। जबलपुर आते ही उन्होंने विचार किया कि यद्यपि मैं स्वयं कवि तो नहीं हूं, तथापि प्रयत्न यदि किया जाय तो असम्भव भी नहीं कि मैं इस कार्यको किसी भी रूपमे न कर सकूं। किसमे कहा जाय कि तुम वर्णीजीकी हार्दिक वेदनाको समझ कर उसे दूर करनेको सुन्दर काव्य बनाओ। बिना हृदयकी चोटके या स्वयंकी लगनके कौन प्रयास करेगा? अधिक सोच विचार छोड़ श्रीनायकजी स्वयं इस कार्यके लिये कूद पड़े, और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र आदर्श चरित्रको ही काव्यमय बनाने का सुन्दर उपक्रम किया।

गत दो वर्ष पूर्व जबलपुरमे कार्तिक अष्टान्हिका महापर्वके पुनीत अवसरपर श्री स० सि० रायबहादुर मुन्नालालजी राम चन्द्रजी की ओरसे सिद्धचक्र विधानका एक बहुत बड़ा महोत्सव कराया गया था। उस समय नायकजीने अपनी स्वचरित सरल जैन रामायणके कुछ अंश सभामे सुनाये। इन पद्योंको सुनकर जनताको प्रसन्नता तो हुई ही पर मुझ एक कमीकी पूर्तिके रूप मे उक्त खंडोंको सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैंने नायकजीसे आग्रह किया कि आप इसे अवश्य पूरा करें। मेरी प्रेरणासे उत्साहित होकर श्री नायकजीने आज उसे पूरा भी किया जो आज पाठकोंके सामने प्रस्तुत है।

श्रीनायक जी जबलपुरके प्राचीन विद्वान् हैं। जैन सिद्धान्तके वे मर्मवेत्ता हैं। उनकी वाणी बहुत मनोरम है। चारों अनुयोगोंके प्राय सभी ग्रन्थोंका उन्होंने अनेक वार पारायण किया है। सिद्धान्तकी गहनसे गहन चर्चा उनकी जिव्हा पर सदा नृत्य करती है। अध्यात्म रसिकता उनके भीतर कूट २ कर भरी है। ऐतिहासिक और पौराणिक जैन महापुरुषोंका पवित्र चरित्र उनको अत्यधिक प्रभावित किये हुए हैं। सपत्नीक और श्रीमंत होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं, श्री पूज्य वर्णीजीके पास सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये हुए हैं। उनकी पत्नी श्री सुमतीबाईने भी अपने पतिका अनुकरण कर ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की है। आपकी सन्तान भी सुयोग्य है, जिसके कारण आप निराकुलतापूर्वक धैर्य धारण करते हुए स्वपरोपकार करते हैं।

यदि कोई विद्वान् आपकी विद्वत्ताकी कसौटी लेकर इस काव्यको कसने बैठेंगे तो सभवतः उन्हे जैसा चाहिये संतोष न होगा। भाषा का सौष्ठव, अलकार का प्राचुर्य, व्याकरणके सूक्ष्मतम नियमोंका परिपालन आदि की न्यूनता उन्हें खटक सकती है परन्तु यह भी सुनिश्चित है कि नायकजीका उद्देश्य इस काव्यको रचकर विद्वत्ताका प्रदर्शन नहीं रहा। उनके सामने केवल एकही ध्येय था कि जन साधारणकी भाषामें उनके ही बोलचाल मे—सरल शब्दोंमे—काव्य रचनाकी जाय ताकि वह केवल विद्वानोंके दृष्टि-पथमें आने योग्य, वस्ता मे बधे रहने वाली वस्तु न बन जाय।

साहित्य निर्माणका मूलोद्देश्य जैन साहित्यकारोंका सदा यही रहा है इसलिये उस परम्पराका पालन नायकजीने

इस काव्यके निर्माणमें किया है। ग्रन्थकी भाषा अत्यन्त सरल और सुबोध है। वाक्य विन्यासमें बहुत लंबा नहीं रखागया। लंबे वाक्यों, अप्रसिद्ध संस्कृत प्रचुर शब्दों, गूढ़ अलंकारोंसे सर्वसाधारण जनताको वस्तुतत्व समझनेमें बड़ी कठिनाई होती है अतः शृङ्गारोंका मोह छोड़कर यह काव्य श्रीरामका पुण्यचरित वर्णन कर सर्वसाधारणके हृदयको प्रभावित कर सकेगा ऐसी मेरी धारणा है।

वृत्तानि-सन्तु-जनता-हितानि।

कटनी	जगन्मोहनलाल शास्त्री
दिनांक ३०-११-१६५१	

❀ ग्रन्थकार की अन्तरङ्ग भावना ❀

अथक परिश्रम का क्या हेतु

वैसे तो अनेक हेतु हैं। सर्वोत्कृष्ट यह कि प्रातःस्मरणीय पूज्य गुरुदेव वर्णीजी महाराजके द्वारा, जैनरामायणकी कृतिका सुझाव सुझाया गया। अतः हृदयोत्साहमें आकर इसकी कथञ्चित् पूर्तिमें अथक परिश्रम किया है। यद्यपि न तो मैं साहित्यिक, नैयायिक, गणितज्ञ हूं और न मैं कविही हूं, केवल आत्मोद्धारक निजात्मीय प्रवृत्ति में संलग्न रहनेके लिये ही अथक परिश्रम, चार या पांच वर्षसे कर रहा हूं। उपरोक्त विद्वानोंकी दृष्टिमें यह अयोग्यता अवश्य खटकेगी किन्तु मेरा प्रयास इस भावका लक्ष्य करता हुआ 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे" अर्थात् शास्त्र रूपी सामुद्रीय रचना विषय कौन नहीं भूलता। या "गच्छतः स्खलन क्वापि" अर्थात् गमन करने वाला कहीं न कहीं स्खलित हो ही जाता है। इन आधारों पर ही मैं अपनी चित्रणपना की नैया को पार लगा सका हूं। अत समाजके अनुभवी विद्वानो तथा अन्य मतावलम्बी सम्यग्दृष्टि रखने वालोंसे मेरा पूर्ण अनुरोध है कि आप गहनदृष्टि से इसका अवलोकन कर, मेरी रचनाजन्य या भावस्खलितजन्य त्रुटियोंको अवश्यमेव सूचित करें ताकि द्वितीयावृत्तिमें उनको पृथक करके सर्वाङ्गीय सुन्दर बनाने का प्रयास करनेपर, अपना सौभाग्य समझूं। कारण मैं तो एक दंतविहीन बालकके सदृश हूं मुझ मे अज्ञानता कूट-कूट कर भरी है, अब वह कुछ न कुछ, विद्वानोंके सघर्षसे अवश्यमेव ठहरने को समर्थ न होगी, ऐसी मेरी परमपुनीत सम्यक भावना है। रामायण के इस प्रथम काण्डमें कवि श्रीमोहनलालजी कैमोरी वालोंने जो संधोधन किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

सर्वहितचिन्तक:—

ब्र० नायक

❀ श्री जिनाय नमः ❀

सरल जैन रामायण

(प्रथम काण्ड)

[अध्यात्मरत्न व्याख्यानभूषण ब्र० कस्तूरचन्द नायक द्वारा रचित]

❀ मंगलाचरण ❀

दोहा– जीत घातिया कर्म चउ, पाया केवल राज ।
शांति करें वे जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥
हितकारिणि जिनभारती, गुरुहु दिगम्बर पाय ।
प्रणमों सबहि त्रियोग युत, भक्तिभाव चित लाय ॥
यह रामायण का कथन, जैनागम अनुसार ।
लघु धी साहस चित्त धर, रचों पद्यमय सार ॥
"राम" नाम बलभद्र थे, महा पुरुष आदर्श ।
तासु चरित रचना रचत, "नायक" चित धर हर्ष ॥

वीर छंद –

समवशरण विपुलाचल आया, अंतिम तीर्थंकर श्री वीर ।
गुरु गणधर प्रतिप्रश्न उठाया, नृपति प्रमुख श्रेणिक गम्भीर ॥
रामचरित गुरुदेव सुनाओ, श्रवण करन चित चाह अपार ।
असत कथन भ्रम मेटनहारा, सत्य कथन का हो निरधार ॥

रामचरित गणधर बतलाया, कथन सत्य निर्बाध कहाया ।
ताहि सुगुरु रविषेण बखानो, पढ़ सुन जिय पावें कल्याणा ॥
राम चरित वर्णन सुखदानी, विधिवत कह न सके श्रुतज्ञानी ।
'नायक' तसु संक्षिप्त उचारा, मोक्ष मार्ग प्रगटावन हारा ॥

वीर छंद —

लोक अनादि निधन बतलाया, वातवलय त्रय वेष्टित जान ।
अधोलोक में नर्क कहाया, ऊर्ध्व स्वर्ग अरु यह मधि मान ॥
द्वीप समुद्र असंख तास मध, जम्बू द्वीप सु वलयाकार ।
सप्त क्षेत्र षट पर्वत तामें, यों रचना नाना परकार ॥

दोहा—ऐरावत अरु भरत में, उत अवसर्पिणि आन ।
आयु काय बाढ़ै घटै, काल वर्तना मान ॥
केवल क्षेत्र विदेह में, चौथा काल महान ।
चार क्षेत्र दोनों कुरू, रचना सदा समान ॥
यों अनादि इम लोक का, कभी अन्त नहिं होय ।
कर्त्ता हर्त्ता रक्षिता, नहिं होता है कोय ॥

शास्त्र माँहि विस्तृत बतलाई, विधिवत तँह पै देखहु भाई ।
लोक कथन है उदधि समाना, बिंदुमात्र मैं करो बखाना ॥
सुधाबिंदुसम तउ सुखदायक, सब जीवों को मोक्ष विधायक ।
सार प्रयोजन वर्णन कीना, लघुधी सारू त्रुटी रखी ना ॥

दोहा—अवसर्पिणि के तुरिय में, चौदह कुलकर होंय ।
कर्मभूमि में अवतरें, सुख बढ़ांय दुख खोंय ॥

नाभिराय अन्तिम मनू , श्रेष्ठ गुणों की खान ।
मरुदेवी तिन प्रिय प्रिया, शशि रोहिणि उन्मान ॥

जब मरुदेवी गर्भ सुधारी, हर्षित भये सभी नर नारी ।
धनद रची नगरी सुखवासा, रत्न वृष्टि हुई पन्द्रह मासा ॥
गर्भ पूर्व छह मास प्रमानो, अरु नव मास गर्भ के जानो ।
एक समय मणि हूँठ करोड़ा, पितु आँगन वरसें घनघोरा ॥

दोहा– आदिनाथ के जन्म से, सुखी भये सब जीव ।
हुए नारकी भी सुखी, अन्त मुहूर्त अतीव ॥
नहीं लहत हैं नारकी, कभी सौख्य क्षणमात्र ।
लहि अवसर जिन जन्मका, मुदित होय तिन गात्र ॥

तीन ज्ञान दश अतिशय भारी, हौं प्रभु के जन्मत सहचारी ।
किया इन्द्र जन्मोत्सव आके, अरु अभिषेक मेरु पै जाके ॥
हर्षित हिय हरि कलशा ढारे, एक सहस अठ एकहि बारे ।
अन्य अमर गण कलश अपारे, अतुल बली लख जिन शिर ढारे ॥

दोहा– चार कोस मुख कलशका गहराई बत्तीस ।
तसु धारा जिन शीस पै, फूल कली सम दीस ॥
को कवि वर्णन कर सकै, जो उत्सव हरि कीन ।
निरख दृश्य अनुपम नहीं, सभी जीव सुख लीन ॥

वस्त्राभूषण हरि पहिनाये, आदिनाथ प्रभु नाम धराये ।
एक सहस अठ लक्षण देहा, लख हरि नृत्य करै धर नेहा ॥

वृषभ चिन्ह लग दांय अंगूठा, चिन्ह सुनिश्चित किया अनूठा ।
जिन स्वर चिन्हों का व्यवहारा, आगम में इस भांति उचारा ॥

दोहा– लाख तिरासी पूर्व तक, किया राज्य सुखदाय ।
असि मसि कृषि वाणिज्य अरु, सेवा शिल्प बताय ॥
उपदेशा छह कर्म इमि, प्रजा दुःख विनशाय ।
तभी प्रजा ने उच्चरा, अहो विधाता राय ॥

मार्ग बताये कहा विधाता, ब्रह्मा विष्णु कहा जग त्राता ।
दोष हरे शंकर पद पाया, इमि दत्तात्रय नाम कहाया ॥
जनता ने इमि नाम उचरा, कृतज्ञता का किया चुकारा ।
अपर हेतु यदि कोई उचारे, अतुल दोष उपजावनहारे ॥

दोहा– हठ गह मानो दोष युत, नहिं सिद्धी की शक्त ।
बांध्या सुत सम उक्ति हो, सिद्धी करन अशक्त ॥
यातें दत्तात्रय भजहु, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
कर्त्ता, रक्ष, संहारता, आदिनाथ परमेश ॥

स्वयं करै जो करनी जैसी, बने कर्म की धरणी वैसी ।
यातें स्वयं आप ही कर्त्ता, स्वयं आप ही फल का भर्त्ता ॥
हो निष्कर्ष स्वयं निर्माता, स्वयं आपका होता त्राता ।
स्वयं आपने दोष विघाते, स्वयं आप हर्त्ता कहलाते ॥
दोहा– कर्त्ता रक्ष संहारता, है कोई भगवान ।
सदा जीव परतन्त्र हो, नहिं स्वतन्त्रता आन ॥

यातें सब निर्णय करो, यामें करो न भूल।
बिन निर्णय सब ही विफल, पढ़ी भूल है मूल॥
सब ही को यह सीख है, जाति भेद नहिं कोय।
सुधापान जोई करें, ताहि को सुख होय॥

लाख तिरासी पूर्व बिताये, प्रभु तित तउ वैराग्य न आये।
तीन ज्ञान जन्मत ही लीने, राग भाव में परिणत कीने॥
यदपि राग को हेय समझते, तो भी प्रभुता में ही फंसते।
मोह राग माया भट मानी, फंसते तीर्थंकर से ज्ञानी॥

दोहा—चिंतै हरि अब रैन दिन, का विध करूं उपाय।
जाको लखि प्रभु चित्त में, झट विराग हो जाय।
किय उपाय नीलांजना, आयू जाकी हीन।
नर्तन को ठाड़ी करी, तत्क्षण हुई विलीन॥
प्रभु इच्छा प्रतिकूल लख, डरपा तब हरि खास।
तत्क्षण दूजी नर्तकी, रच कर पूरी आस॥

हरि की माया पर नहीं जानी, तो भी प्रभु की दृष्टि समानी।
प्रथम नर्तकी मृत्यु लहाई, अब यह नर्तन दूजी आई॥
किय चिंतन वस्तू जग जेती, उपजे विनशें क्षण में तेती।
राज तजन का निश्चय कीना, राज पाट पुत्रन को दीना॥

दोहा— स्वयं बुद्ध यद्यपि प्रभू, तजन चहा जब भोग।
लोकान्तिक आये तबै, करने बोध नियोग॥

शीश नाय मृदुवच कहे, प्रभु किय भला विचार ।
तप गह कर्म विनाशकें, वरो मुकति वर नार ॥

बारह भावन विरद वखाना, गये लौट पुन सुर निज थाना ।
हरि सज शिविका प्रभु पधराये, प्रथमहिं भूचर नृपति उठाये ॥
सात पैंड़ चल हरि को दीनें, नन्दन वन कल्याणक कीनें ।
केश लुंच प्रभू परिग्रह छांरे, भक्त नृपति संग दीक्षा धारे ॥

दोहा– हुए संग चतु सहस नृप, स्वामिभक्ति लवलीन ।
धरो दिगम्बर वेश सब, नहिं विवेक कछु कीन ॥
क्यों प्रभु वन में आयके, नग्न अवस्था धार ।
क्यों ये जग सुख तजन हैं, कीना नहीं विचार ॥

अब प्रभु चौथा ज्ञान सुलीना, अनशन करन विचार सुकीना ।
गही प्रतिज्ञा तब षट मासा, इस अवधी तक तज दी आशा ॥
ली दीक्षा जिन बिना विचारे, हुए भ्रष्ट वे नरपति सारे ।
कुँवर मरीच प्रभू का पोता, हुआ मृषामत का ये बोता ॥

दोहा– पूर्ण प्रतिज्ञा कर प्रभू, प्रतिदिन पुर को जांय ।
अन्तराय के उदय से, नहिं अहार विधि पांयं ॥
आवें जावें प्रति दिवस, नहि विधि मिलती कोय ।
सहीं परीषह शांति चित, पूर्ण वर्ष इक होय ॥
देखहु कर्म विडंबना, तीर्थंकरहु न छांड़ ।
विन अहार भ्रमते फिरे, पूर्व लिये थे बांध ॥

अन्तराय का उदय टला जब, आहारन का योग मिला तब ।
जातिस्मरण श्रियांस सुलीना, सविधि आहार प्रभू को दीना ॥
इक्षु सुरस मृदु पान कराया, अक्षयतृतिया पर्व सुहाया ।
पंचाश्चर्य हुए नृपगृह में, दानेश्वर पद हुआ भुवन में ॥

दोहा– तीर्थंकर मुनिराज को, जो दे प्रथम अहार ।
अगले या तद्भव विषैं, लह शिव हो भव पार ॥
जिस तरुतल केवल जगैं, वह अशोक कहलाय ।
समय पाय तरु नियम से, अविनाशी पद पाय ॥

जब प्रभु ने चतु घाति निवारे, तभी अनन्त चतुष्टय धारे ।
प्रगटी ज्ञान ज्योति वृषभेशा, पूजें नर खग और सुरेशा ॥
प्रभु उपदेश हुआ सुखदाई, सप्त तत्त्व षट द्रव्य बताई ।
धर्म रत्नत्रय अरु दश लाक्षण, कहीं भावना सोला कारण ॥

दोहा– जगत हेतु अज्ञान है, शिवमग सम्यग्ज्ञान ।
मिटै मोह अरु घाति त्रय, उपजै केवलज्ञान ॥
यातें मेटो मोह अरि, गहो आत्मिक भाव ।
कर्मबंध को छेद कर, लह शिव रमो स्वभाव ॥

दया धर्म का मूल बताया, पुन यति श्रावक धर्म दिखाया ।
निश्चय से वृष एक स्वरूपा, अरु व्यवहार अनेक सुरूपा ॥
निश्चय का साधन व्यवहारा, निरपेक्षा में दोउ विगारा ।
या विध वस्तु स्वरूप बताया, सुनकर सबने अति सुख पाया ॥

दोहा-- आदिनाथ प्रभु का तनुज, वृषभसेन सुन धर्म ।
जग का सब वैभव तजा, हतन हेतु दुठ कर्म ॥
प्रभुवर से दीक्षा गही, तज मतालपुर राज ।
चार ज्ञान धारी हुआ, पाया पद गण राज ॥

जब तक खिरी न भगवत वाणी, मोक्षमार्ग को कोय न जानी ।
जब प्रभु ने शिव मार्ग बताया, हित उपदेशी नाम कहाया ॥
सर्व ज्ञात सर्वज्ञहु नामा, वीतराग निर्दोष विरामा ।
इन्हीं विशेषण आप्त कहाये, निराबाध वचनामृत प्याये ॥

दोहा-- निश्चय सेती सिद्ध सम, सब जिय एक समान ।
कर्मन वश जग में भ्रमत, नाशै हो भगवान ॥
आप चतुष्टय आप में, परका पर में होय ।
जस किय तस फलको चखै, मेंट सकै नहिं कोय ॥

प्रभु के थे गणधर चौरासी, हों सब मोक्ष मार्ग परकाशी ।
कोय प्रश्न किय प्रभुसे ऐसा, तुम कुल मँहको हो तुम जैसा ॥
ज्यों विभूति प्रभु तुमने पाई, तुम कुल मँह पुन को प्रगटाई ।
खिरी वाणि मारीछ कुमारा, मम सम पद वह पावन हारा ॥

दोहा-- सुनी कुंवर मारीच ने, प्रभु पद सम मम होय ।
बढ़ा मान आकाश सम, पाप वृद्धि नित जोय ॥
पाप दुःख की खान है, दे दुख दुर्गति बीच ।
का विध वर्णन कर सकै, सहे दुःख मारीच ॥

प्रथम ऋषभ तीर्थंकर ईशा, क्रम से और हुये द्वय बीसा।
भरत तनुज मारीच अधीरा, हुआ तीर्थंकृत पद श्रीवीरा॥
कौन कौन पर्याय न पाईं, दुःख ही दुख में आयु बिताई।
तीर्थङ्कर भी रुले कर्म वश, करनी को फल पावें हैं तस॥

दोहा—केशरि को पर्याय से, हो सम्यक्त्वी वीर।
क्रम से ज्ञानविभूति लह, काटी कर्म जंजीर॥
छयासठ दिनतक वीर की, समवशरण के मांयँ।
खिरी न वाणी मूर्ति प्रभु, सिद्ध समान दिखायँ॥

जा निमित्त प्रगटै जिनवानी, इमि पुण्यी था कोइ न प्रानी।
होनहारता अमिट कहाई, काललब्धि वाणी नहिं आई॥
अवधिज्ञान से इन्द्र विचारा, गौतम को गण योग्य चितारा।
आया गौतम वीर समीपा, प्रगट होय तब जिनवच दीपा॥

दोहा:—जिनवर के पदमूल में, मुनि दीक्षा जो लेय।
वे ही गणधर पद धरें, धवलशास्त्र उचरेय॥
हुआ न दीक्षित वीर ढिग, अब तक नर खग कोय।
यातें गणधर के विना, खिरी न वाणी सोय॥

पूर्ण मस्करी साधु विचारा, है पद गणधर योग्य हमारा।
दीक्षा बहु प्राचीन हमारी, यातें गणधर पद अधिकारी॥
अङ्ग इकादश के हम ज्ञाता, प्रभु के हम सेवक विख्याता।
गणधर होन नियम नहिं जाना, आतम स्वभाव नहीं पहिचाना॥

दोहा– गौतम मिथ्यात्वी महा, किमि आवे प्रभु पास ।
ता ढिग जा छल वेष धर, किया प्रश्न हरि खास ॥
त्रैकाल्यं इत्यादि जो, मोक्ष शास्त्र में पद्य ।
यही कहा गौतम प्रति, मांगा उत्तर सद्य ॥
जैन धर्म विज्ञान बिन, उत्तर का विध होय ।
यातें गौतम कुपित हो, बोला को गुरु तोय ॥

सुन हरि फूले नहीं समावें, कहा चलो हम गुरुहिं बतावें ।
गौतम वीर सभा में आया, तब पड़ि मानथम की छाया ॥
नशा मान तत्क्षण अब याका, प्रगटा सम्यक स्वभाव ताका ।
वीर निकट जिनदीक्षा धारी, तब हो गणधरपद अधिकारी ॥

दोहा– जिनदर्शन केवल निमित, उपादान इक आप ।
स्वयं बोध गौतम लिया, मेंट जगत आताप ॥
गणधर होने का नियम, मस्करि पूर्ण न जान ।
यातें ऐसा भाव किय, प्रभू गिराया मान ॥

अब विवेक की बात विचारो, राग द्वेष नहिं श्रीजिन धारो ।
नियत नियम ने बात बनाई, पूरण ऋषि चित समझ न आई ॥
गौतम निज का मान नशायो, आप स्वयं समकित उपजाया ।
नहिं जिनवर ने मान मिटाया, ना पूरण का मान गिराया ॥

दोहा– जिनवर मान मिटावते, यह व्यवहारी बान ।
निश्चय जानों आप किय, मान उदय वा हान ॥

वस्तु स्वरूप विचार कैं, बोधि ज्ञान उपजाव ।
नय प्रमाण लक्षण सहित, अपनो रूप लखाव ॥

खिरी वाणि धर्मामृत ध्याई, हो सब जीवन को सुखदाई ।
श्रेणिक नृपति हर्ष अति धारा, गौतम गणि से प्रश्न उचारा ॥
कहो नाथ अष्टम बलभद्रा, राम नाम गुणरत्न समुद्रा ।
तासु चरित प्रभु हमें सुनाओ, जग में सन्मारग प्रगटाओ ॥

दोहा–प्रश्न किया श्रेणिक नृपति, सभा भई सुखवन्त ।
धन्य धन्य मुख उच्चरी, धन्य नृपति गुणवन्त ॥
तुम्र प्रसाद हम भी सभी, करें धर्म को पान ।
चन्द्रसुधा सम नीसरी, श्री गणधर की बान ॥
पढ़ें सुनें सब सुख लहैं, "नायक" इस ही हेत ।
पद्यरूप रचना करी, निजस्वभाव सुख देत ॥

॥ इति श्री सरलजैनरामायणे गौतमप्रश्ननामकः प्रथमः परिच्छेद. ॥

❀ वंशोत्पत्ति का वर्णन ❀

❀ वीर छन्द ❀

प्रथम वंश इक्ष्वाकु कहाया, यासे प्रगटा सूरज वंश।
दूजा सोम वंश कहलाया मानो याको शशि का अंश॥
तीजा विद्याधर कहलावे, चौथा कुल हरिवंश कहाय।
जुदा जुदा तसु भेद बताऊं, जासे सबको संशय जाय॥

दोहा—ऋषभदेव इक्ष्वाकु में, उपजे सुखकर सोय।
तसु सुत चक्री भरत के, अर्ककीर्ति सुत होय॥
अर्क नाम है सूर्य का, यासे सूरज वंश।
प्रगटा परिपाटी चली हो बहुनृप मनु हंस॥

ऋषभ तीन वर्णहिं ठहराये चत्री वैश्य शूद्र कहलाये।
भरत चित्त में जगा विवेका, ब्राह्मण और बढ़ाऊं एका॥
ब्रह्म आत्म के हों जे ज्ञानी, स्वपर दयाको जिन पहिचानी।
तिनका जुदा वर्ण ठहराऊं, उनका ब्राह्मण नाम धराऊं॥

दोहा—थापू ब्राह्मण वर्ण इम, चित चक्रेश विचार।
किया नगर वासीन का, निजगृह जीमनवार॥
मगमें हरित रुपाय तसु, दया परीक्षा लेत।
निर्दय ताको रोंदते, आये भोजन हेत॥

दयाभाव के थे जो धारक, नहीं बने वे हरितविराधक।
ठहरे वे सब बाहर माहीं, मग-बाधित लख आये नाहीं॥

लखा भरत इमि बहु हरषाया, विप्र वर्ण इनको ठहराया ।
ब्रह्म आत्म के हैं ये धारी, धर्म अहिंसा मग संचारी ॥

दोहा— याविध ब्राह्मण वर्णकी, भरत थापना कीन ।
चलैं अहिंसा मार्ग जिमि, ब्रह्म आत्म लवलीन ॥
वर्ण चतुष्टय तबहिं से, हुये जगत विख्यात ।
दया धर्म रक्षक मनुज, हो द्विज जग विख्यात ॥

ऋषभदेव की दूजी रानी, ता सुत बाहूबलि सुखदानी ।
बाहूबलि सुत सोम कहाया, ताने सोम वंश प्रगटाया ॥
यामें परम्परा गत राजा, धर्म शिरोमणि हो साम्राजा ।
आप तरे औरन को तारा, चन्द्र समान किया उजियारा ॥

दोहा— विद्या साधन जिन किया, परम्परा गत राय ।
तसु कुल उपजे राजगण, विद्याधर कहलाय ॥
नमि राजा के वंश से, यह कुल हुआ प्रसिद्ध ।
निज-निज करनी फल लहा, चतुर्गती या सिद्ध ॥

राक्षस वंश यथा विख्याता, तसु वर्णन संक्षेप बताता ।
केवलज्ञान अजित जब पाया, समवशरण तब धनद रचाया ॥
सभय मेघवाहन नृप आया, प्रभु शरणों आ भय विनशाया ।
नहि भय समवशरण के माहीं, रोग शोक अरु बाधा नाहीं ॥

दोहा— राक्षस इन्द्र सुभीम ने, भय युत याको देख ।
आया प्रभु के शरण जब, मित्र समान सुलेख ॥

राक्षसेन्द्र ने तब इसे, राक्षसविद्या दीन ।
सौंपा लंका द्वीप भी, भय से मुक्त सु कीन ॥

लवणोदधि के लखहु समीपा, कहलाता वह अन्तरद्वीपा ।
तास द्वीप का नाम सु लंका, तासु निकट पाताल सु लंका ॥
तँह बैरिन का भय है नाहीं, निर्भय रहै खगप ता माहीं ।
सो भगवन के शरणों आया, लहि विद्या सुख थानक पाया ॥

दोहा- विद्याधर के कुल विषें, राक्षस वंश कहाय ।
तास वंश में भी हुए, महाप्रतापी राय ॥
निज निज करनी फल लहा, चतुगति या शिव थान ।
या विध राक्षस वंश का, किय सँक्षेप बखान ॥

वानर कुल भी प्रगटा जैसे, ताका वर्णन जानो ऐसे ।
खग कुल में श्रीकंठ महन्ता, ता भगिनी इक देवी मन्ता ॥
तनसौन्दर्य देवि सम याका, विद्यागुण भी अनुपम ताका ।
या सम जग में दूजी नाहीं, इमि सुन्दरता है तिस माहीं ॥

दोहा- रत्नपुरी नामा नगर, तँह पुष्पोत्तर भूप ।
तासुत पद्मोत्तर सुगुण, सुता पद्मिनी रूप ॥
पहुंचाया श्रीकंठ ढिग, पुष्पोत्तर निज दूत ।
परिणाओ अपनी बहिन, पद्मोत्तर मम पूत ॥

याविध बहु सँदेश पठाये, तउ श्रीकंठ चित्त नहिं भाये ।
कीर्तिधवल था भूपति लंका, दी भगिनी श्रीकंठ निशंका ॥

पुष्पोत्तर सुन रोस समाया, सुगुण सुपुत्र न शठ को माया ।
सर्व योग्यता मम सुत माहीं, कुल बल रूप कमी कुछ नाहीं ॥

दोहा– एक समय श्रीकंठ नृप, गमना बैठ विमान ।
देखी पुष्पोत्तरसुता, रूप सगुण की खान ॥
ताहि देख मोहित हुआ, वह भी मोहित होय ।
प्रेमपाश विह्वल हुए, काम अंध थे दोय ॥

कर गह ताह विमान बिठारी, नेक न शंका चित में धारी ।
चला जबहि लै राजकुमारी, सेवक शोर किया तब भारी ॥
सुन पुष्पोत्तर अति रिस पाया, पूर्व अवज्ञा बैर बढ़ाया ।
अपनी बहिन न मो सुत दीन्ही, किन्तु सुता मेरी हर लीन्ही ॥

दोहा– पुष्पोत्तर बहु सैन्य ले, चाला कुपित अपार ।
हृतपुत्री ले आऊँ मैं, करके अरि संहार ॥
अधर डसत पीछे लगा, मानो यम ही गाज ।
ज्यों पक्षी आगे भगत, पीछे आवत बाज ॥

लख श्रीकंठ अरी को चीन्हा, बहनोई का शरणा लीन्हा ।
कीर्तिधवल ढिग लंका आके, हुआ निशंकित आश्रय पाके ॥
पूरण हुई नहीं पहुनाई, अरि की सैन्य निकट में आई ।
लख खगदल बहु वाहन चाढ़ा, समर सूचना देय नगाड़ा ॥

दोहा– कीर्तिधवल अतिक्रुद्ध हो, मंत्रिन आज्ञा दीन ।
सजो साज द्रुत युद्ध का, अरिसेना ढिग लीन ॥

सुन इमि वच श्रीकंठ तब, लज्जित हो चित माहिं ।
कहि याकी रक्षा करो, समर करन हम जाहिं ॥
साले के सुन अनुचित बैना, फड़के कीर्तिधवल भुज नैना ।
कहि अनुचित क्यों गिरा उचारी, कौन हीनता समझ हमारी ॥
तुम तिष्ठो हम रण को जावें, क्षण में अरि को मार भगावें ।
इमि कहके महलों में आया, अरि ढिग अपना दूत पठाया ॥
दोहा– दूत विचक्षण जाय कहि, पुष्पोत्तर सों बैन ।
सनहु नृपति आदर सहित, मम वच बहु सुख दैन ॥
कुल वय में तुम श्रेष्ठ हो, जानत हो जगरीति ।
कछू न तुमसे छिप रही, सबहि न्याय अरु नीति ॥

नृप श्रीकंठ सुगुण भंडारा, रवि सम निर्मल तेज अपारा ।
कला निपुणता सुन्दरताई, किसी बात में कमी न पाई ॥
क्यों न देउ कन्या वर ऐसे, वर अनुचित तुम माना कैसे ।
सुता पराये घर ही जावें, इत उत का क्यों नाश करावें ॥
दोहा– पुष्पोत्तर से दूत की, हो रही थी जब बात ।
सखी सुता की आ तभी, बोली सुन भो तात ॥
मैं तुअ पुत्री की सखी, तानें भेजी मोय ।
संदेशा सुन कीजिये, जोन सुहावै तोय ॥
लाज विवश मैं ढिग ना आई, यातें अपनी सखी पठाई ।
नृप श्रीकंठ नहीं अपराधी, मैंने ही सेवा आराधी ॥

पूर्व कर्म सम्बन्ध मिलाया, यातें याको स्वामी बनाया ।
अब वर दूजा मैं नहीं चाहूं, याको छोड़ न पर को ब्याहूं ॥

दोहा-- सुनकर यह संदेश नृप, मन में हुआ सचिन्त ।
सब विधि समरथ हूं तदपि, कन्या कथन अचिंत ॥
सुता स्वयं है कह रही, ये ही वर प्रिय मोय ।
अब जो मैं मारूं इसे, बेटी विधवा होय ॥

या विध निर्णय नृप चित आया, सम्मानितकर दूत पठाया ।
सखि को भेंट दई अति भारी, दूरदर्शिता नृप ने धारी ॥
कर्म महा बलवान कहाया, वर बधु का संयोग मिलाया ।
पद्मावति श्रीकंठ विवाही, पुन्य प्रताप मिलन मन चाही ॥

दोहा-- कीर्ती धवल बोला विहंस, सुनो प्रिया के भ्रात ।
तज दो अपनी जन्म भू, यामें लाभ दिखात ॥
वहां शत्रु तेरे अधिक, मान हमारी बात ।
मन्त्री समझाओ इन्हें, ये महिषी के भ्रात ॥

कीर्ति धवल की आज्ञा पाई, सचिव वर्ग निज माथ चढ़ाई ।
कर विचार बहु द्वीप बताये, अन्तिम बानर द्वीप सुनाये ॥
सुन यह द्वीप नृपति मन भाया, कहा उचित तुमने बतलाया ।
द्वीप प्रवर यह अती सुहावन, कपि क्रीड़त तँह मन विहसावन ॥

दोहा-- बानरद्वीप सुहावनो, साले को दे दीन ।
हर्षित हो श्रीकंठ ने, बहनोई से लीन ॥

निज दल और कुटुम्ब युत, किया वहां प्रस्थान ।
वन उपवन इत्यादि के, लखे मनोहर थान ॥

केला ऐला दाख छुहारे, लोंग इलायची पिस्ता प्यारे ।
सुरतरु से लह इमि सुख पाये, अमृत सम स्वादिष्ट सुहाये ॥
वन उपवन की शोभा भारी, लखकर सौख्य लहैं नरनारी ।
सरिता नीर सुधा सम पीके, सैनिक जन सुख पावैं नीके ॥

दोहा– पक्षी करत किलोल तँह. कपि गण क्रीड़त देख ।
इम लखि नृप हर्षित हुए, अपना स्वागत लेख ॥
आज्ञा दीन्ही सेवकन, कपिन पकड़ ले आव ।
देओ शिक्षा अब इन्हें नृत्य करना सिखलाव ॥

गिरि किहकंद शिखर जब आया, तँह किहकंदा नगर बसाया ।
चौदह योजन पुर लम्बाई, चार दिशा में सदृश रखाई ॥
तहां प्रवेश न अरि कर पावें, रत्न खचित जिन गेह सुहावें ।
स्वर्ग न शोभा या सम पाया, ऐसा अनुपम नगर बसाया ॥

दोहा– एक समय नृप नभ विषें, सुरगण गमनत देख ।
नन्दीश्वर को जात ये, ऐसा मन में लेख ॥
हम भी उत पै जायके, पूजें श्री भगवान ।
इमि विचार तिय कुटुम युत, चाला बैठ विमान ॥

देवन गण संग विमान चलाया, मानुष उत्तर गिरि अटकाया ।
देव विमान गये जब आगे, नरपति आप चलावन लागे ॥

रंच न चला हुआ मुख फीका, नृप को अब कुछ लगै न नीका।
मनोकामना मनहिं विलाई, पूर्ण करन की शक्ति न पाई॥

दोहा—श्रीजिन कहि या गिरि परे, मनुज कभो नहिं जाय।
तदपि भक्ति लवलीन हम, या सुध दी विसराय॥
अब नन्दीश्वर दर्श की, शक्ति को उपजाउं।
ऐसा दृढ़ तप आचरूँ, पुन न विफल हो पाउँ॥

निज पद वज्रकंठ को दीन्हा, आप दिगंबरका पद लीन्हा।
इक दिन नृप ने प्रश्न उठाओ, जनक भवावलि हमें बताओ॥
तब वृद्धों ने इमि बतलाया, जो मुनिवर ने था दर्शाया।
एक वणिक के सुत दो भाई, कारण पाके भई जुदाई॥

दोहा—लघु निर्धन व्यसनी हुआ, बड़ा व्रती धनवान।
लघु को वैभव आप दे, मुनि पद गहा महान॥
धार समाधी अन्त में, सुरपति का पद पाय।
लघु भी समता धार कर, पाई सुर पर्याय॥

सुर चयके श्रीकंठ हुआ जब, संबोधन को निकसा हरि तब।
नन्दीश्वर को जाय यहां ते, पूर्वानुज बोधन इच्छा से।
हरि सम समरथ ये नहिं पाके, हुआ दिगम्बर दर्शेच्छा से॥
वज्रकंठ सुनकर ताका भव, लखा राज्य पदको दुखदा अब।

दोहा—अमरप्रभुहिं निज ज्येष्ठ सुत, दिया राज्य का भार।
वज्रकंठ मुनि पद गहा, त्याग सफल गृह भार॥

तपश्चरण दुर्धर किया, काटी कर्म जँजीर ।
अमरप्रभू का कथन कहुं, अचरज कारी वीर ॥
बने चित्र महलन के मांहीं, सत्य सदृश निज छवि दर्शाहीं ।
एक ठौर वानर चित्रामा, रत्न जड़ित सुन्दर अभिरामा ॥
वानर समझ डरी महारानी, उठे रोंगटे नयनन पानी ।
झरा पसीना भय अति लीन्ही, प्रस्ताव मूर्ति मनौ गढ दीन्ही ॥
दोहा—लखि नृप रानी की दशा, बोला अति रिसयाय ।
महलन में किनने रचे, कपिन चित्र भयदाय ॥
सुन सेवक कांपे सबै, पुन निज शीस नवाय ।
कही न है अपराध मम, सुनहु वीनती राय ॥
तुम बाबा श्रीकंठ कहाया, तिननें ही यह नगर बसाया ।
कपि क्रीड़त लखि या गिर माहीं, उन चित हर्ष समावे नाहीं ॥
नृत्य करन कपियन सिखलाये, वे ही ये चित्राम रचाये ।
उन विन और कौन रचवावे, विन आज्ञा इमि कौन करावे ॥
दोहा—परिणय उत्सव आदि में, मंगल समय लखाय ।
कपिन चित्र कछु और भी, नूतन देंय बनाय ॥
परम्परा की रीति लख, तजहु भूप अब खेद ।
यदि आज्ञा होवै अबै, देहिं चित्र सब छेद ॥
इमि सुन नृप ने समता धारी, परम्परा की रीति विचारी ।
वंशज रीति ने दिय बाधा, नहीं चित्रों का करों विराधा ॥

कपि चित्रन का मान बढाऊं, अपने मुकुट मांहि गढ़वाऊं।
ध्वज में कपि चिन्ह सजाया, निज को कपि वंशी ठहराया ॥

दोहा— अमरप्रभ बलवान नृप, उभय श्रेणि खग जीत।
दीर्घ काल तक राज्य कर, हों जग से भयभीत ॥
इमि विरक्त हो भूप ने, दे निज सुत को राज।
दैगम्बर दीक्षा गही, चहा मोक्ष साम्राज ॥

मुनि पद धारण की परिपाटी, चलि क्रम से हो सुत अरु नाती।
मुनिसुव्रत तक अनेक भूपति, हुए दिगम्बर शिव प्रापति रति ॥
याविध वानर वंश कहाया, ध्वज अरु मुकुट चिन्ह गढ़वाया।
लोक मांहि इमि उक्ति कहावे, चाले यथा तथा कहलावे ॥

दोहा— श्रमहिं प्रयोजन तप धरन, सो नर श्रमण कहाय।
ब्रह्मचर्य पालन करैं, सो ब्राह्मण पद पाय ॥
लाठी राखे हाथ में, सो नर लाठीवान।
मुकुट ध्वजा कपि-चिन्हयुत, सो कपिवंशी जान ॥

या कुल मँह हो नृपति महोदधि, ताकी राणी थी विद्युतमति।
या सिवाय निन्यानव रानी, सुरतिय सदृश गुण रूप खानी ॥
इकशत-अष्ट पुत्र तिन जाये, जग सुख नृप ने सबही पाये।
उसी समय पर भूपति लंका, विद्युतकेश महा बल बंका ॥

दोहा— उदय वीर नरपति महा, प्रेम पाश अनुरक्त।
जग असारता लख हुआ, लंका नृपति विरक्त ॥

नृपति महोदधि भी तभी, मित्र साथ तज राज ।
जग को मैत्री-फल दिखा, गह दैगम्बर साज ॥

श्रेणिक गणधर प्रती उचारा, लंका नृप विराग क्यों धारा ।
तब गणधर ने इम हेतु बताया, यासे नृप चित विराग छाया ॥
एक समय तिय युत नृप लंका, केलि करी वन माहिं निशंका ।
क्रीड़ा हित वन में नृप आया, यहां एक कपि बैठा पाया ॥

दोहा– जब तरु ढिग रानी छिपी, कपि ने दिया विदार ।
रानी चिल्लानी तभी, बही रक्त की धार ॥
इमि लखि नृप ने तुरत ही, कपि को मारा बान ।
तब कपि घायल होय के, गिरा मुनि पग आन ॥

थे मुनि चारण ऋद्धि धारी, वानर की विपदा कूं टारी ।
णमोकार श्रुति में कह दीना, कपि ने झट चितमें गह लीना ॥
मरि कपि उपजा भवनसुवासी, उदधिकुमार हुआ सुखरासी ।
पूर्व चितार कोप चित लावे, बदला लैन देव इत आवे ॥

दोहा– नृपति भटन ने जब हना, वानर का समुदाय ।
तब सुर अवधि विचारकें, शीघ्र यहां पै आय ॥
झट कपि की सेना रची, दिखती अति विकराल ।
आंठ डसें भृकुटी चढी, मड़राया मनु काल ॥

कोई तरु कोई शैल उठाये, आये नृप ढिग भूमि कँपाये ।
चहुं ओर से नृप को घेरा, कहैं शरण गह, को है तेरा ॥

वृथा कपिन को तूने घाता, देखैं अबको तुझे बचाता ।
महा भयकर वदन जिनों का, डरया नृप लख रूप तिनों का ॥

दोहा— यों अद्भुत कपि सैन्य लख, समझ गया चित माहिं ।
कोई सुर माया रची, यह कपि बल है नाहिं ॥
तब नृप ने विन्ती करी, कहो कौन तुम आउ ।
काहे को माया रची, प्रगट हमें बतलाउ ॥

सुर ने लख विनयी हो राया, सत्य भेद ताको बतलाया ।
हे राजन ! तैं बिन अपराधा, हो निर्दय मर्कटन विराधा ॥
कपि स्वभाव चंचल सब मानें राणी अंचल खींचो जानें ।
एक कपि किय तुव अपराधा, तूंने सबही कांपन विराधा ॥

दोहा— यतिवर के परसाद से, किया श्रवण नवकार ।
ता फल मैं सुरपद लहा, पाई विभूति अपार ॥
यों कह विभव दिखाई निज, अद्भुत अपरम्पार ।
लखकर नृप कंपित हुआ, मुख से हाय उचार ॥

तब सुर ने कहि सुन अब राया, चूक करे का तूं फल पाया ।
सुनकर नृप ने शीश झुकाया, मम अपराध क्षमहु सुरराया ॥
सुन कर नृप को गुरु ढिग लाया, देय प्रदक्षिणा शीश झुकाया ।
कर थुति पुन कह भो मुनिराया, तुअ प्रसाद हम सुरपद पाया ॥

दोहा— पुन नृप ने नमकर कहा, देउ सीख मुनिराज ।
जौन भांति कल्याण हो, मिलै मोक्ष साम्राज ॥

चार ज्ञानधारी ऋषि, जान नृपति हिय भाव ।
धर्म पिपासू जान के, कहैं वचन सम भाव ॥

चलो गुरू के निकट हमारे, गुरु मुख सुना धर्म जग तारे ।
आचारज सन्निधि हैं भाई, गहो सार शिक्षा सुखदाई ॥
यातें नहिं अधिकार हमारा, देंय सीख इमि मुनी उचारा ।
पुन मुनि युत इत दोनों आये, गुरु को सबने शीश झुकाये ॥

दोहा-दीजे श्री गुरु देशना, इमि कहि नर सुर राय ।
धर्मामृत वर्षा करी, वीतराग गुरुराय ॥
भाव शुभाशुभ शुद्ध का, विशद स्वरूप बखान ।
स्वर्ग नर्क शिव हेतु ये, तीनों क्रम से जान ॥

मृषा ज्ञान बहिरातम ठाने, आपा पर नहीं भेद पिछाने ।
अन्तरातमा त्रिविध बताया, जघन्य सम्यग्दृष्टि कहाया ॥
अणुरु महाव्रत मध्यम जानों, शुध उपयोगी उत्तम मानो ।
परमातम दो विध बतलाया, तारण तरण सकल कहलाया ॥

दोहा-अष्ट कर्म हर शिव गये, निकल सिद्ध भगवान ।
सप्त तत्व षट् द्रव्य युत, नवरु पदार्थ बखान ॥
निज पद का विज्ञान ही, जानो सत निज रूप ।
"नायक" ध्याओ ताहि को, तभी होहु शिव भूप ॥

॥ इति श्री सरलजैनरामायणे वंशोत्पत्ति निरूपको द्वितीयः परिच्छेदः ॥

अथ देव वा विद्युतकेशके पूर्वभव, विद्युतकेश वा महोदधि राजा का वैराग्य और श्रीमाला का स्वयम्वर आदि का वर्णन प्रारम्भ

—:o:—

❀ वीर छन्द ❀

धर्म स्वरूप सविध वतलाके, सुर खग से बोले ऋषिराय ।
दुर्गति दुःख लहे दोनों के, द्वेष परस्पर में उपजाय ॥
गुरुवर से इमि सुनकर दोई, कहा पूर्व भव देहु बताय ।
लहें बोध जो काविध हमने, द्वेष परस्पर में उपजाय ॥

दोहा– यों सुनकर गुरु ने कहा, सुनो दुहू चितलाय ।
दुःखदाई संसार में, धारीं बहु पर्याय ॥
पुन सुर तूं था पारधी, काशी नामक देश ।
नृप तूं श्रावस्ती विषें, सूर्यदत्त सन्निवेश ॥

समय पाय मंत्र प्रतिबुद्धा, जग सुख को अब लखा विरुद्धा ।
त्याग परिग्रह मुनि पद धारा, देश देश में करत विहारा ॥
काशी के वन माहीं आया, तभी पारधी इनें लखाया ।
तानें मुनि प्रति गिरा उचारी, दृष्टि अमंगल पड़ी हमारी ॥

दोहा– नहिं शिकार मोकों मिलै, लखा नग्न निर्लज्ज ।
तन मलीन पट हीन लखि, हुआ महान अकज्ज ॥

यों कटु वच सुनके मुनि, किया भाव संक्लेश ।
यदपि नहीं कर्त्तव्य मम, करूॅ क्रोध का लेश ॥

तो भी की मन में रिस पुष्टी, चूर्ण करों यदि मारों मुष्टी ।
इमि चित में संक्लेश बढ़ाया, पुण्य चीण हो आयु घटाया ॥
था अधिकारी कल्पसुवासी, अष्टम स्वर्ग आयु सुखरासी ।
आयु घटी याविध पुन मरके, ज्योतिषि देव हुआ आकरके ॥

दोहा— भावन के आधीन है, पुण्य पाप और ठाठ ।
चण मांहीं बढ़ जात है, चण ही में घट जात ॥
अशुभ किये तें पाप, शुभ तें होता पुण्य ।
शुध परिणति तें शिव लहै, पाप पुण्य तें शुण्य ॥

चया ज्योतिषि हो तूं खगपति, मरा पारधी भव ममता अति ।
पुन पारधी लहि कपि पर्याया, तहां विदारी नृप तिय काया ॥
तूंने कपि पर बाण चलाया, तब कपि मुनि के शरणों आया ।
सुन नवकार सुचित हो ध्याया, उदधिकुमार देव पद पाया ॥

दोहा— सुन वीरोंको उचित नहिं, लखे पशुन अपराध ।
सन्मुख द्वन्द मचाय जो, ताका करें विराध ॥
वैर परस्पर का तजो, धरो दुहू सम भाव ।
यातें मोह नशायकें, अविनाशी पद पाव ॥
यों सुन खग जिय समता धारी, मन में दीचा लैन विचारी ।
सुत सुकेश को वैभव दीन्हा, आप दिगम्बर का पद लीन्हा ॥

रत्नत्रय आराधन कीना, मरण समाधि अन्त में लीना।
क्षण में लही देव पर्याया, खग ने सफल करी नर काया॥

दोहा—नृपति महोदधि ने सुना, मुनि पद मित्र संभाल।
सुनतइ हुआ विरक्त चित, तजा जगत जंजाल॥
इमि सुन परिजन पुरजनहु, अति ही करें विलाप।
वहु विध से वर्जन करें, तदपि न पिघलें आप॥

सुन राणी ने मूर्छा खाई, तो भी नृप चित दया न आई।
यदपि पूर्व थे अधिक कृपालू, अब नहिं चित में हौंय दयालू॥
दे स्वराज्य प्रतिचन्द्र कुमारा, आप जाय यति पद को धारा।
सहीं परीषह तप अति कीन्हा, कर्म काट शिव पद को लीन्हा॥

दोहा— समय पाय प्रतिचन्द्र भी, निज पद दे किहकंध।
अन्धक को युवराज कर, चला काटने फंद॥
संयम धर प्रति चन्द्र हू, छेद कर्म का वंध।
अविनाशी पद को लहा, प्रगटा रूप अवन्ध॥

किहकन्धरु अन्धक दुइ भ्राता, दिपैं सूर्य शशी सम अवदाता।
इन सम शासन की चतुराई, अन्य नृपति ने नाहीं पाई॥
आज्ञा सर्व खगों ने मानी, हो प्रसिद्ध इनकी रजधानी।
कोय बात की कमी न पाई, धन जन सबहीं सो सुखदाई।

दोहा—उसी समय दक्षिण विषें, रथनू पुर विख्यात।
अशनिवेग राजा तहां, देवन सम प्रख्यात।

विजयसिंह तसु सुत हुआ, महा प्रतापी शूर ।
खग श्रेणी दोउ जीत कें, लहा सौख्य भरपूर ॥
पुर आदित्य महान सुहानो, विद्या मन्दिर खगपति जानो ।
वेगवती रानी कहलाई, श्रीमाला इक पुत्री जाई ॥
श्रीमाला का रचा स्वयम्बर, खग सुत आये दशों दिशन्तर ।
विजयसिंह भो तंह पै आये, मण्डप माहिं सभी बैठाये ॥
दोहा-आई श्रीमाला जवै, खग सुत करें विचार ।
मोकों वरैं कुमारि यह, मैं होऊं भर्त्तार ॥
सब ही संशय में पड़े, को याके मन भाय ।
श्रीमाला को एक सम, सभी कुमार दिखांय ॥
मण्डप बीच सुता जब आई, सबने ता पर दृष्टि गड़ाई
धाय मंगला परिचय देवै, हेम छड़ी को कर में लेवै ॥
अमुक राय सुत गुणी विशाला, मन भावे डालो वरमाला ।
यों कह क्रम से आगे चाली, कन्या ने वरमाल न डाली ॥
दोहा-ज्यों हंसिनि मोती चुनें, तथा सुता की दृष्टि ।
वही योग्य वाको जंचै, जो निश्चित विधि सृष्टि ॥
जिनके परिचय होचुके, तिनकी छवि हुई चीण ।
वज्र पड़ा जिमि माथ पै, आशा हुई विलीन ॥
यदपि सभी की सुन्दर काया, श्रीमाला को एक न भाया ॥
आई ढिग विहकंध कुमारा, तेज दिपै जिमि रवि उजियारा ॥

धाय याहि के बहु गुण गाई, बानर वंश तनुज बतलाई ।
हो हर्षित वरमाला डारी, हरि की शचि सम बनी दुलारी ॥

दोहा– कन्या निज अनुरूप वर, वरा परीक्षा बाद ।
गुणि गुण का आश्रय गहे, यह सिद्धांत अविवाद ।
यों लख सुजन सुखी हुए, खिन्न हुए जे क्रूर ।
घन धुनि सम कर गर्जना, हुए कुपित भरपूर ॥

विजयसिंह खगपति बहुमानी, याने चित में अति रिस ठानी ।
हो गर्वित बोला मनमाना, नर मँह क्यों कपि घुसा अजाना ॥
दुर्दर्शन विड रूप अकारा, गिरि कंदर वन करत विहारा ।
लाल वदन अरु गुणन विहीना, महचपलपशुनू अतिदीना ॥

दोहा– आया काहे को यहां, हमको शीघ्र बताव ।
निज जीवन की चाह तो, निकल यहां से जाव ॥
आज्ञा दी जिस भृत्य गण, भगा यहां से देहु ।
नाम मात्र को यह खगप, कन्या छीन सु लेहु ॥

किहकन्धरु धारक दुइ भाई, सुनकर इनके अति रिस छाई ।
झट साजी अब इनकी सैना, सुनतइ ही अपकारक बैना ॥
बजे तुरत रण भेरि नगाड़ा, कैयक ने गज थंभ उपाड़ा ।
कैयक सूरन घाव पुराने, लगे रुधिर की धार बहाने ॥

दोहा– कपिवंशी उद्धत महा, भीषण करैं प्रहार ।
भिड़े परस्पर सारथी, अश्वन के असवार ॥

प्यादन से प्यादा भिड़े, मॅचा युद्ध घमसान ।
मितु सुकेश लंकापति, मिला कपिन से आन ॥

मैत्री धर्म निवाहन काजा, कपिन पक्ष मिल रण में गाजा ।
विपति निवारक मित्र कहाया, तन अर्पण को रण मँह आया ॥
किये अरिनि पै शस्त्र प्रहार, याने अरि दल बहु संहारा ।
याकी भृकुटी देख अरि भाजे घन सम रण में ये अति गाजे ॥

दोहा—कलह हेतु जग में तिया, तिय से हो संसार ।
याते बुध तजके तिया, दोउ भवोदधिपार ॥
जयकुमार अरु अर्क रण, हुआ स्वयम्बर माहिं ।
तिन सम रण इनका हुआ, भेद रंच हूं नाहिं ॥

राक्षस वानर वंशी मिलके, लड़े शत्रु से दोनो हिलके ।
उसी समय किहकंध उताला लेकर भागा झट श्रीमाला ॥
तभी विजय को अन्धक मारा, भगा विजय का दल वल सारा ।
स्वामी सन्मुख सेना आगे, नशै स्वामि तव सेना भागे ॥

दोहा— अशनिवेग सुन सुत मरण गिरा मूर्छा खाय ।
समय पाय चेता जबै, रिस से भ्रकुटि चढाय ॥
प्रलय करन उद्यत हुआ, ग्रीष्म सूर्य सम हेर ।
सैन्य सहित प्रस्थान किय, अरि के पुरको घेर ॥

तब किहकन्धरु अन्धक चाले, आये मित्र सकेश उताले ।
मिलकर चाले लगी न देरी, दोउ ओर वाजी रण भेरी ॥

गदा वाण असि चलें कुठारा, करें परस्पर घात अपारा ।
क्रोध अग्नि अति दोउ दिशि बाढ़ी, हनें परस्पर निज रिस काढ़ी ॥
दोहा-अशनिवेग के गर्जतहिं, अन्धक सन्मुख आय ।
इमि लख कर किहकंध भी, आया लघु ढ़िग धाय ॥
रोका याकूं अशनि सुत, विद्युत वाहन वीर ।
मँचा युद्ध घमसान अब, चलें खचाखच तीर ॥
करें परस्पर दुहू प्रहारा, रोकैं एक एक का बारा ।
जब तक दूजा शस्त्र चलावे, तब तक ये भी दांव लगावे ॥
डटे दोउदिशि, हटै ना कोई, रण करने में सुध बुध खोई ।
रवि को तेज दिखावौ नाहीं, ऐसे शस्त्र चलें रण माहीं ॥
दोहा -या विधि से बहुतक समय, बीतो रण के माहिं ।
अशनिवेग क्रोधित हुआ, अन्धक से उचरायं ॥
तूंने मेरा सुत हना, अब बचके कहं जाय ।
ऐसा कहके तुरत ही, अपना शस्त्र चलाय ॥
अशनि शिला ले अरि को मारी, अन्धक की सुध भूली सारी ।
अन्धक गिरा मही के माहीं, कान्ति गई अब चेतन नाहीं ॥
वही शिला किहकंध उठाई, अशनिवेग के माथ लगाई ।
शिला धड़ाका हुआ अपारी, कॉपी दोनों सेना सारी ॥
दोहा-मूर्छित हो अशनी गिरा, सुध बुध दी बिसराय ।
पुन सचेत होके तभी, वह भी शिला उठाय ॥

मागी झट किहकंध को, गिरा मूरछा खाय ।
कांप उठा किहकन्ध दल, भागन को चित चाय ॥
तब सुमित्र लै आया याको, महलन मंह पौढ़ायो ताको ।
कछु क्षण बाद सचेती आई, देखं अधिक दिखाय न भाई ॥
निकट जनों से वचन उचारा, है कंह अन्धक अनुज हमारा ।
सुन सब नीची दिठ कर लीन्ही, अंसुवन सरिता वहाय दीन्ही ॥
दोहा— यातें अन्धक को मरण, निश्चत कर किहकन्ध ।
दक्षिण भुज का भङ्ग लख, हुआ शोक में अन्ध ॥
प्रिय अन्धक लघु भ्रात का, विरह असह्य लखाय ।
तब कहि वाके साथ में, भस्म करूं निज काय ॥
देख मित्र की विकलपाई, नृप सुकेश ने धीर बंधाई ।
शोक धीर को है दुःखदाता, शोक किये तें मिले न भ्राता ॥
पाप बन्ध को शोक बढ़ावे, शोक किये निर्बलता आवे ।
शोक त्याग कर्तव्य विचारो, नशै कौन विध शत्रु हमारा ॥
दोहा— अशनिवेश बलवान अति, सोचत नाश उपाय ।
यासे निज रक्षा करो, छिपी गुप्त थल जाय ॥
काल पाय अरि बल घटै, तब पुन उसे दबाव ।
अधोलोक लंका जहां, छिप कर काल बिताव ॥
ता थानक में भय कछु नांही, निर्भय चलो रहो ता माहीं ।
शोक न छाड़ै बहु समझाया, तब श्रीमाला वस्त्र उठाया ॥

लखि किहकंध हुआ आसक्ता, शोक तजा कर्त्तव्यासक्ता ।
सैन्य सहित पाताल सिधाया, पांछा करन अरी सुत पाया ॥

दोहा— भ्रात विजय के मरण का, लूँ बदला इमि चाह ।
तभी मना किय तात ने, कहि तज मन की दाह ॥
अरि ने तुअ भ्राता हना, मैं भी हन तसु भ्रात ।
अदला बदला हो चुका, तज हट अरु सुन बात ॥

कायर होय समर से पीठ दिखाई, ताके पांछे वीर न लागे ।
जब बैरी ने पीठ दिखाई, तास वीरता मृतक कहाई ।
जब तक तात सुतहिं समझावे, तब तक वहू पतालै जावे ॥
निर्भय हुआ पाय पाताला, निर्मद हुए वितावें काला ॥

दोहा— अशनिवेग ने इक समय, देखा मेघ विलात ।
हो विरक्त संसार से, अब नहिं भोग सुहात ॥
निज पद दे सहस्रार को, विद्युद्वाहन संग ।
जाके यति पद को लहा, शिव की हृदय उमंग ॥

रखा निघात लंकके माहीं, हो ये निर्भय शंका नाहीं ।
सहस्रार की आज्ञा मानें, ताबल पर कूं तृणवत जानें ॥
विजय करन को चला निघाता, कोय न याको अरी दिखाता ।
मन में फूला नाहिं समाया, एक छत्र मैं राज लहाया ॥

दोहा— एक समय किहकंध नृप, मन में किया विचार ।
करें बन्दना मेरु की, श्रीमाला के लार ॥

सजधन बैठ विमान में, मेरु गिरी पै जाय ।
करी भक्ति युत बन्दना, लहा पुण्य अधिकाय ॥
शनैः शनैः तहं तें तब चाला, देखत वन सौन्दर्य विशाला।
कहीं हंस की पंक्ति देखी, श्रीमाला चितमंह सुख लेखी ॥
निर्भर नीर वहैं मन भावन, नृप मन में चह नगर बसावन।
तब राणी तें नृपति उचारा, नगर बसावन भाव हमारा ॥

दोहा–परम रम्य यह थान लख, होवै मेरा भाव।
यहां बसाऊं शुभ नगर, यहां न अरिका दाव ॥
इमि कहकें किहकंधपुर, नगर बसाया राय।
परिजन पुरजन वासहित, रत्नमहल बनवाय ॥

श्रीमाला गुणवंती नारी, भाग्योदय से गर्भ सुधारी।
सूर्य चन्द्र सम दो सुत जाई, सूर्य रच रज नाम रखाई ॥
सूर्यकमल पुन सुता लहाई, यासे श्री ह्री सुरी लजाई।
चन्द्रकला सम वृद्धि पाई, अंग माहिं यौवनता छाई ॥

दोहा–मधुपुर मांही मेरु नृप, मघा प्रिया गुण खान।
सिहदमन इक तासु सुत, नवयोवन गुण खान ॥
सूर्यकमल को कुंवर लख, विह्वल हुआ अपार।
सुत विह्लता देख कर, मेरू किया विचार ॥

मेरु नृपति ने दूत पठाया, किहकंधको सबहाल सुनाया।
कुल गुण आदिक सभी बखानो, कन्या देन उचित वर जानो ॥

सुन किहकंध मंत्र को कीन्हा, पुनि हर्षित हो परिणय दीन्हा ।
सिंहदमन इक नगर बसाया, सुख से दंपति काल विताया ॥

दोहा—लंकापति सुकेश के, त्रिसुत हुए क्रम पाय ।
माली और सुमालि वा, माल्यवान सुखदाय ॥
क्रम क्रम से वृद्धी लहै, विद्या में निष्णात ।
सुर सम ये क्रीड़ा करें, देख मुदित हो तात ॥

एक दिवस चिंतें पितु माता, लंका विषयक सुत अज्ञाता ।
यदी कदाचित जावें लंका, तो निघात खगपति की शंका ॥
पूर्व वैर तें दुख वह देवै, याते इन्हें मना कर लेवें ।
इमि विचार दोउ पुत्र बुलाये, लंका क्रीडन मना कराये ॥

दोहा—सुन निषेध निर्हेतु सुत, प्रश्न पिता से कीन ।
कहो तात क्यों बर्जते, तब पितु उत्तर दीन ॥
अजितनाथ के समय से, था लंका में वास ।
अशनिवेग ने छीन कर, किया निघात निवास ॥

नृप निघात है अति ही क्रूरा, याते रहो वहां ते दूरा ।
पूर्व वैर तें छिद्र निहारै, नितप्रति ही उत्पात विचारै ॥
यातें वा दिशि कबहुं न जाओ, इमि कह नेत्रन नीर बहाओ ।
सुन माली अति ही रिसयाया, भ्रकुटिचढ़ी अरुभुज फड़काया ॥

दोहा—पुनि कहि हमसे आजतक, क्यों तुम भेद छिपाय ।
नेह माहिं हमको ठगा, विरथा समय विताय ॥

अरि से लघुता भजत ते, वृथा शूरपन सेयँ ।
करें प्रतिज्ञा बस यही, लंका वापिस लेयँ ॥
और काम की बात न चाहें, करी प्रतिज्ञा यही निवाहें ।
हमकूं आज्ञा दीजे ताता, जीतें लंका हनें निघाता ॥
मात पिता लख इनको वीरा, जोश चढ़ो इन माहिं शरीरा ।
रुकें न काहू विध ये रोके, दीनी आज्ञा हर्षित होके ॥

दोहा— निकस लंकपाताल से, अति उत्साह समेत ।
ज्यों सुन निकसें भवन से, इमि उपमा को लेत ॥
दल बल युत तीनों अनुज, गिरि त्रिकूट ढिग आयं ।
मानों लंका ही लही, इमि चितमें हुलसायं ॥

दैत्यन पती निघात कहाया, हरथल चौकिन को थपवाया ।
जब माली की सैन्य लखाये, चौकिन के खगपति थर्राये ॥
पुन कइ आये शरणें याके, कई सुनाया प्रभु को जाके ।
जब दल लंका के ढिग आया, तब निघात भी सन्मुख धाया ॥

दोहा— दुहू सैन्य आकर भिड़ीं, रवि का ढका प्रकाश ।
शस्त्रन के आघात सें, निकसें प्रचुर हुताश ॥
हाथिन के मद अति झरे, भरे नीर के कुण्ड ।
घात परस्पर रक्त वह, तैरें रुण्डरु मुण्ड ॥

मँचा युद्ध अति ही घन घोरा, लड़ें परस्पर ओर न छोरा ।
असि बरछी अरु मूसल भाले, चलें चक्र अरु लड़ें गदा ले ॥

अस्त्र शस्त्र के करें प्रहारा, दुहु दल में मचि मारहि मारा ।
एक मरै तब दूजा आवै, वह भी ताको मार गिरावै ॥
दोहा– या विध वीर परस्परहिं, करें भयंकर युद्ध ।
मारामार मँचावते, चित में हो अति क्रुद्ध ॥
लड़ें सुमाली माल्य भी, बहुतक करें प्रहार ।
इनकी मारामार सों, बही रक्त की धार ॥

माली ने इस भांति विचारी, सकल सैन्य नहि शत्रु हमारी ।
केवल शत्रु निघात हमारा, उचित ताहि से वैर चुकारा ॥
कहां छिपा अरि निघात नामी, बन बैठा जो लंका स्वामी ।
अस कह ताहि बाण से छेदा, वाका वक्षस्थल भी भेदा ॥
दोहा– तब निघात आ सन्मुखहि, किया युद्ध घमसान ।
माली अति रिसयायके, मारा ताहि कृपान ॥
हुआ विघात निघात का, भगी सैन्य तत्काल ।
प्रभु बिन अब को टिक सके, होत सैन्य बेहाल ॥
विजय लाभ कर माली राया, लंका जीत मोद बहुपाया ।
मात पिता गुरुजन बुलवाने, नम कर तिनसे आशिष पाये ॥
पुन विवाह की हुई तयारी, सहज सहज इन वरीं कुमारी ।
दोनों श्रेणी वश कर लीनो, आज्ञा विमुख न कोई कीनी ॥
दोहा– भव से विरत सुकेश हो, देय मालि को राज ।
आप दिगम्बर पद गहा, लैन मुक्ति –साम्राज ॥

कर्म नाश केवल लहै, पुन शिव रमणी जोय ।
निज स्वरूप में रमणता, "नायक" हितकर होय ॥

—०—

अथ इन्द्र की उत्पत्ति, इन्द्र सदृश वैभवका निर्माण, मालीका इन्द्र पर आक्रमण

—०—

वीर छंद.—

रथनूपुर सुरपुर सम राजै, राज्य करै खगपति सहस्रार ।
राणी मान सुन्दरी ताकी, हुई गर्भिणी दोहद धार ॥
तातें कृशता तन में छाई, प्रश्न किया सादर भर्तार ।
का चिंता तुय उरमें व्यापी, कहो पूतिकरु' क्षणकसंभार ॥

दोहा— सुन राणी पति के वचन, सविनय इमि उच्चार ।
प्राणनाथ जब से मुझे, हुआ गर्भ का भार ॥
तब से यह इच्छा हुई, करू' इन्द्र पद भोग ।
मैं नहिं अब तक कह सकी, चित मंह लज्जा योग ॥

सुन नृप दोहद पूरण कीन्हा' विद्या बल से बनाय दीन्हा ।
विद्या से कछु दुर्लभ नाहीं, इन्द्र विभूति बनी क्षण माहीं ॥
लखि राणी फूली न समाई, जिमि शशि किरण चकोरी पाई ।
सूर्य तपै या की दिठि आवे, तेज न ताका याहि सुहावे ॥

दोहा—पुन ऐसा परिणाम हो, झुकें नृपन के शीश ।
मोकों करें प्रणाम पुनि, मेरी लेंय अशीष ॥
पूरण नव महिना हुये, हुआ जन्म सुत सार ।
का वरणों किमिसुखलहा, मात पिता परिवार ॥

जन्म महोत्सव नृप ने कीन्हा, वांछितदान यांचकन दीन्हा ।
विद्याधरीनचै पुरमाही, क्षणभू क्षण नभ थिरता नाहीं ॥
नाम तात ने इन्द्र धराया, मित्र बन्धु सबने सुख पाया ।
अशकुन भये अरी आगारी, देंय सूचना क्षय की भारी ॥

दोहा—शशि सम याकी वृद्धि हुई, शस्त्र शास्त्र परवीण ।
महा तेज का पुञ्जये, सूर्य तेज हो हीन ॥
शशि को जीता शील से, दृढ़ता से गिरि मेर ।
गज को जीता जंघ से, दश दिशि कीर्ति बखेर ॥

उभय श्रेणि खगवश कर लीनें, सब के माथे झुकाय दीनें ।
कीनी पुर की शोभा भारी, अमरपुरी सम दिखै अपारी ॥
सहस अड़तालिस ब्याहीं नारी, पटरानी को शची उचारी ।
नट नाचें छब्बीस हजारा, हरि सम वैभव बहु विस्तारा ॥

दोहा— ऐरापति की थापना, लोकपाल भी चार ।
इन्द्र अखाड़ा सम दिपै, हय गय रथ असवार ॥
करें गान गन्धर्व भी, नचें अप्सरा सार ।
पुण्य उदय से सब विभव, हरि सम किय निरधार ॥

अपने को यह हरि ही मानें, पर को तृण सम भी ना जानें।
इक वामी दो सांप समाये, माली समतर इन्द्रहु पाये॥
युग श्रेणिन पै दोउ ललचाये, निज निज आज्ञा दोउ चलाये।
माली अतिमानी बल बंका, रखे न कबहूं याकी शंका॥
दोहा— उत्तम वस्तु जहां लखै, माली जबरन लेय।
हरि बल को अब पायकें, कोउ कछू ना देय॥
जनता की प्रतिकूलता, लखि माली रिसयात।
चला भ्रातृयुत सैन्य ले, करने इन्द्र विघात॥
राक्षस वानर वंशी मिलकर, दोनों दल झट चाले हिलकर।
पैदल वा गज हय रथ चाढ़े, चित शूरन के रणको बाढ़े॥
कैयक चढ़े सिंह के वाहन, कैयक हंस ऊंट असवारन।
तजी अशुभ ने रस दिखलाया, चलतइ ही अपशकुन लखाया॥
दोहा—अशकुन लख माली अनुज, कहा भ्रात सुन बात।
गमन समयआरम्भ में, अशकुन कटु दिखलात॥
बैठा पंख सँकोच के, सूखा तरु यह ढांक।
पुन पुन पंख हिलायके, गमन निषेधै काक॥
रवि की ओर लखें अति भयकर, रोकनको धुनि करें नभश्चर।
रौद्र श्यालनी अति ही फिकरत, सूर्य विंबमें श्रोणित झलकत॥
मुंड बिना ही रुन्ड दिखावे, वज्रपात भी मना करावे।
दिखें युवतियां कच बिखराये, गर्दभ नभ में दृष्टि लगाये॥

दोहा– इत्यादिक अपशकुन ये, रोकत गमन दुकाल ।
लौटो या विश्राम ल्यो, मानो हे जगपाल ॥
माली सुनि इमि भ्रात वच, हंस कर बोला बैन ।
शूर न रण तें लौटते, जय बिन लेंय न चैन ॥

वीर बाहुबल जिन भरपूरा, वे करते हैं अरि का चूरा ।
या पुन निज के प्राण गमावें, अन्य बात नहीं चित में लावें ॥
जगके सब सुख हमने भोगे, अब न चाह ये रहे वियोगे ।
धर्म भाव भी नित ही कीने, रही चाह नहिं जासों जीने ॥

दोहा– जग में शूर शिरोमणि, तिन में हम विख्यात ।
लौटें या विश्राम लें, तो कायर कहलात ॥
जग में होय अकीर्ति तो, जीवन मृतक समान ।
धिक्कारें सब शूरपण, रहै न मेरी शान ॥

वीर वही जो भय ना खावें, वे जग में क्षत्री कहलावें ।
यातें भाई साहस धारो, अब नहिं तुम कछु वयन उचारो ॥
निज के आज्ञा पत्र पठाये, बिजयारध के खगहिं बुलाये ।
आये तिनका आदर कीन्हा, करो अवज्ञा दुख को दीन्हा ॥

दोहा– पुर उजाड़ अति दुख दिया, दीना देश निकार ।
भय सें वे भागे सभी, गये शरण सहस्रार ॥
आके थर थर सब कँपें, बीता कथन सुनाय ।
हमसे माली जबरनहिं, निज आज्ञा मनवाय ॥

या विध दीन वचन उच्चारे, तुम हो रक्षक नाथ हमारे।
प्रखर तेज रवि सम वह माली, अति ही हम पै विपदा डाली॥
पुर पत्तन गृह सर्व उजाड़े, उद्यानन के तरू उपाड़े।
आज्ञा ताकी हम ना मानें, हम तो तुमको निज नृप जानें॥

दोहा- इमि सुन के सहस्रार ने, सबको धैर्य बँधाय।
कहा इन्द्र ढिग जाव तुम, सब विधि करै सहाय॥
स्वर्ग लोकका इन्द्र जिमि, सुर का रक्षक होय।
त्यों सबका ये इन्द्र भी, रक्षक जानो सोय॥

इमि सुन सबने थिरता धारी, हरि ढ़िग आके विपति उचारी।
अपना बीता वृत्त सुनाया, इमि सुनके हरि अति रिसयाया॥
गर्वित होके वचन उचारा, निज पग पटकत भूर्ण कुठारा।
स्वयं करों में अरी निपाता, प्राण दैन वह जबरन आता॥

दोहा- दलपति को आज्ञा दई, सेना शीघ्र सजाव।
बांटो सब हथियार को, सहस्रागार खुलाव॥
इमि आज्ञा के होत ही, शीघ्र सजी सब सैन।
हय गज रथ पै भट चढ़े, अरुण भये तिन नैन॥

सुर विद्याधर सजके आये, वाहन मायामयी रचाये।
ऊँट सिंह अरु गेंडा स्याली, मेढ़ा भैंसा हंस गिडाली॥
या विध भट सज धज कर बैठे, कैयक रथ पर चढ़कर ऐंठे।
सबने अपने शस्त्र सम्हाले, युद्ध करन को हो मतवाले॥

दोहा– इन्द्र लोकपालों सहित, रथ को हो तैयार ।
ध्वजा छत्र शोभा अतुल, ऐरापति असवार ॥
देव कहावें इन्द्र भट, राक्षस इत के जान ।
दोनों को ही मनुज लख, देव न राक्षस आन ॥

भिड़ी परस्पर दोनों सेना, वीर बली नर धीर धरें ना ।
महायुद्ध घमसान मँचाया, निष्पृह हो सब ही निज काया ॥
पहिले निज की ममता टारें, वे ही पर का शीश उतारें ।
कायर की अति कम्पै काया, शस्त्र न उनसे चले चलाया ॥

दोहा– कनक पाश गोफण सहित, चलें परस्पर बाण ।
एक दूसरे को हनें, क्षण में लेवें प्राण ॥
अमरसैन्य से राक्षसन, सेना दबती जाय ।
ताहि समय आगे बढ़े, वानरवंशी राय ॥

वानरवंशिन मार मचाया, राक्षस दल को धैर्य बंधाया ।
हरि दल को इनने अति मारा, सूर्य छिपा फैला अँधियारा ॥
वानर सैना बढ़ती जावे, अमरसैन्य ना ठहरन पावे ।
हरि ने लखी हटी निज सैना, भृकुटि चढ़ी अरु फड़के नैना ॥

दोहा– आप स्वयं उद्यत हुआ, सन्मुख अरि के आय ।
श्रावण भादों वृष्टि सम, बाणावलि बरसाय ॥
चक्र खड्ग मूसल गदा, बाण वृष्टि भरपूर ।
राक्षस वानर पक्ष का, कीना चकनाचूर ॥

माली लखी हटी निज सेना, हरि के सन्मुख कोउ ठहरै ना ।
तब द्रुत हरि के सन्मुख आया, सूर्य समान तेज चमकाया ॥
जैसा माली तैसइ इन्दा, पर्वत कह या दोउ समुन्द्रा ।
वज्रऋषभनाराच शरीरा, चलें खचाखच दोउन तीरा ॥

दोहा– इन्द्र हनन चह मालिको, मालि हनन चह इन्द्र ।
निज निज अंग बचायकें, महा मचाया द्वन्द ॥
बीच बीच में वचन से, करते दोउ प्रहार ॥
कस कस शस्त्र चलाएँ इमि, गिरता वज्र पहार ॥

बहुत समय से लड़ते दोई, रंच मात्र भी हटे न कोई
इनका समर देख दोउ सेना, जय जय कार बोल रहे बैना ॥
धन्य बली ये दोउ वीरा, इन सम बल नहिं और शरीरा ।
नभ से देव पुष्प बरसाये, जय जय की अति नाद गुंजाये ॥

दोहा– माली को हरि ने लखा, सो सम है बलवान ।
तब ही अति रिसयाय के, मारा तेज कृपान ॥
रुधिर बहा तब मालि का, माली शक्ति चलाय ।
रुधिर धार हरि के बही, दोऊ समतर पाय ॥

हरि के रथ पैं माली आया, हरि को पकड़न याने चाया ।
तभी इन्द्र झट चक्र चलाया, चक्र लगत वह प्राण गमाया ॥
गिरा भूमि में तुरतइ माली, विजय पताका हरि ने पाली ।
हरिदल ने जय कार उचारी, धन्य धन्य है शक्ति तिहारी ॥

दोहा—माली मरण सुमालि लख, कंपा चित में भूर।
बली इन्द्र अब सर्व का, करहै चकनाचूर॥
यातें अब ठहरूं नहीं, माल्यवान ले लार।
शीघ्र समर भू को तजूं, अशकुन पूर्व चितार।

होनहार नहिं टरती टारी, भ्रात न मानी बात हमारी।
बहुतक ही मैंने समझाया, वाके चित में एक न आया॥
इमि विचार कर सब ही भागे, टिका न कोऊ हरि के आगे।
भागत लख कर इन्द्र विचारा, अब भी करहों इन संहारा॥

दोहा-पछियाने को मन किया, लोकपाल ढ़िग आंयँ।
कहें नाथ हम होत क्यों, अरि पांछे पछियांयँ॥
हम में से जाको कहो, वहि जाय तत्काल।
करै नाश अरिवंश का, बचै न एकउ बाल॥

सोम प्रती तब आज्ञा दीन्ही, यानें अरि पै चढ़ाइ कीन्ही।
वृष्टि समान बाण बरसाये, राक्षस बानर वंश नशाये॥
माल्यवान सुमाली भाई, लखि अरि ने निज सैन्य नशाई।
लोट सोम पै झट ही आया, भिंडमाल हथियार चलाया॥

दोहा-- लगा सोम के उर विषें, गिरा मूरछा खाय खाय।
तब तक वे सब भागकें, पहुंचे निज थल जाय॥
सोम उठा देखा तभी, अरि से शूना थान।
पुण्य उदय से पूर्ण अब, विजय आपनी जान॥

लौट सोम हरि के ढिग आया, अरि का सब वृत्तांत सुनाया।
भागे अरि सब प्राण बचाके, मूसा भगैं छिपैं जिमि जाके॥
सुनत इन्द्र चित में अति हरसा, ऐरापति पर बैठा हरि सा।
लोक पाल युत पुर को चाला, चंवर ढुरें सिर छत्र विशाला॥

दोहा—विजय पताका फरहरी, कीर्ति दशों दिशि छाय।
इन्द्र,इन्द्र सम दिपत तंह, शोभा बरणि न जाय॥
नगर सजाया पुर जनन, कनक ध्वजा फहराय।
विरद बखानें बंदिजन, चिर जीवो हरि राय॥

राजमहल में ज्यों ही आया, मात पिता को शीश झुकाया।
मातपिता से आशिष पाई, फलैं बेलि सुख की अधिकाई॥
सुनके इन्द्र बहुत हर्षाया, मन में फूला नाहिं समाया।
अपने को अब हरि ही माना, कोउ न दूजा अब हरि जाना॥

दोहा— वसुन्धरा विजयार्ध की, मानी स्वर्ग समान।
लोकपाल वैभव सभी, हरि सम निज का जान॥
मान बढ़ा आकाश तक, नर भव अपना भूल।
नहिं विवेक चित में उपज, पुण्य जगत सुख मूल॥

लोकपाल चहुंदिश विस्तारे, सोम वरुण यम धनद उचारे।
पंचम लोकपाल निरमापा, नाम वैश्रवण लंका थापा।
वृत्त वैश्रवण इमि बतलाया, कौतुक मंगल नगर कहाया।
व्योमबिंदु था तंह का राई, कौशिक केकशि सुता कहाई॥

दोहा– कौशिकि यौवनवंत लख, सचिवन से उच्चार ।
को वर याके योग्य है, सचिव करहु निरधार ॥
मंत्रिन मंत्र विचारकें, विष्णु नृपति बतलाय ।
हर्षित हो तब नृप ने, कौशिकि दी परणाय ॥

समय पाय के गर्भ उपाई, याने तनुज वैश्रवण जाई ।
वृद्धो को शिशु क्रम से पाया, अति बल विद्या का उपजाया ।
याही इन्द्र लखि बुलाय लीन्हा, लंका थाने थापन कीन्हा ।
लोकपाल हरि का कहलाया, हरि बल गर्वित अति मद छाया ॥

दोहा– कँह हरिकँह माली नृपति, कर्म मिलापसु कीन्ह ।
पुण्य पाप फल प्रबलता, विजय हार को दीन्ह ॥
पुण्य उदय से विजय अरु, पाप उदय से हार ।
"नायक" दोउ नशायकें, उतरो भवदधि पार ॥

॥ इति चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ सुमालीके रत्नश्रवा पुत्रकी प्राप्ति, रत्नश्रवा का केकसी से विवाह, रत्नश्रवाके दसमुख, कुम्भकरण, और विभोषण की प्राप्ति का वर्णन

वीर छंद—

नाग लोक में बसै सुमाली, रत्नश्रवा सुत उपजा याहि ।
महाशूर जग विदित महाभट, महामना सह गुण समुदाय ॥
मित्र जनों का नित उपकारी, परहित अर्पित आप शरीर ।
सुधा समान वचन हित कारी, दुखियों की नित हरता पीर ॥

दोहा– रहै धर्म में रत सदा, रखै सरल परिणाम ।
वीर जनों में अग्रणी, पर हित बुद्धि ललाम ॥
पर धनको तृण सम लखै, पर तिय मात समान ।
मद मत्सरहु विहीन नित, रूप सुगुण की खान ॥

धर्म अर्थ पुरुषारथ साधै, काम और चित शिवआराधै ।
याचक जन को वांछित देवै, कबहुं न चित में प्रमाद सेवै ॥
रत्नश्रवा इमि गुण भंडारा, रचा विधाता जगत मँझारा ।
गुण ही गुण को ताने पाये, वर्णन करत पार ना आये ॥

दोहा—धीर वीर रत्नश्रवा, विद्या साधन हेत ।
पुष्पकवन प्रविशा तभी, चित में हर्ष समेत ॥
महा भयंकर वन यदपि, अति साहस चित धार ।
आसन अचल जमायके, विद्या जपै अपार ॥

इक मुनि आये करत विहारा, व्योमविंदु नृप तिने उचारा ।
सुनहु नाथ इक शल्य हमारी, ताहि मिटाव जगत हितकारी ॥
सुता केकसी वर बतलायो. मेरे मन की शल्य मिटावो ।
आप सर्व बातन के ज्ञाता, परम दयालू जग के त्राता ॥

दोहा—तीन ज्ञान धारी मुनी, जग जीवन हितकार ।
शल्य मिटावन नृपति की, अवधिज्ञान विचार ॥
कहा नृपति से श्री मुनी, सुता तिहारी भूप ।
भाग्यवंत सुखकारिणी, वर होगा अनुरूप ॥

मंत्रहेतु वन पुष्पक आवै, हो अडोल नहिं भयको खावै ।
वह याका वर निश्चय जानो, रंच न यामें शंका मानो ॥
पदवीधर सुत को उपजावै, यों सुन नृप अति हर्ष सु पावै ।
उचरी थुति, हे मुनि हितकारी, आप मिटाई शल्य हमारी ॥

दोहा-तभी नृपति ने वन विषें, सुभट रखे बहु शूर ।
वे भी देखत वा घड़ी, कब विधि देहै पूर ॥
वन में तंह रत्नश्रवा, मंत्र साधने आय ।
तभी सुभट वे आयकें, नृप को हाल बतया ॥

हर्षित हो नृप आके देखा, पुत्री योग्य सगुण वर लेखा।
सुता केकसी तभी बुलाके, राखी सेवा हित ढिग याके॥
कहै सुता सों सुन वच मेरा, महापुरुष यह है पति तेरा।
श्री मुनिवर ने मुझे बताया, मैं भी तोकों वही जताया॥

दोहा-प्रमुदित चित्त पुत्री तहां, सेवा में चित दीन।
होवै विद्या सिद्ध कब, इमि आशा मन लीन्ह॥
नियम पूर्ण याका हुआ, सिद्धन शीस नवाय।
विस्मित मुख सन्मुख लखी, इक कन्या शिर नाय॥

हो गुरु विनय शिष्य के द्वारा, तिमि कौतुकमइ दृश्य निहारा।
चन्द्र वदन मृग लोचन याके, बैठी है क्यों, ये शिर नाके॥
या लक्ष्मी या सरसुति आई, या खग की ही सुता कहाई।
यों संशय मन में उपजाया, निश्चय एक नहीं कर पाया॥

दोहा-तब वासे यों प्रश्न किये, कौन अर्थ बन आय।
काकी तूं पुत्री अहो, क्या तेरे मन चाय॥
यों सुन वह हर्षित हुई, ज्यों घनरव सुन मोर।
पियत रूप मइ रंहरस, जैसे चन्द्र चकोर॥

मुदित होय इमि वचन उचारी, व्योम बिन्दुकी सुता दुलारी।
नाम केकसी मैं कहलाई, तुम्र सेवा हित तात पठाई॥
ऋषिवर ने था उन्हें उचारा, हो तुमसे सम्बन्ध हमारा।
यातें मोय आप ढिग राखी, इमि कहि भू में दृष्टी नाखी॥

दोहा– रत्नश्रवा सुन वचनइमि, मनहुं सुधारसदी प्याय ।
जैसी मन में चाह थी, मिली भाग्यबश आय ॥
विद्या आई ता घड़ी, मानस थंभन नाम ।
कहै नाथ आज्ञा करहु, क्या सेवा को काम ॥

विद्या को दी आज्ञा राई, रचहु पुरी अति ही सुखदाई ।
आज्ञा पाय तुरत रच दीन्ही, रत्नपुरी सम रचना कीन्ही ॥
गृह पंकति निज भवन बिराजें, कूप तड़ाग वापिका छाजें ।
पुष्पांतक तसु नाम रखाया, परिजन पुरजन को बुलवाया ॥

दोहा– ब्याह केकसी से किया, रत्नश्रवा गुणवन्त ।
सुख सों काल वितीत कर, रविसम तेज दिपन्त ॥
एक समय पर केकसी, स्वप्न लखी सुखी दाय ।
हो प्रभात तब सखिनियुत, सजकें पतिढिग आय ॥

नृप ने उठकर आदर कीन्हा, अर्धासन पै विठाय लीन्हा ।
पुन नृप विहंसत गिरा. उचारी, कहो देवि क्या आश तिहारी ॥
असमंजसता क्या चित छाई, जातें प्रात सखिनि युत आई ।
मन का भाव शीघ्र प्रगटावहु, मेरे चित की शल्य मिटावहु ॥

दोहा– मुदित होय राणी कही, लखे स्वप्न मैं तीन ।
मुख में मेरे हरि धँसा, गज का मद हर लीन ॥
दुतिय स्वप्न देखा तभी, सूर्य गोद में आय ।
सन्मुख बैठा चन्द्रमा, तीजा स्वपन लखाय ॥

इन स्वपनन फल बताउ स्वामी, तुम सब बातन अन्तरयामी ।
चन्द्र सुधा सम वचन तिहारा, मम उर सुख उपजावन हारा ॥
जिम सुरतरु है सब सुखदायक, या चिंतामणि चित सिद्धायक ।
त्योंहि तिहारी श्रद्धा धारी, शीश नाय इमि वचन उचारी ॥

दोहा– हर्षित हो नृप चिंतया, अष्ट निमित्त सुज्ञान ।
पुनि राणी प्रति स्वप्न का, फल इमि किया वखान ॥
क्रम से त्रय सुत होंयगे महा वली विख्यात ।
यश फैले तिहुं लोक में, अरि का करें निपात ॥

का महिमा हम तिनकी गावें, सिंह समान पराक्रम पावें ।
अधिकहि तेज दिपांय रवीतें, निज कान्ती से शशि को जीतें ॥
निज गाम्भीर्य समुद्र हरावें, थिरता से गिरि पर जय पावें ।
दिवि तें चय कें नर तन धारें, हों इमि बलधर हरि भी हारें ॥

दोहा-चक्री सम पावें विभव, लक्षण उदधि समान ।
नाम सुनत ही अरि कंपें, इमि पहिलो बलवान ॥
अष्टम प्रतिहरि क्रूर हो, धारै हठ अति मान ।
संबोधन नहिं कोउ कर सकै, जो चित में ले ठान ॥

स्वप्नन का फल सुन कर राणी, मन में फूली नाहिं समानी ।
हो पदवीधर पुत्र हमारा, पै मानी हठि क्रूर उचारा ॥
हम अनुरूप दंपती पावें, क्रूरताई सुत कंह से आवै ।
यों चिंतन कर वेग उचारी, क्यों हो सुत इमि अवगुणधारी ॥

दोहा– सुनत प्रियाके इमि बचन, कहा नृप यों बैन ।
मनो सुधा मुखसे झरै, शशिसम सुख कूं दैन ॥
सुनहु प्रिये जिनवर कहें, कर्म बंधा यह जीव ।
निज भावन अनुसार ही, जग में भ्रमत सदीव ॥

भाव कुभाव किये जे प्राणी, बंधै फलै यों विधी बखानी ।
मात पिता इक निमित्त जानो, नहिं भावन के कर्त्ता मानो ॥
पुत्र स्वयं ही कर्त्ता भर्त्ता, मात पिता नहिं कर्त्ता धर्त्ता ।
निश्चय से यों विधी बताया, पर निमित्त व्यवहार कहाया ॥

दोहा– जातें पहिलो पुत्र कछु, धारै क्रूर स्वभाव ।
ताके दोनों ही अनुज, धारें सरल स्वभाव ॥
आप तरें पर तारहैं, काटें कर्म जंजीर ।
नाशें बंध अनादि जिमि, भिन्न होय पय नीर ॥

यों कह सुन के सुख उपजाया, सुख से दम्पति काल विताया ।
गर्भ दशा पुन केकसि पाई· तभी क्रूरता या विध छाई ॥
पग रख अरि शिर पुन ना टालों, ऐसी चाह हुई मैं चालों ।
इन्द्रन पै निज हुकम चलाऊं, निज आज्ञा कर सभी नवाऊं ।

दोहा– बिना हेतु भृकुटि चढ़ी, असि में आनन देख ।
इमि उद्धत चेष्टा भई, कहा करें उल्लेख ॥
बीते जब नव मास तब, पुत्र हुआ सुखदाय ।
पुण्योदय ने ता घड़ी, अरि आसन कम्पाय ॥

देव दुन्दभी वजनें लागे, लहा वहुत याचक विन मांगे।
करें नृत्य नभचरि नभ मांहीं, सब हिय हर्ष समावे नाहीं॥
रवि तें तेज अधिक शिशु पाया, महा वलिष्ठ दिखे तसु काया।
हो अशकुन अरि के गृह माहीं, क्षय सूचक पै अवधी नांहीं॥

दोहा– पूरवजों को पूर्व में, हरि से पाया हार।
सहस देव रक्षा करें, सूर्य चन्द्र उनहार॥
ताहि हार को निकट लखि, शिशुने हाथ पसार।
पकड़ा अपनी मुष्टि में, पुलकै शिशू अपार॥

एक दिवस का शिशु कहलाया, निज पौरुष अतिशय प्रगटाया।
इमि लख माता अति अकुलाई, हार छुड़ावन जोर लगाई॥
विफल हुई शिशु तऊ न छाडै, ये छुड़ाय त्यों पकड़े गाढ़ै।
चहैं छुड़ावन भय की मारी, शिशु खीचैं देवैं किलकारी॥

दोहा- सहस देव रक्षित यदपि, तदपि मुष्टि में लीन।
ताहि लखै क्रीड़ै मनो, हुये देव वलहीन॥
देखी अद्भुत वात यह, कंह सुर कंह नर जात।
सुरहू नहिं कछु कर सके, हुआ पुण्य नर हात।

हार छुड़ावन सुर गण हारा, शिशु वल माना अपरम्पारा।
वहु शक्ति है याके माहीं, या सम वली जगत में नाहीं॥
चारणमुणि ने पूर्व उचारी, केकसि सुत हो पदवी धारी।
ताहि सवैं प्रत्यक्ष लखाया, सचमुच पदवीधर कहलाया॥

दोहा— झलके दश मुखहार मंह, मनु दशमुख शिशु मांहि ।
हर्षित हो कहि शिशुइसो, जग में देखो नाहिं ॥
रखा दशानन नाम तसु, या दशमुख रखवाय ।
भई प्रतिष्ठा अति घनी, सबही सौख्य लहायँ ॥

दूजो गर्भ केकसी धारी, सुखी हुये सबही नर नारी ।
पुत्र हुआ घट उत्सव कीन्हा, परिजन पुरजन अति सुख लीन्हा ॥
कुम्भकर्ण तसु नाम रखाया, रवि सम याने तेज दिपाया ।
फेर केकसी सुता उपाई, चन्द्रनखा उपमा को पाई ॥

दोहा— समय पाय पुन गर्भ लहि, हुए विभीषण वीर ।
धर्म मूर्ति सम ये दिपें, शांत सुखद गंभीर ॥
दशमुख की शैशव क्रिया, को कर सके बखान ।
'नायक' शुभ माहात्म्यसे, जगसुख लहा महान ॥

॥ इति पंचम परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ दशमुख, कुम्भकर्ण और विभीषण को विद्याओं का लाभ वर्णन प्रारम्भ

—०—

छंद—

एक समय पर मातु गोद में, बैठा दशमुख पहिरेहार ।
आये ताही समय वैश्रवण, जिसके दलका अति विस्तार ॥
यों आडम्बर नभ में दीखै, दशदिश में छाया उद्योत ।
अतिनिकट प्रस्थान करन से, दशमुख ऊपर पड़ी सुज्योति ॥

दोहा— हेरा दशमुख नभ विषें, पुन मां से उच्चार ।
है यह मानी कौन नग, सब को तुच्छ निहार ॥
यें दशमुखका प्रश्न सुन, मां मुख हुआ उदास ।
दीन बयन अति उच्चरी, लेकर दीर्घ उसास ॥

लोकपाल हरि का कहलाया, तुम्र मौसी का पुत्र कहाया ।
विद्या सर्व सिद्ध हैं याको, या सम बली कहैं अब काको ॥
तेरा पूर्वज नृप था माली, ता हन हरि ने दी रखवाली ।
कुल क्रम से चलि आई लंका, ताहि छीन निज बजाय डंका ।

दोहा— थान भ्रष्ट या मरण में, प्रथम असह दुःख दैन ।
मरण दुःख को इक समय, प्रथम दहै दिन रैन ॥

ऐसा दिन कब आय जब, निज कुल की भू पायँ ।
तेरी प्रभुता देखकर, सब चित में हरषायँ ॥

दीन वचन इमि माय उचारी, नयनन नीर बहाया भारी ।
रुषित विभीषण ताहि उचारी, वृथा माय तूं लघुता धारी ॥
वीर जननि तूं जग विख्याता, दीन वचन क्यों बोलै माता ।
अब तक दशमुख शक्ति न जानी, देखी भस्म न पावक मानी ॥

दोहा-मण्डित लक्षण श्री विजय, महा बली विख्यात ।
शत्रु वर्ग के दलन को, चाहै ना पर साथ ॥
जाके हाथ चपेट से, होवें पर्वत चूर ।
इक ही यह सब अरिन को, करहै चकनाचूर ॥

माँ को धैर्य बंधाय अपारा, पुन दशमुख हू वचन उचारा ।
अहो माय तूं रहस्य खोला, जल हृदय पड़ गया फफोला ॥
अब तूं सत्य मान ले मेरी, शीघ्र पूर्ति हो अब ना देरी ।
सभी रिपु को क्षण में मारूं, अपना बदला वेग निकारूं ॥

दोहा-हम सुबीर यद्यपि प्रबल, तउ खग कुल कहलायँ ।
यातें विद्या साधने, अब हम बन को जायँ ॥
जैसे शिव मग साधने, साधू वन में आयं ।
तप कर कर्म विनाशके, मन वांछित शिव पायं ॥

यों कहि मातुपितहिं शिर नाके, चले विपन को आशिष पाके ।
सिंह दहाड़े दश दिशि मांहीं, रवि का तेज दिखावे नाहीं ॥

अजगर तहां करै फुङ्कारा, व्यन्तरगण का हो हुंकारा।
नर खग सुर थर्राय तहां पै, तीनों भाई आए यहां पै॥

दोहा- आसन जुदी लगायकें, बैठे तीनों वीर।
अचल अडोल अकंप हो, शान्ति भाव धर धीर॥
सर्वकामदा प्रथम जप, भूख प्यास मिट जाय।
डेढ़ दिवस में सिद्ध हुई, वाधा अब न सताय॥

पुन सुचित हो ध्यान लगाया, तहां अचानक यक्षप आया।
संग यक्षिणी भी है याके, ध्यान लगायें देखा आके॥
जँह पर बैठे तीनों भाई, निकट यक्षिणी झट हो आई।
अरु पुन या विध इनें उचारी, कहा हृदय अभिलाश तिहारी॥

दोहा- भोग योग्य नव वयस में, तजा भोग किस हेत।
पै ये कछु नाहिं सुनें, मानो भये अचेत॥
उपल मूर्ति सम ये दिखें, कछु ना वयन उचार।
मारा कुण्डल हृदय में, तउ न रोष चित धार॥

महा वीर थे तीनों भाई, तीनों आसन अचल जमाई।
तब पुन कौन डिगावन हारा, आके केतक करै प्रहारा॥
हंसकर यक्ष अनावृत बोला, मानो मुख से पटकत गोला।
क्या चाहत हो हमें बतावो, वृथा काह कों ढोंग रचावो॥

दोहा—अधिपति जम्बूद्वीप का, मैं हूं जग विख्यात।
मुझे छांड़ ध्याते किसे, बताउ मन की बात॥

तो भी ये बोले नहीं, तब चित में रिसयाय ।
आज्ञा दीन्ही किंकरन, इनको देहु भगाय ॥

आज्ञा पाय भृत्य अति भड़के, इंधन लह जिमि अग्नी धंधके ।
वैसहिं क्रूर स्वभाव जिनों के, शय तें औरहु उभड़ तिनोंके ॥
कई उठाव शैल तरु लाये, वज्रपात सम शब्द मचाये ।
कइ बन नाहर आय दहाड़े, रूप भयंकर वनाय ठाड़े ॥
दोहा—कइ अहि बनकें लिपट तन, कई मत्त गजराज ।
महा घूम कैयक करी, दावानल प्रज्वलात ॥
वायु प्रचण्ड वहाइ कइ, मनो प्रलय ही आय ।
ऐसो किय उपसर्ग तऊ, इन चित अडिग लखाय ॥

हुए न विचलित जब सुर देखा, धीर वीर नरवर इन लेखा ।
पुन चिंतन कर कीनी माया, मनो नगर पुष्पान्तक आया ॥
भील सैन्य है संग में याके, मात तात को बांधा आके ।
परिजन पुरजन सवही बांधे, कस कसकें वेड़िन से सांधे ॥
दोहा—तब ही माता केकसी, अति ही करै विलाप ।
हे सुत वेग छुड़ाउ तुम, बंधे माय अरु बाप ।
परिजन पुरजन सब बंधे, भगिनी बन्धन पाय ।
केश पकड़ खींचत कहें, वेचन कूं ले जाँय ॥
इतने पै भी थिरता धारी, रुदन करत पुन माय उचारी ।
लेय न जावें हमें छुड़ावो, कुछु विवेक तो चित में लावो ॥

निज मुख सेती पूर्व उचारा, मम तन बल है अपरम्पारा ।
दोउ श्रेणि नृप रण में जीतों, क्यों नहि जीतो इनें अभी तो ॥

दोहा– इतने पै भी नहि डिगा, दशमुख अचल समान ।
तब पुन बोली केकसी, रे सुत धूर्त समान ॥
हा हा तूं ने व्यर्थ ही, मेरी कूंख लजाय ।
बन्धन से न छुड़ावता, तुझे लाज नहिं आय ॥

वृथा विभीषण विरद उचारा, लेश न बल को तूं ने धारा ।
कायर हीन नपुंसक है तूं, साधे विद्या काहे को यूं ॥
मात पिता ही भये दुखारी, अरु भगिनि की खेचें सारी ।
तूं ने कुल की लाज गमाई, हा धिक धिक कह रुदन मचाई ॥

दोहा-नहिं इतने पै भी डिगा, डिगे न वे दोऊ भाय ।
विचित्र माया तब रची, तीनों को भयदाय ॥
लुना शीश अब तात का, तीनों को बतलाय ।
इतने पै भी नहिं डिगे, आसन अचल जमाय ॥

तब पुन माया यक्ष विचारी, दशमुख शिर पै असि कों मारी ।
दिखा दुहुनको दशमुख शीसा, दिखाय दशमुख उन दुहुपीसा ॥
तऊ दशानन अकंप धीरा, उन दोउन के व्यापी पीरा ।
यक्ष डिगावन कमी न राखी, पूरण शक्ति विचलावन नाखी ॥

दोहा-तब ही विद्या सिद्ध हुई, सहसत अनेकन भूर ।
दशमुख अचल अकम्प तें, लहिं विद्या भरपूर ॥

यथा दिगम्बर जैन मुनि, कर निज निर्मल ध्यान ।
अष्ट कर्म तरु छेद के, पाते पद निरवान ॥
कुम्भकर्ण पण विद्या पाई, चार विभीषण ने उपजाई ।
यों लखि यक्ष अति हर्षाया, लज्जित होके शीश झुकाया ॥
भांति भांति से थुति उचारी, धन्य धन्य है शक्ति तिहारी ।
द्यो आज्ञा हम दास कहाये, वस्त्राभूषण को पहिनाये ॥

दोहा– दशमुख हर्षित होयके, सिद्धन शीश निवाय ।
नियम पूर्ण करके उठा, जैसी थी चित चाय ॥
विद्या परखन के निमित, आज्ञा वाको दीन्ह ।
सुन्दर इक नगरी रचहु, ताने रचना कीन्ह ॥
रत्नन की गृह पंकति पाई, जिन मंदिर शोभें सुखदाई ।
ध्वजा पताका तंह फहराती, मनो स्वर्ग परसन ललचाती ॥
रत्न विम्ब शोभें पद्मासन, प्रातिहार्य युत मोहै आसन ।
तास स्वयंप्रभ नाम रखाया, मनो प्रकृति ने स्वयं रचाया ॥

दोहा– दशमुख निज अनुजों सहित, पुर में किया प्रवेश ।
सब सुख सामग्री लखी, नाहिं त्रुटि का लेश ॥
पुण्योदय, माहात्म्य लख, हर्षित हुआ अपार ।
विद्या का वैभव लखा, क्षण में हो तैयार ॥
कष्ट सहन किय दशमुख वीरा, नहिं चितमें ये हुआ अधीरा ।
अल्प दिवस विद्या बहु पाई, लहै न वर्ष दशहु के मांहीं ॥

ये सब लखी पुण्य की माया, कहां अचानक सुर इत आया ।
सुर उपसर्ग करन चित ठाजी, इन्हें डिगावन की मन मानी ॥

दोहा— नतमस्तक हो यक्ष अब, कहि अशीष तुम लेव ।
अधिपति जम्बूद्वीप का, नाम अनावृत देव ॥
मैं प्रसन्न तुम पै हुआ, चिर जीवो सुख पाउ ।
निष्कंटक तुव राज हो, चिन्तो निकट लखाउ ॥

बहुत भांति थुति निज मुख गाई, बहु आशीष दीन्ह सुरराई ।
लीनी विदा अनावृत देवा, पुण्य करावै सुर से सेवा ॥
जग में पुण्य महा बलवन्ता, यातें हों तीर्थेश महन्ता ।
हरि हल चक्री पदहिं दिलावै, का वैभव नहिं जग में पावै ॥

दोहा— दशमुख बहु विद्या लहीं, यश छाया चहुं ओर ।
परिजन पुरजन इम सुखी, मेघ देख जिमि मोर ॥
भेंट देय सब ही मिले, मन में धरें उमंग ।
राक्षस बानर वंश महँ, हर्ष समांय न अँग ॥

तात आदि ने मिलन विचारी, चाले बैठ अनेक सवारी ।
शैल पंच संगम पै आये, यों सुन दशमुख अति हर्षाये ॥
दशमुख ने कीन्ही अगवानी, दादा तात गुरु जन ज्ञानी ।
सबके चरणन शीस झुकाया, दै आशीश सब हृदय लगाया ॥

दोहा—दशमुख की कृति विनय लख, सब हरषे चितमाहिं ।
यह पदवीधर पुरुष है, या में संशय नाहिं ॥

मात पिता हर्षित हृदय, पुत्र स्पर्शन कीन ।
मानो निधि त्रय खण्ड की, पाई आज नवीन ॥
उच्चासन गुरुजन बैठाये, दशमुख ने उवटन लगवाये ।
सबने थाको मध्य बिठारा, कलश ढराये अपरम्पारा ॥
गायँ युवतिजन मंगलचारा, पुन सब मिल जयकार उचारा ।
यों अभिषेक विधि करि पूरण, पुन पहिनाये वस्त्राभूषण ॥

दोहा– गुरुजन होय प्रसन्न अति, दीनी बहुत अशीष ।
चिरजीवहु सुख को लहो, होहु त्रिखण्डी ईश ॥
दशमुख ने अति विनय किय, यथा योग्य सन्मान ।
दान यांचकन को दिया, पुन पूजे भगवान ॥
देव शास्त्र गुरु वन्दन कीन्हा, अतिशय पुण्य बंध कर लीन्हा ।
महा पुरुष ये ही कहलावें, सुख में धर्म बिसरि ना जावें ॥
दुख में वृष को सभी चितारें, वे मह, दुख सुखमें न बिसारें ।
जो कोउ देव शास्त्र गुरु वन्दत, श्रद्धा सुखप्रद पाप निकंदत ॥
दोहा– पाय प्रसंग सुमालि ने, दशमुख के उच्चार ।
दर्शन को मैं इक समय, आ कैलाश मंझार ॥
मुनि अवधि ज्ञानी प्रती, कही कहो प्रभु मोय ।
लंका माहिं प्रवेश हो, या प्रवेश नहिं होय ॥
श्री मुनि ने तब अवधि विचारी, पुन मोसे इमि गिरा उचारी ।
पौत्र होय तेरा बलवन्ता, करि है वही रिपुन को अन्ता ॥

तीन खण्ड का हो वह स्वामी, सर्व श्रेष्ठ पुरुषन में नामी ।
आज सत्य वच मुनि का पाया, मेरे मन में निश्चय आया ॥

दोहा– विहंसत दशमुख ने कहा, सुन दादा मो बात ।
श्री जिन धर्म प्रसाद से, सब ही सुलभ दिखात ॥
एक चन्द्रमा नभ विषें, सर्व तिमिर हर लेत ।
'नायक' इक सुत कुल विषें, दुख हर सुख को देत ॥

॥ इति षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ रावण को चन्द्रहास खड्ग की सिद्धि और मन्दोदरी से विवाहादि वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

नगर असुर संगीत सुहावन, खगपति मय अति ही बलवन्त ।
मन्दोदरि प्रभु सुता कहाई, ताको लखि अब योवनवन्त ॥
सुन्दर रूप गुणों कर मंडित, वर हो पुत्री के अनुरूप ।
कबै मिलेगो धन्य घड़ी वह, यों चिंतै चित में नित भूप ।

दोहा- राणी से नृप ने कहा, सुता योवनहिं पाय ।
बतलाओ अब वर सुगुण, देंय सुता को ब्याह ॥
इमि सुनकर वानें कहा, सुनहु नाथ मम बात ।
प्रसव सुरक्षा मात वश, शेष तात के हात ॥

जहँ पर उचित योग्य वर पावो, तहँ पर नाथ सुता कूं ब्याहो ।
इमि राणी ने गिरा उचारी, निज चिंता का भार उतारी ॥
नृप मंत्रिन से मंत्र विचारे, कहो योग्य वर जंचै तिहारे ।
नृप वच सुन कोउ इन्द्र बताया, कोऊ अन्य वरहिं दर्शाया ॥

दोहा- सचिवों की सुन नृपति पुन, आप स्वयं दी राय ।
मोकों तो दशमुख जंचै, वीर गुणन समुदाय ॥
अल्प समय में सिद्ध की, विद्या सहस प्रमान ।
होनहार मोकों दिखै, महापुरुष मति मान ॥

नृप ने, या वर योग्य उचारा, सुन सब को हो हर्ष अपारा।
कहा, अहो प्रभु, भली विचारी, धन्य धन्य है बुद्धि तिहारी॥
सब की राय पायके राई, काज बनावन यों दर्शाई।
चलो वहां ही पुत्री ब्याहें, वर से मित्र पुन कार्य निबाहें॥
दोहा—दशमुख वृत्त लखाने, भेजा दूत सयान।
जाके वाने सब लखा, आके किया बखान॥
चन्द्रहास के साधवे, गये भीम वन माहिं।
और बात सब ठीक है, यामें संशय नाहिं॥
सुन कर नृप ने की तैयारी, लेय सुता मन्त्रिन दल भारी।
नगर स्वयंप्रभ के ढिग आये, दल को तंह पै ही ठहराये।
मंत्रिन, सुता संग में लीन्हे, प्रवास पैदल नृप ने कीन्हें।
लखी नगर की शोभा भारी, मनो स्वर्ग को शोभा हारी॥
दोहा—नगर निकट बन के विषें, महल लखा सतखंड।
तंह दशमुख का वास सुन, पहुँचे नृपति तुरन्त॥
इक कन्या को तंह लखा, तासें बोले बैंन।
कहो, कहां दशमुख गये, मिलन तर्स रहे नैन॥
यों सुन चन्द्रनखा हर्षाई, नृपको उच्चासन बैठाई।
विनय युक्त सकुची सुकुमारी, इमि लखि मयने गिरा उचारी॥
हे पुत्री एकाकिनि वासा, काहे कीन्ही क्या है आशा।
बनदेवी सम यहां विराजी, भय निवार नर रहवे राजो॥

दोहा—यों सुन चन्द्रनखा तभी, बोली मंजुल बैन ।
मनों सुधा ही सिंचवै, कोकिल सम सुख दैन ॥
मैं दशमुखकी बहिन हूं, चन्द्रनखा मम नाम ।
चन्द्रहास को साधने, आए भ्रात इस धाम ॥

असि को सिद्ध भ्रात कर लीनी, मम रक्षा ता सुपुर्द दीनी ।
गये भ्रात जिन दर्शन काजें, आवत होंगे आप विराजें ॥
ताही क्षण परकाश लखाया' अतिशय तेजवंत ढिग आया ।
चन्द्रनखा तब वयन उचारी, आए भ्रात निज द्युति विस्तारी ॥

दोहा-आए दशानन ढ़िग विषै, मय ने स्वागत कीन्ह ।
आपस में मिलकर सभी, समुचित आसन लीन्ह ॥
दशमुखकी द्युतिलखि समझ, मनु रवि शशि इत आय ।
सर्व लोक सूना हुआ, महलन द्युति छिटकाय ॥

मय के संग सचिव थे आये, लखि दशमुख को अति हर्षाये ।
सबने मय की थुती उचारी, धन्य धन्य वर बुद्धि तिहारी ॥
यह वर हम सब के मन भाया, कुलगुण वय अति सुन्दर काया ।
परख जोंहरी ज्यों ले हीरा, गहै हंस मुक्ता सर तीरा ॥

दोहा-पुन दशमुख से इमि कहा, सुनहु वयन सुकुमार ।
आप कीर्ति जग विस्तरी, शशि किरणन उनहार ॥
तेज सूर्य सम दिप रहा, विकस पद्म जग जीव ।
करे प्रशंसा भ्रंग सम, लखत सुगंध अतीव ॥

अरु अतुल्यबल तुमने धारा, तसु महात्म्य फैला जग सारा।
अल्प दिवस में विद्या पाई, लहैं कोउ दस वर्षों ताईं॥
यों सुन मम नृप अति हर्षाके, मिले वेग सों, तुम ढिग आके।
नगर असुर संगीत महीपति, 'मय' प्रसिद्ध दैत्यों के अधिपति॥

दोहा-यों सुन दशमुख मुदित हो, मय प्रति वयन उचार।
करी कृपा दर्शन दिये, है धन भाग्य हमार॥
पाहुनगति तुअ करन की, मोमे शक्ति नाहिं।
कहा प्रशंसा उच्चरूं, हैं यों गुण तुम माहिं॥

दशमुख की इमि सज्जनताई, लखि हर्षित हो चित में राई।
पुनि मय ने हू यों उच्चारा, है दशमुख तुअ तेज अपारा॥
तात मात तुअ धन्य कहाये, तोसे महा पुरुष को जाये।
कहं तक करूं प्रशंसा तेरी, नहिं है शक्ति उचरने मेरी॥

दोहा-सुन दशमुख परशंस निज, अधोदृष्टि क्रिय नैन।
विनय सहित पुन मय प्रती, बोला मंजुल बैन॥
चलहु पूज्य श्री जिनभवन, दर्शैं श्री जिनराज।
थुति पूजन कर सुख लहैं, हम तुम मिलकर आज॥

यों कह जिन मंदिर में आये, दर्शन थुति कर पूज रचाये।
लहि आनँद इमि हों रोमांचित, निकसे बाहर कर पुण्य संचित॥
दशमुख मय युत बैठे आसन, की चरचा निज निज अनुशासन।
महापुरुष की बोली वाणी, का उपमा से जाय बखानी॥

दोहा— दशमुख की दृष्टि गई, मन्दोदरि की ओर ।
हुआ मुग्ध दशमुख, समझि, चित्त चुरावन चोर ॥
शुभ लक्षण मुख छवि दिपै, या सम शची न होय ।
इमि लखि कर विह्वल हुआ, सुध बुधको दी खोय ॥

पुन दशमुख मन माहिं विचारी, है ये ब्याही या है क्वांरी ।
इमि संशय किय चित्त मँझारा, मैं परणूं तो भाग्य हमारा ॥
या बिन विफल जीवना मेरा, ऐसा सोच पुनहिं पुन हेरा ।
मयने याकी दृष्टि लखाई, समझ गया हुई चित की चाई ॥

दोहा— जैसी चित में चाह थी, वैसी विधि ने कीन्ह ।
आपस में दोनों मिले, दिठि से दिठि गह लीन्ह ॥
पहले से कहता यदो, करता अस्वीकार ।
होत मनोरथ भंग मम, या विधि कीन विचार ॥

मन्दोदरि को निकट बुलाई, वाके कर कों याहि गहाई ।
पुन मुख से इमि वयन उचारा, हुआ आज सम्बन्ध तिहारा ॥
सबने जय जयकार उचारी, चिरजीवो वर वधु सुखकारी ।
चन्द्रनखा अति ही हर्षाई, जैसी भावज तैसा भाई ॥

दोहा— लखा दशानन स्वप्न सम, सुध बुध रहि कछु नाहिं ।
स्वप्ने में दुर्लभ हुती, हुई क्षणक के माहिं ॥
मुदित होय चि०के विषें, जिमि निर्धन निधि पाय ।
जिमि मयूर धन सुनत या, चन्द्र चकोर लखाय ॥

यावि‍ध दशमुख अति सुख पाया, मन में फूला नाहिं समाया ।
जो चिंती वह क्षण में पाई, हो अतिशय मम पुण्य सहाई ॥
पुण्य जगत में सब सुख दाता, जिमि सुरतरु से सर्व लहाता ।
चिंतै चिंतामणि सुख पावै, बिन चिंतै वृष सब सुख लावै ॥

दोहा– ब्याह हुआ अति हर्ष युत, वर वधु संगम पाय ।
उत्सव अति भारी हुआ, शोभा वरणि न जाय ॥
मय आदिक प्रस्थान किय, आये अपने थान ।
'नायक' रमें स्वरूप में, यह ही सुख की खान ॥

॥ इति सप्तम परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ दशमुख द्वारा हजारों कन्याओं का वरण तथा मन्दोदरी के इन्द्रजीत और मेघनाद पुत्र की प्राप्ति का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छंद ❀

सहसों कन्या परणि दशानन, तामें मन्दोदरी प्रधान ।
भोगें भोग मनोहर दंपति, चन्द्र चांदनी सम उपमान ॥
विद्या बल कर दशमुख मंडित, बहु विध चेष्टायें दिखलाय ।
कौतूहल उपजाय यथेच्छित, अनुपम रूप रचै सुखदाय ॥

दोहा– कभी सूर्य या शशि बने, कभी अग्नि सम तेज ।
कभी पवन या उदधि सम, कबहुं अश्व अति वेग ॥
कभी थूल या सूक्ष्म सम, होवै कबहुं अदृश्य ।
कभी भयानक रूप रच, कभी मनोहर दृश्य ॥

या विध दशमुख रचके माया, निज विद्याका बल दिखलाया ।
देख सर्व तिय चकित सु होवें, मनहु स्वप्नहो हम जब जोवें ॥
दशमुख का अखण्ड बल जानीं, इन सहवास भईं अभिमानीं ।
अपने को सब धन्य उचारीं, सभी हुईं थीं पति को प्यारी ॥

दोहा– एक समय दशमुख नृपति, मेघ शैल पै आय ।
तँह लखि निर्मल वापिका. अमृत सम जल ताहि ॥

कीड़ें तहं वहु खेचरी, बना रम्य सोपान।
करत किलोलें जलचरहु, मगर मत्स्य हंसान ॥
आया दशमुख वापी तीरें, छह हजार कन्या तंह क्रीड़ें।
यौवन रूप छवी अति प्यारी, रंग भरें मारें पिचकारी ॥
कैयक मुलकत नीर उछालें, केई अपना चीर सम्हालें।
तन सुगंध तें अलि इत आये, कन्यन के मुख पै मंडराये ॥
दोहा—दशमुखको लख सवहिं का, मन मोहित हो जाय।
क्रीड़त ही सब रह गईं, सुध बुध दी बिसराय ॥
याहि भांति दशमुख दशा, रहे परस्पर हेर।
नयनन सें नयना मिले, भई लगी न देर ॥
हर्षित हो दशमुख ढिग आया, हिल मिल संगहि केलि मंचाया।
दशमुख पर वे सब जल फेंकें, ये हो मुदित सर्व को छेकें ॥
आपस में सब मतो विचारी, अब न बनें दूजे की नारी।
या सम पुरुष न कोऊ दूजा, यातें वरहें करहैं पूजा ॥
दोहा—क्षण भर में प्रस्ताव हो, और समर्थन लीन्ह।
दशमुख अनुमोदक हुये, व्याह गंधरव कीन्ह ॥
पुन क्रीड़ा प्रारंभ किय, जिमि वर वधू की होय।
मुलकति पुलकति गात इन, अटक रही ना कोय ॥
इत कन्यन संग जो थे आये, यों लखि वे सब अति घबड़ाये।
जाय प्रभू पैं वृत्त सुनाया, वहां अचानक दशमुख आया ॥

केलि करत थीं वापी तीरा, आपहु आय मचाई क्रीड़ा ।
पुन कछु मंत्र सबों पै कीन्हा, अपनी रमणी बनाय लीन्हा ॥

दोहा— यों सुनकर के खगपति, चित में अति रिसयायँ ।
पुन दशमुख के हनन को, बहुतक सुभट भिजायँ ॥
दशमुख ने देखा जबै, खग दल ढिग मड़राय ।
तबहि विचारी चित्त में, समर करन ये आय ॥

झट ही निकस वापि तें आया, क्षण में सबको मार भगाया ।
ज्यों गज दल ढिग आय चिंघाड़ै, सिंह अकेला उन्हें पछाड़ै ॥
जान बचा कर सब हो भागे, आय नये स्वामी के आगे ।
कँपते कँपते वचन उचारे, सुनहु वीनती नाथ हमारे ॥

दोहा— शस्त्र सँभालो आपनें, या पुन शीस उतार ।
समर करन समरथ नहीं, दशमुख बली अपार ॥
शक्र न समतर करन कूं, औरन की क्या बात ।
हम तो सहजहिं दीन हैं, इमि कह नायो गात ॥

सुन सुभटन वच खगपति सारे, होय कुपित रण साज सम्हारे ।
सभी चले सज सैन्य विशाला, कन्यन ने ढिग लखा उजाला ॥
नभ में शब्द दशों दिशि छाया, टिड्डी सम खग दल मड़राया ।
अकुलाकें दशमुख ढिग आई, भय युत या विध वच उचराई ॥

दोहा— हम निमित्त से आप पै, विपति भयंकर आय ।
सबल शरण लो या छिपहु, जिमि विपदा टरि जाय ॥

पुण्य हीन हम सर्व हैं, कर न सकीं कछु भोग ।
इन्द्रजाल सम सुख लखीं, हो क्षण माहिं वियोग ॥

आप जिनालय में छिप जावें, जासों अरी न देखन पावें ।
जब वे स्वयं लौट के जावें, तब पुन आप निकस के आवें ॥
सुन दशमुख सबके भय वैना, भ्रकुटि चढ़ी अरु फड़के नैना ।
ललनन को अति धैर्य बंधाया, कहा गरुण पै खगदल आया ॥

दोहा– मम बल को जानों नहीं, याते अति भय खाउ ।
क्षण में इन्हें नशाउंगो, चित में धीरज लाउ ॥
इमि सुन सबने वीर वच, चित में अति हरषाय ।
कहीं मांग पूरी करहु, इमि कहि सब शिर नाय ॥

यों लखि दशमुख उन्हें उचारी, मांग लेहु का मांग तिहारी ।
तभी सबहिं ने वैन उचारे, आये हैं ये बन्धु हमारे ॥
निज रक्षा करियो रण माहीं, उनका भी क्षय होवै नाहीं ।
यही मांग इक पूरी कीजो, विनय सबहिं की मान सुलीजो ।

दोहा– तथास्तु दशमुख ने कहा, शीघ्र चला रण हेत ।
झटपट बैठ विमान में, बाण वृष्टि कर देत ॥
अरि ने शस्त्र चलाय जो, कर उन चकनाचूर ।
अपने शस्त्र प्रहार तें, कष्ट दिया भरपूर ॥

महा पराक्रम याहि शरीरा, टिके न कोउ याके तीरा ।
क्षण में सबके शस्त्र निवारे, निज शस्त्रन तें उनें विदारे ॥

पुनि अपने चित माहिं विचारी, करदूं मूर्छित अरि दल भारी ।
याते तामस बाण चलाया, क्षण में अरिदल मूर्छित पाया ॥

दोहा-- नाग पाश से बांधके, दशमुख हर्ष लहाय ।
ललनन ने लखि पति विजय, बन्धू बन्धन पाय ॥
तभी सभी ढिग आयकें, पति से विनय उचार ।
बन्ध मुक्त बन्धन करहु, यों कह बारम्बार ॥

धन्य नाथ है शक्ति तिहारी, हमने क्षण में ताहि निहारी ।
वे अनेक हो प्रभु तुम एका, तउ परास्त किय उनें अनेका ॥
जो थी तुमसे मांग हमारी, वा विवेक तें पूरी पारी ।
रक्षे निज कूं उन हू रक्षा, सफल हुई प्रभु आप परिक्षा ॥

दोहा-- याविध से अति थुति करी, ललनन बारम्बार ।
दशमुख ने तब मुक्त किय, बन्धू जनन निहार ॥
वे भी विस्मय युक्त हो, दशमुख की उर हेर ।
याने क्षण में सबहिं को, बांधत करी न देर ॥

महापुरुष दशमुख अति वीरा, विनय युक्त बोला गंभीरा ।
आप हमारे मान्य कहाये, क्षमहु कष्ट जो सबने पाये ॥
यों सुनके सब हर्ष लहाया, धन्य धन्य कह अति यश गाया ।
कुल गुण विनय शूरता भारी, इमि कह सबने थुती उचारी ॥

दोहा--सब खग नृपतिनि ने लखा, सुता योग्य वर याहि ।
तब ही हर्षित होय कें, पाणि ग्रहण कराय ॥

दशमुख से आज्ञा लई, आये सब निज थान ।
निजपुर को अब तियन युत, दशमुख किया प्रयान ॥

परिजन पुरजन की अगवानी, हर्षित हुए गुरु जन ज्ञानी ।
नृपति कुंभपुर सुता दुलारी, लाय स्वयंप्रभ नगर मंझारी ॥
कुंभकर्ण को वह परिणाई, जैसा वर तैसी वधु पाई ।
ज्योतिनगर नृप सुता बुलाये, जबहिं विभीषण को परिणाये ॥

दोहा– परिजन पुरजन सबहिं ने, किया मंगलाचार ।
बहु उत्सव पुर में हुआ, बाजे बजें अपार ॥
यांचक जनकों दान दिय, खगिनि नृत्य सुकीन्ह ।
बन्दी विरद बखानते, गुरुजन आशिष दीन्ह ॥

मन्दोदरि अब गर्भ सुधारी, मात-पिता के नेह सिधारी ।
तँह पर इन्द्रजीत सुत जाया, उभयपक्ष ने हर्ष मनाया ॥
समय पाय दशमुख बुलवाई, सुत युत मन्दोदरि इत आई ।
इन्द्रजीत अब हुआ कुमारा, हरि सम क्रीडा करै अपारा ॥

दोहा– पुनः गर्भ याके रहा, गई माय के माहिं ।
आनन्द से सुत को जना, गर्जत मेघ लखाहिं ॥
मेघनाद सबने कहा, हर्षित हो सुत नाम ।
समय पाई मन्दोदरि, आई पति के धाम ॥

दशमुख ने अति ही सुख लीन्हा, दान याचकन को अति दीन्हा ।
दोऊ सुत लख गुण भण्डारा, चन्द्र सूर्य की हैं उनहारा ॥

शस्त्र शास्त्र के दोई ज्ञाता, बृहस्पती भी इन्हें लजाता ।
पुण्ययोग सुख वैभव पाया, जग सुख लहै पुण्य की माया ॥

दोहा- धन-कन कंचन राज सुख, पुण्य योग तें होत ।
पुण्य पाप दोऊ तजै, प्रगटत आतम ज्योति ॥
यातें गह परमार्थ कूं, गुण अनंत प्रगटाय ।
'नायक' रमत स्वरूप में, अविनाशी पद पाय ॥

॥ इति अष्टमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
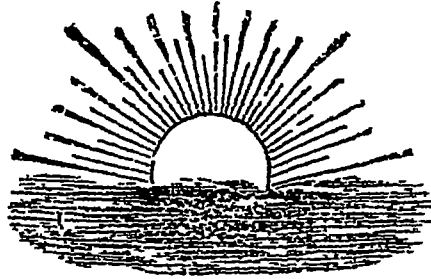
अथ दशमुख और वैश्रवण का युद्ध, दशमुख की विजय, वैश्रवण का दीक्षाग्रहण और मोक्ष लाभ वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

करै वैश्रवण राज्य जहां पै, कुम्भकरण तंह धाणा देय।
माल तहां से हर के लावै, नगर स्वयं प्रभ में धर लेय॥
नृपति वैश्रवण सुन रिसयाया, भेजा दूत सुमाली पास।
आज्ञा पाकर भीतर आया, जहं पै सभा लगी थी खास।
दोहा—बोला दूत सुमालि से, सुनहु बात हे देव।
नृपति वैश्रवण जो कहा, मम मुख से सुन लेव॥
तुम कुलीन वाग्मी चतुर, लोक रीति में विज्ञ।
श्रेय मार्ग दिखलावते, न्यायवंत नीतिज्ञ॥
या विधि तुमने गुण गण पाया, तुअ सन्तति अवगुण समुदाया।
वे हैं कलह बीज के बोता, मना करो तुम अपने पोता॥
योग्य अयोग्य विवेक लहावें, मनुज नाम को वे ही पावें।
नहीं विवेक, तो पशू कहाया, जिन आगम में एम बताया॥
दोहा—विज्ञ वही कहलात हैं, भूलै ना गत बात।
विद्युत सम वैभव गिनें, पाके नहिं इतरात॥

भ्रात मरे पै तुम भगे, अपना प्राण बचाय ।
कुम्भकरण फिर से करै, वंश विघात उपाय ॥

भूल गये क्या इन्द्र प्रतापा ?, फिर सें करत सहन संतापा ।
इन्द्र अथाह उदधि गंभीरा, क्यों तुम उछलति नदि सम नीरा ॥
इन्द्र सर्प जनु मुख सम कन्दर, ना मेंडक बन खेलो अन्दर ।
करन कुमद परिणाम विचारो, जड़से अब कुल नास चितारो ॥

दोहा—यदि पोता वा तिन तनुज, तुम वश में नहीं आंयँ ।
तो भेजा मम प्रभु हिकट, दैके दंड सिखायँ ॥
बात यदी मानों नही, वेड़ा बंध लहाव ।
भोगो दुःख कुटुम्ब युत, सजा किये की पाव ॥

दूत वयन तें परे फफोला, पुन सुदूत कहने मुख खोला ।
तभी दशानन उसे उचारा, मानों कोप्या अहि फुङ्कारा ॥
तन से वही स्वेद की धारा, सूर्य अरुण सम नयन विकारा ।
गज मत्ता चिंग्घाडत ठाड़ा, या कोपित हो सिंह दहाड़ा ॥

दोहा—कौन इन्द्र को वैश्रवण, जो निज को नृप मान ।
हुआ श्याल कहि केहरी, त्यां तूं ताहि बखान ॥
नाम इन्द्र से होत नाहिं, इन्द्र सारिखा काम ।
निज भट से निज देश में, कहलाया हरि नाम ॥

रे कुदूत तूं कटु आलापै, नहीं डरा तूं खड़ा कहां पै ।
यों कहि दशमुख कुपित अपारा, दूत हनन कोखड्ग निकारा ॥

खड्ग तेज से सब दरबारा, चमका मानों रवि उजयारा ।
तभी विभीषण बर्ज्या भ्राता, न्याय नीति, मत करो विघाता ॥
दोहा—निज प्रभु का ये दासहै, ना इसका अपराध ।
कहै स्वामि सन्देश को, ना निज स्वारथ साध ॥
गत पौरुष याको गिनो, प्रभु को बेंचा गात ।
भूतग्रस्त वा शुक सदृश, कहे कही प्रभु बात ॥
बाजै बाजा ज्योंहि बजावैं, ता अनुसार शब्द निसरावै ।
वा समान ही याको जानो, हनों न याको मेरी मानो ॥
दूत हने वह अपयश जोवै, दूत वनन कोउ खड्ल होवै ।
शक्ति दिखाउं प्रभु पै याके, हनों ताहि को आश्रित जाके ॥
दोहा—याविध दशमुख से कहैं, मृदुल विभीषण बैन ।
सुनत दशानन रिस तजी, चित में पाया चैन ॥
पुन कटु वच कह दूत को, दीनी बहु धिक्कार ।
किया अती अपमान तसु, दीना तुरत निकार ॥
घोर असह्य हुआ अपमाना, इमि स्वामी से जाय बखाना ।
जो न विभीषण मत समुझावै, तो मम प्राण वचन नहिं पावै ॥
सुनत वैश्रवण अति रिसयाया, मनो प्रलय का साज सजाया ।
महा सैन्य ले निकसा बाहर, यक्ष जाति खग योधा जाहर ॥
दोहा—हय गज रथ प्यादन सहित, सेना उदधि समान ।
कुपित वैश्रवण गर्व से, किया शीघ्र प्रस्थान ॥

दशमुख भी याके प्रथम, किया गमन रक्षा हेत ।
गुंज शैल तें दोउ मिले, हुआ युद्ध संकेत ॥

वादित्रन का नाद अपारा, मँचा भटन से रण संहारा ।
मानो शय ही स्वामी देवै, विजय अशीष सुभट मनु लेवैं ॥
महायुद्ध घनघोर मचाया, लख न परै जँह अपुन पराया ।
गज से गज हय रथ असवारा, पदचर सैन्य असंख अपारा ॥

दोहा– मायामई वाहन चढ़े, आये सम्मुख वीर ।
लड़ें परस्पर ओंठ डस, चले खचाखच तीर ॥
भिंडमाल शक्ती गदा, छस छस चले कृपान ।
गिरें भूमि में भट तवहिं, क्षणमें छांड़ें प्रान ॥

अरि पे शस्त्र चलांय उताला, रगड़ लगें उठि, प्रचंड ज्वाला ।
मचा युद्ध अति ही घनघोरा, मार काट मँचि चारों ओरा ॥
भिड़े परस्पर में दल दोई, लेश मात्र भी हटे न कोई ।
वीर वैश्रवण चलाए तीरा, हटे राक्षसन के वर वीरा ॥

दोहा– दशमुख ने ज्यों ही लखा, हटती सेना मोर ।
शीघ्र आप आगे वढ़ा, रिस छाई घनघोर ॥
चँवर ढुरें युग शीश पर, रत्नाभूषण कांति ।
चढ़ि आयो इत इन्द्र जनु, ऐसी होती भ्रांति ॥

मरे वैश्रवण के बहु वीरा, घलें दशानन के जब तीरा ।
हय गय रथ सब याने भेदे, वाण वैश्रवण के सब छेदे ॥

वाणन व्याप्त किया नभ याने, आय न कोऊ या सम्मुहानें ।
लखा वैश्रवण तव पछताया, मैं अनुचित ही समर मॅचाया ॥

दोहा– ज्यों वाहूवलि भरत से, कर भारी तकरार ।
पुनि पछताया निज हृदय, की मैं अनुचित रार ॥
ताहि भांति ही वैश्रवण, मन पछताया भूर ।
वृथा समर कर याहि से, हुआ गर्व मम चूर ॥

हुआ गर्व वश मैं अभिमानी, निज हाथन से की निज हानी ।
चिंत्य वैश्रवण ताहि उचारो, राजलक्ष्मी क्षणिक विचारो ॥
पुन मौसी का सुत हूँ तेरा, क्यों तूं अनुचित करै घनेरा ।
रण में होती हिंसा भारी, नर्कन के दुख देने हारी ॥

दोहा– याविध से कहि वैश्रवण, तीन भांति दर्शाय ।
रण परास्त फल को लखा, तव यों रचा उपाय ॥
अस्थिर नाता वध घना, सुना दशानन वीर ।
वोला दशमुख गर्जि तव, वचन तीक्ष्ण जिमतीर ॥

ये न आयतन धर्म उचेरा, जो कह सो मैं मानूं तेरा ।
यह प्रांगण है वीर जनों का, मारें या मर जायें जिनोंका ॥
उपदेशन का अवसर नांहीं, अव विचारले यह मन माहीं ।
वहुत कहे कछु लाभ न पावो, युद्ध करो या माथु झुकावो ॥

दोहा– करतव पालन ना करै, फिर भी नहीं शर्माय ।
वातन से निपटे नहीं, यह रणक्षेत्र कहाय ॥

दो में एक कछू करो, रण या सेवक होहु ।
दोऊ बातें ना बनें, समय वृथा क्यों खोहु ॥

दो मुख सूई सिये न कंथा दो मुख पंथी चले न पंथा ।
दोई काज ना हौंय सियाने, जगसुख शिवसुख भी ललचाने ॥
याते बातन में ना टालो, पैर पड़ो या शस्त्र सम्हालो ।
मुख्य प्रयोजन अब है ऐती, और कहहु तुम बातें कैती ॥

दोहा—सुन दशमुख के वचन इमि, हुआ वैश्रवण लाल ।
रिस कर बोला रे अधम, आया तेरा काल ।
रे दशमुख ना गर्व धर, कर झट शस्त्र प्रहार ॥
शीघ्र दिखाओ पराक्रम, देर किये का सार ।

सुन दशमुख कहि तुमहू बाहो, बार बड़ों का प्रथम सराहो ।
सुनत वैश्रवण अति रिसयाये, निज शक्ति भर बाण चलाये ॥
दशमुख ने ते क्षण में काटे, निज बाणन का मंडप डांटे ।
वीर वैश्रवण बखतर छेदा, अरु दशमुख का रथ भी भेदा ॥

दोहा—दशमुख दूजे रथ चढ़ा, मनमें अति रिसयाय ।
वज्रदंड से शत्रु का बखतर चूर कराय ॥
भिंडमाल मारा तुरत, छिदा वैश्रवण अंग ।
गिरा भूमि सम्हला नहीं, दशमुख धरी उमंग ॥
सुभट वैश्रवण के ले चाले, अपने पुर में आय उताले ।
हाहाकार मँचा अति भारी, दश मुख जीत हुई दुखकारी ॥

स्वामी हारें, सब ही हारे, स्वामी जीतें, जीते सारे ।
यों रण का निष्कर्ष बताया, दल चाहे कितना ही आया ॥

दोहा– विजय दशानन की हुई, वानर राक्षस वंश ।
उभय सैन्य हर्षित हुई, रिपुका रहा न अंश ॥
युद्ध लक्ष्य जय मात्र लहि, नहिं है धनकी चाह ।
बजे नगाड़े जीत के, लंका वापिस पाइ ॥

हुआ वैश्रवण का उपचारा, समय पायके स्वास्थ्य सुधारा ।
तब ही ये या भांति विचारैं, हरि अब मोकूं धिक उच्चारैं ॥
विना वीरता मनुज न सोहै, विना कमल सर नहिं मन मोहै ।
विना पुष्प नहिं विटप सुहाया, जल विन मीन न जीवन पाया ॥

दोहा–काको मुख दिखलाउँ अब, जीवन मृतक समान ।
धिक क्षणभंगुर जगत में, फँसते मूर्ख अजान ॥
दशमुख या घटकर्ण ने, किय मेरा उपकार ।
वृथा फँसा था जाल में, तासें लिया निकार ॥

यों विराग जब चित में छाया, शीघ्र वैश्रवण गुरु ढिग आया ।
सर्व परिग्रह भार उतारा, निष्पृह होके केश उपारा ॥
सहीं परीषह याने सारी, कर्मन की जंजीर विदारी ।
केवलज्ञान तभी प्रगटाया, शेष कर्महन शिव पद पाया ॥

दोहा– पुष्पक को दशमुख निकट, हर्षित सेवक लाय ।
शत्रु विजय का चिन्ह लखि, दशमुख लिय अपनाय ॥

यद्यपि इन ढिग यान वहु, इक से इक अधिकान ।
केवल पुष्पक ही लिया, विजय चिन्ह निज मान ॥
बैठे दशमुख पुष्पक माहीं, सन्मुख कोऊ ठहरै नाहीं ।
कोनी दिशा विजय अब यानें, दल नित बाढ़ौ कीन्ह प्रयानें ॥
पूर्वज वास पाय सुखदायी, थापी लंका को रजधानी ।
भोगे भोग सुरन सम भारीः भये सुखी सब ही नर नारी ॥
दोहा–पुण्य उदय तें दशमुखहु, अति शय ऋद्धि लहाय ।
धन कण दल बल सब बढ़ौ, नित नूतन सुखदाय ॥
जग सुख बाढ़ै पुण्य तें, पाप उदय तें हान ।
'नायक' रमें स्वरूप में, जो शिव की सुख खान ॥

॥ इति नवमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

❀ अथ हरिषेण चक्रवर्ती के चरित्रका वर्णन ❀

❀ वीर छंद ❀

एक समय पै चला दशानन, संग सुमाली वठ विमान ।
इक गिरि पर पद्मों को लखि के, बोला दशमुख मधुरी बान ॥
लखो तात यह अचरज भारी, बिना सरोवर कमल दिखाय ।
हैं निश्चल नहिं चंचल दीसें, मानो विधि ने दिये रचाय ॥
दोहा—सुना सुमाली प्रश्न जब, कर परमातम ध्यान ।
पुन दशमुख से यों कहा, याका सुनहु बखान ॥
पद्मों का वन नहीं यह, श्री जिनभवन दिखांय ।
चक्रवर्ति हरिषेण ने, रचवाये सुखदाय ॥
शांत बिम्ब दर्शन सुखकारी, हैं ये स्वर्ग मुक्ति दातारी ।
चलो प्रथम जिन दर्शन काजे, जातें धर्मभाव नित साजें ॥
यों सुन दशमुख अति हर्षाया, शीघ्र मंदिरन के ढिग आया ।
पुन सुमालि से कहि भो ताता, कहो चरित मंदिर निरमाता ॥
दोहा—वचन सुनत हर्षित हुआ, कहा सुमाली एम ।
हे दशमुख सुन चरित यह, हरीषेण का जेम ॥
कपिलापुर में जन्म लिय, महा पुरुष हरिषेण ।
चक्रगुण गण धर्म रत, रचवाये सुख दैन ॥
नृपति सिहध्वज वप्रा रानी, रही सकल रानिन पटरानी ।
तासु तनय हरिषेण कहाया, शुभ लक्षण तसु मंडित काया ॥

धर्म सुभद्रा वप्रा पाई, करती उत्सव पर्व अठाई
पर्व माहिं रथ को निकसावै, देश देश से भव्य बुलावै ॥

दोहा-- एक समय पै सौत से, हुआ कलह दुख दैन ।
शिव का रथ पहिले चलै, पांछे निकसै जैन ॥
पक्षपात अति ही बढ़ा, नृप ढिग मँचा विवाद ।
सौतपक्ष नृप ने गहा, जिनरथ निकसै बाद ॥

पक्षपात जब नृप ही ठाना, तब लखि कठिन प्रथम निकसाना ।
दुखित हुई जब वप्रा भारी, जिनवृष हीन गिने संसारी ॥
हीन सुनत दुख मोय सतावै, धर्म श्रेष्ठता मारी जावै ।
वीतराग का धर्म प्रधाना, कहें तभी से दीन अजाना ॥

दोहा- मेह वरसते तृण जरैं, बाड़ि खेत कों खाय ।
नृपति करै अन्याय तो, न्याय कौन पै जाय ॥
यों चिंतन कर हो दुःखी, नयनन नीर वहाय ।
कहां जाऊँ का पै कहूं, दिखै न कोय सहाय ॥

पर्व अभो आष्टान्हिक नाहीं, तऊ विवाद मँचा गृह मांही ।
पांछे तब को पूरो पारैं ऐसा मन ही मनहि विचारैं ॥
प्रथम न जिनरथको निकसाऊं, पियूं न नीर अरु अन्न न खाऊं ।
ऐसा मन में निश्चय लाई, नयनन से जलधार वहाई ॥

दोहा- ज्यों ज्यों समय वितीतहो त्यों त्यों ये मुरझाय ।
चोट लगी हिय वज्रसम, दिन प्रति सूखै काय ॥

यों लखकर हरिषेण तब, मां से बोला बैन।
कौन दुखाया तुझ हृदय, क्यों नहिं तोको चैन॥

सूख गया क्यों गात तिहारा, कौन अमंगल वचन उचारा।
वेग मात तुम मुझे बतावहु, अपने उर का शोक मिटावहु॥
सुत की सुन कर वप्रा माई, रथ रोकन वृत्तांत बताई।
सुन हरिषेण गिरा माता की, तना तनी लखि मात पिता की॥

दोहा– मिटै दुख अब कौन विध, तना तनी दोउ ठान।
कासे अब काविध कहूं, हौवै दुख की हान॥
रुदन न देखो जाय मोही, यासे गृह तज देउँ।
जँचे न अन्य उपाय कोउ, जिस विध शान्ति लेउँ॥

हरीषेण ने गृह तज दीन्हा, आय विपत का शरणा लीन्हा।
चैन न काहु विधैं इत पाई चितैं किलपत छांड़ी माई॥
यद्यपि वन की शोभा भारी, इसे दिखै किलपत महतारी।
आरत रौद्र ध्यान नित ध्याया, अश्रु बहाय चैन नहीं पाया॥

दोहा– मत्त सदृश इत उत फिरत पाया नहीं कहुं चैन।
तापस आश्रम आय पुन, सब जीवन सुख दैन॥
शान्ती कुछ यँह पर लई, कीन्हा उत विश्राम।
संबंधित वर्णत कथन, यँह का किया विराम॥

चम्पा नगरी इक सुखदाई, था जनमेजय तँह का राई।
थी मदनावति भगिनी याकी फैली कीर्ती दशों दिशि जाकी॥

लख नवीन वय सब नृप चाहैं, जनमेजय अब काकों व्याहें ।
थी नृप के चित चिंता भारी, श्री मुनि को लख गिरा उचारी ॥

दोहा-आप समो के हो हितू, मेरी शल्य मिटाव ।
कित हो परिणय बहिन का, श्री गुरु हमें बताव ॥
तीन ज्ञान धारी मुनी, सुनकिय अवधि विचार ।
कहा बहिन संबंध का, जा विध होनेहार ॥

तोपै इक नृप करै चढ़ाई, वाने याकी आश लगाई ।
गृह मँह पूर्व सुरङ्ग खुदाई, निकसें तंहतें भगिनी माई ॥
आवें दोऊ तापस थानक, होनहार पति मिलै अचानक ।
चक्री वंनब होगा वाके, ये पटरानी होगी ताके ॥
दोहा—यों सुन नृप अरु मां सभी, श्री मुनि को शिर नाय ।
कहा धन्य ऋषिराज तुम, मेरी शल्य मिटाय ॥
याविध से अति थुति करी, श्रीमुनि कीन्ह विहार ।
सब ने सुन अचरज लिया. चक्रीपति निरधार ॥

होनहार नहिं टरती टारी, कालकल्प नृप था इक भारी ।
यंह पै दूत पठाया वाने, भगिनी देउ उचारी ताने ॥
जनमेजय ने टाला ताको. वानें आके घेरा याको ।
लेय सुता को निकसी माई, अरु तापस के आश्रम आई ॥
दोहा—सुता लखी हरिषेण को, हुई तभी बेचैन ।
मां लखि के हरषी तभी, चिंती मुनि के वैन ॥

होनहार याका पती, पहले ही इत आय ।
भाग्य उदय जोड़ी मिली, भवितव हुई सहाय ॥
हरीषेण भी निरखा याको, तुरतई पाया विह्वल ताको ।
तभी सुता से माय उचारी, सुन पुत्री तूं वात हमारी ॥
पूर्व ऋषी से प्रश्न उचारा, कौन होयगा पती तिहारा ।
अवधो से ज्यों गुरू वताई, ता विधि से तूं पति को पाई ॥
दोहा—कर्म योग से लखत ही, हुई काम से अंध।
जैसा गुरु ने था कहा, वही मिला संवंध ॥
वचन सुनत इमि मात के, उठी काम की दाह ।
जिमि इंधन को पाय के, धधके अग्निप्रवाह ॥
इन दोनों ने नेह लगाया, तापसियों ने एम लखाया ।
हरीषेण को तभी उचारा, हो आश्रम वदनाम हमारा ॥
यातें शीघ्र यहां ते जावो, क्षण भर भी नहिं विलंव लावो ।
यों कटुता की गिरा उचारी, हरीषेण चित माहिं विचारी ॥
दोहा—वीर न इतनन को हनें, तपसी तिय अरु वाल ।
दीन हीन रोगी दुखी, शस्त्रहीन वेहाल ॥
यातें रिप भी नहि करी, किया शीघ्र प्रस्थान ।
यदपि न रुचि थी गमनकी, विधा, काम चित जान ॥
ग्राम नगर उपवन वन सारा, सव थल यानें कीन विहारा ।
पै ना चैन कहीं भी पाया, खान पान भी नाहिं सुहाया ॥

कमल सरोवर शीतल नीरा, दावानल सम देवै पीरा ।
मीन नीर बिन हो गति जाकी, तानिश सम हुइ गति अब याकी ॥

दोहा– हृदय माहिं हरिषेण ने, यानिध किया विचार ।
पहिले परखूंगा इसे, पुन दुख माय निवार ॥
वृथा उन्होंने रिष करी, मोको दिया भगाय ।
होनहार नहिं टर सके, मुनि ने दिया बताय ॥

जब स्वतंत्र पद को मैं पाऊं, रत्नखचित मंदिर रचवाऊं ।
रत्नबिम्ब तिन में पधराके, सुख पाऊं यों काज कराके ॥
यों चितवत इक पुर ढिग आया, नन्दन याका नाम कहाया ।
दयाधर्म गुणवंत नरेशा, सुखी रहे सब याके देशा ॥

दोहा – ताहि समय इक मत्त गज, भगा निरँकुश होय ।
यों लख नर नारी सबै, भागे सुध बुध खोय ॥
भवन अनेकों ढाहता, भ्रमत करत उत्पात ।
पीलवान हारा तभी, वश में गज नहिं आत ॥

पुर में शोर मँचा अति भारी, भागत फिरैं सभी नरनारी ।
मृत्यु आइ इमि भययुत लेखा, दृश्य भयानक नृप ने देखा ॥
बहुत उपद्रव गज ने कीन्हा, पुर के बाहर अब चल दीन्हा ।
तहां सरोवर इक था भारी, क्रीड़ें तँहपै सुन्दर नारी ॥

दोहा– ज्यों ही नारिनि ने लखा, गज आवै या ओर ।
त्यों ही अति अकुलायके, अती मँचाया शोर ॥

निकट निरख हरिषेण को, इनके शरणों आंय ।
रक्ष रक्ष हे वन्धु तुम, दीन वचन उचरांय ॥

हरीषेण था निडर दयालू, महिलागण पर हुआ कृपालू ।
आप वेग से आगे आया, पांछे महिलन संग रखाया ॥
हरीषेण चित माहिं विचारा, तापसियों को उत नहिं मारा ।
इत पै है गज मत्ता भारी, विध्वंसैगा अनेक नारी ॥

दोहा- यातें इन रक्षा करूं यही वीर का कर्म ।
विमुख होउँ रक्षण विषें, नाशै क्षत्री धर्म ॥
मेरे सन्मुख मत्त गज, ठहरन समरथ नाहिं ।
यामें नहिं पुरुषार्थ कछु, करहों वश क्षण माहिं ॥

वृषभ शृङ्गसे वामि उखाड़ै, पै न शक्त वह शैल उपाड़ै ।
यद्यपि शर तरु पल्लव छेदै, पै न शक्त वह पत्थर भेदै ॥
तृणसमूह को निवल उपाड़ै, पै न शक्त वह सुभट पछाड़ै ।
यों विचार हरिषेण कुमारा, पीलवान से वयन उचारा ॥

दोहा- गज को इत तें दूर कर, अरे महावत मूढ़ ।
तानें सुन उत्तर दिया, तूं ही रक्षक ढूंढ ॥
जान बचा तूं आपनी, यह मत्ता गज आउ ।
काबू में ये है नहीं, भगके प्राण बचाउ ॥

यों सुन पुन भी ये नहिं भागा, पुनः महावति कहने लागा ।
अहो, मौत आई है तेरी, करै दीठता मूढ घनेरी ॥

हरीषेण सुन कर मुस्काया, पगरख दन्त कुम्भ पर आया ।
गिरा महावति भू के माहीं, बैठा गज पर डरपा नाहीं ॥

दोहा—हरीषेण ने पील को मारि मुक्कि दो तीन ।
लगतइ से चिंग्घाड़ता, हुआ तुरत मद हीन ॥
सूंड उठा पकड़न लगा, तब ये भू पै आय ।
पुनः पील की पूंछ गह, झट ही गज पै जाय ॥

कसके लात पील को मारी, सबही मस्ती तास उतारी ।
खड़ा हुआ गज सीधा सादा, मनो शिष्य सहित मर्यादा ॥
तुव सन्मुख नहिं करूं उत्पाता, विनयि शिष्यसम शीस झुकाता ।
देख पील की इमि सरलाई सबने जय जय कार मचाई ॥

दोहा—लखा नृपति ने भुवन से, वीर पील वश कीन्ह ।
मुदित हुआ अति चित्त में, भेज सुभट को दीन्ह ॥
सुभट आय विन्ती करी, याद करें नरनाथ ।
आप वीरता देखके, भेजा लेने साथ ॥

इमि लखि नृप का आग्रह भारी हरीषेण प्रसन्नता धारी ।
चाला चढ़ें पील असवारी, देखें पुर के नर अरु नारी ॥
भीड़ हुई सड़कों पै भारी, सबनें जय जय कार उचारी ।
धन्य वीर तव पितु अरु माई, धन्य घड़ी जो इत पै लाई ॥

दोहा—जनता ने स्वागत किया, उत्सव रचा महान ।
कहा धन्य नरदेव तुम, दिया प्राण का दान ॥

नहिं आता यह वीर वर, को वश करता पील।
हारे थे सब ही मनुज, चीरै सबका डील॥
राजभुवन में ज्यों ही आया, त्यो हि स्वागत अनुपम पाया।
नृप ने बहुतक थुती उचारी, प्राणदान का दाता भारी॥
अपनी शत कन्यन को व्याहा, वर मिल उत्तम जाविध चाहा।
नर नारिन में यह गज-आली, कथा तभी से सब में चाली॥
दोहा--सब सुख लह हरिषेण ने, तदपि न चित में शान्ति।
बिन मदनावल के मिले, पाय न चित्त विश्रान्ति॥
दिवस बीतता कल्प सम, मन में करे विचार।
बिना नीर की मीन सम, तड़फन की गति धार॥
कब मदनावली सङ्गम पाऊं, अपना जीवन सफल बनाऊं।
रैन चैन निद्रा नहिं आती, सदा स्वप्न में वही दिखाती॥
याको कोय न काम सुहाता, प्रतिक्षण वाका रूप लखाता।
याविध से ये समय बितावें, या संनन्धित कथन बतावें॥
दोहा--था खगपति इक शक्रधनु, तास सुता गुणखान।
चित्र देख हरिषेण का, मोहित हो प्रण ठान॥
या भव में या को करूं नहींतो प्राण तजाऊं।
तब ताकी सखी ने कहि, रैन छिपे ले आऊं॥
ना लाऊं निज आहुति दूंगी, पावक में परवेश करूंगी।
याविध से बहु धैर्य बँधाई, आप रैन मँह लेने आई॥

हरिषेण को लेकर याने, गमन किया नभ पथ से ताने ।
नींद खुली तब जाना वाने, हरा मुझे है कोई तिया नें ॥

दोहा—लिएजात है नभ विषें, तब अति ही रिसयाय ।
मारन को मुष्टी करी, तब वह शीस नवाय ॥
कही प्रथम मेरी सुनहु, मैं हूं तुम्र हितकार ।
आप मुझे उल्टे हनत, नाहिं विवेक विचार ॥

थीं ये विद्याभूषित भारी, तऊ डरप के वचन उचारी ।
कहीं कदाचित मोकूं मारै, हड्डी पसली सभी विदारै ॥
याते डरपत वचन उचारी, दे आश्वासन अति ही भारी ।
तुम्र प्रेमिन से जाय मिलाऊं, भेंट न लह कर मुक्का खाऊं ॥

दोहा— इतने में दृग दाहिना, फड़का लख हरिषेण ।
हितकारी मानी सखी, तब हो चित में चैन ।
जानन को यासे कहा, कहो सु विस्तृत बात ।
कौन कहा चाहे मुझे, कहां लिये तूं जात ॥

इमि सुन सखि वृत्तांत बताई, सूर्योदय इक पुरी कहाई ।
तहां शक्रधनु राजा जानों, ता सुता जय चन्द्रा मानों ॥
रूप गर्व था अति ही याको, वर न सुहावै कोई वाको ।
पिता जिसे परिणाया चावै, तब ही सुता मनाइ करावै ।

दोहा—इमि लखि नृपन कुमार के, चित्र दिखाय अनेक ।
सो भी वाको नहिं रुचे, रुचा चित्र तुम एक ॥

मोहित हो बोली तभी, हो इसते संयोग ।
यदि याको पाऊं नहीं, करहों प्राण वियोग ॥

अन्य कुंवर को मैं नहीं चाहूं, प्रगट प्रतिज्ञा तोहि बताऊं ।
अति विह्वलता वाकी पाई, तभी सपथ मैंने भी खाई ॥
तेरा इच्छित वर ना लाऊं, तो मैं पावक में जल जाऊं ।
पुण्य प्रताप आपको पाई, शपथ पूर्ण की जो थी चाई ॥

दोहा– इमि कह हरिषेण को, लाई नृप के पास ।
सर्व वृत्त नृप से कहा, बता सुता की आस ॥
सुनकर नृप प्रमुदित हुए, दी पुत्री परिणाय ।
परिजन पुरजन सुखित हो, मनवांछित वर पाय ॥

जब विवाह की वार्ता जानी, मातुल सुत ने अति रिस ठानी ।
मो तज भूचर को परिणाई, तब झट दल ले करी चढाई ॥
शक्रधनू लख अरिदल आया, शीघ्र समर का साज सजाया ।
हरीषेण से वृत्त सुनाया, समर करण को अरिदल आया ॥

दोहा– भूचर को व्याही सुता, याते अति रिसयाय ।
पुत्री मातुल पुत्र यह, युद्ध करन को आय ॥
प्रिया जनक वच श्रवण कर, हरीषेण कहि ताहि ।
तिष्ठो रण को जाऊँ मैं, मजा चखाऊँ वाहि ॥
कार्य पराया जो निज माने, तो निज माहिं अटक क्यों जाने ।
वे ही जग में शूर कहाये, करें कार्य निज और पराये ॥

यातें देवो आज्ञा मोको, समर हेतु प्रस्थान न रोको ।
भांति भांति कह ससुर निवारै, हरीषेण भी हट न छांरै ॥

दोहा–जब रोके से नहिं रुके, तब सजाय दी सैन ।
अस्त्र शस्त्र बहुभांति दै, शुभ अशीष सुख दैन ॥
सैन्य सहित हरिषेण द्रुत, अरि के सन्मुख आय ।
भिड़ी सैन्य दोनों तभी, मारामार मँचाय ॥

फड़के भुज भट धीर धरें ना, हरीषेण लखि हटती सेना ।
आप स्वयं उद्धत हो आया, भारी मारामार मचाया ॥
बाणों से अरि का दल भेदा, चौतरफा से उन्हें रगेदा ।
प्राण लेय अरि का दल भागा, भगा महीपति,तज रण जागा ॥

दोहा–चक्रप्राति हुई जिस समय, सब नृप शीश नमाय ।
पुण्य उदय से सब विभव, सहजहिं मिलते आय ॥
द्वादश योजन तक हुआ याका दल विस्तार ।
मुकुटबन्ध सेवें 'नृपति' मित बत्तीस हजार ॥

मदनावलि के बिन सब सूना, हरीषेण को लगै विहूना ।
कटक सहित ता थानक चाला, हरीषेण इत आय उताला ॥
प्रथम जिन्होंने किया निरादर, विभवसहितलखि कीना आदर ।
हरीषेण चित्त मांहिं विचारा पूर्व इन्होंने मुझे निकारा ॥

दोहा–वे ही जग में नियम से, महापुरुष कहलांय ।
गत बातों की याद कर, हर्ष रोष नहिं लांय ॥

एम चिंत तापस प्रति, नहीं किय कटु व्यवहार ।
स्वयं उन्होंने आय कर, क्षमहु हमें उच्चार ॥
जनमेजय पर दूत पठाया, वानें आके वृत्त सुनाया ।
यदि तुम अपनीकुशल जु चाहो, लाकर भगिनि शीघ्र विबाहो ॥
सुन जनमजेय स्वीकृत कीनो, भगिनी बुलाय ब्याह पुन दीनी ।
जनमेजय ने भगिनी व्याही, पुण्य उदय देता मनचाही ॥
दोहा—हो महिषी मदनावली, मुनि उचरि सो होय ।
चक्री की महिषी बनी, मेंट सका नहि कोय ॥
आये चक्री निज नगर, नाय मातु-पद शीश ।
जननी लखि चक्रेश को, प्रमुदित दई अशीष ॥
माता फूली नांहि समाई, चक्रि विभूति पुत्र ने पाई ।
अब को है रथ रोकन वारो, जो नहि जिन रथ प्रथमनिकारो ॥
यातें सुख युत रथ निकसाई, वृष प्रभावना किय अधिकाई ।
ऋषि श्रावकगण अति सुखपाया, सबने जय जयकार मॅचाया ॥
दोहा—माय प्रतिज्ञा पूर्ण कर, जिन भवनन निरमाय ।
ठौर ठौर रचना करी, रत्नविंब पधराय ॥
पद्मरागमणि मय भवन, दिखते पद्म समान ।
किय माहात्म्य जिन धर्मका, को कर सकै बखान ॥
हरिषेण ने सब सुख पाया, पुन क्षणभंगुर समझी माया ।
सर्व परिग्रह भार उतारा, आप रूप को आप सम्हारा ॥

शुक्लध्यान तें कर्म विदारे, केवल लहि शिव धाम पधारे ।
तिनें सुमाली शीस नवाया, यों दशमुख का वृत्त सुनाया ।।

दोहा–दशमुख ने हू शीस नय, थुति की वारम्वार ।
वंदे श्री जिन बिम्ब को, हर्षित हुआ अपार ।।
इमि चक्री हरिषेण का, रचा चरित सुखदाय ।
'नायक' रमत स्वरूप में, अविनाशी पद पाय ।।

इति दशमः परिच्छेदः समाप्तः
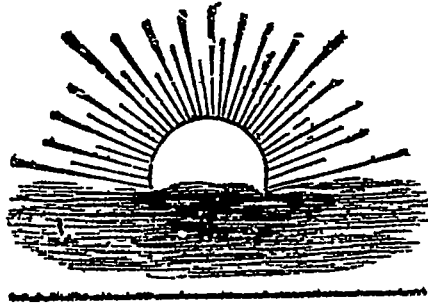
दशमुख के द्वारा दिग्विजय और युद्ध विजय का वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

दशमुख हुकुम किया दलपति को, दिग्जय हेतु होहु तैयार ।
आज्ञा पाय तुरत सज चाले, गय हय रथ सामंत अपार ॥
मनो अमरपुर से हरि निकसा, देवन सम निज सैन्य सजाय ।
कर प्रयान आये वन माहीं, सांझ समय विश्राम लहाय ॥

दोहा—प्रातःकाल जब ही हुआ, जगे वीर सामंत ।
यथा योग्य आसन विषैं, बैठे भूप महंत ॥
अकस्मात इक ध्वनि सुनि, मेघ गर्जना रूप ।
अति अचरज चित में लहा, सुनत दशानन भूप ॥

ध्वनि सुन रावण दल थर्राये, थंभ उपाड़ें गज मत्ताये ।
हय अति हींसे, हुये भयातुर, लखत दशानन बोला आतुर ॥
सुनो गर्जना कहँ ते आई, इन्द्र वैश्रवण करी चढाई ।
या कोऊ नृप दल ले आया, या कारण कुछ अन्य कहाया ॥

दोहा—सुन प्रहस्त सेनापति, चला देखने काज ।
क्रीड़ा करता गिरि निकट, देखा इक गजराज ॥
दशमुख से कहि आयके, अदभुत देखा मतंग ।
कर न सकै वश ताहि को, इन्द्रहु करै उमंग ॥

विहँस दशानन गिरा उचारी, है वश करने शक्ति हमारी ।
करूं प्रशंसा निज मुख सेती, देत न शोभा होवैं केती ॥
पुष्पक पै चढ़ गिरि ढिग आया, देखा गज को अति मत्ताया ।
शुभ लक्षण युत देखा ताको, ऐरावत सम लेखा वाको ॥

दोहा—चितमें अति हर्षित हुआ, इमि गज लख भूपेन्द्र ।
पुष्पक से नीचे उतर, आया निकट गजेन्द्र ॥
कटि को कसिके बांधके, किया संख का नाद ।
गज सुन कर धाया तभी, करने को प्रतिवाद ॥

यों लखि कटि से वस्त्र ढ़िलाया, झट से ताकी गेंद बनाया ।
गेंद लेय गज के ढिग फेंकी, गज ने सूंड गेंद पर मेकी ॥
तब ही दशमुख चढ़ गज ऊपर, मार मुष्टिका आया भू पर ।
यत्न करै गज, पकड़न याके, ये आवै पुन मारै जाके ॥

दोहा— बहुविध से क्रीड़ा करी, निपुण दशानन वीर ।
तब गज निर्मद होयके, खड़ा हुआ तसु तीर ॥
बैठा दशमुख पील पै, तज के भीति भविष्य ।
गजवर यों विनयी हुआ: मनो गुरू ढिग शिष्य ॥

देख सभी ने अचरज पाया, हर्षित जय जय कार मँचाया ।
कुसुम वृष्टि सुरगण ने कीन्ही, सुख की स्वांस सैन्य सब लीन्ही ॥
दशमुख फूला नाहिं समाया, त्रिलोकमंडन नाम धराया ।
गजवर लाभ महोत्सव कीना, लोक श्रेष्ठ निधि लही नवीना ॥

दोहा—किय दशमुख प्रस्थान पुन, सम्मेदाचल आय ।
करी वन्दना भाव से, थुति युत शीस नवाय ॥
आकस्मिक जो लाभ हो, महिमा पुण्य अपार ।
सुनो जहां यह ही कथा, उचरैं वारम्बार ॥

है सुखवन्त दशानन राजा, सिंहासन पर आय विराजा ।
ताहि समय पै इक खग आया, घायल विह्वल कम्पै काया ॥
तन से झरें स्वेत की बूंदें, नीर झरैं लोचन को मूंदे ।
यों दशमुख को दुःख दिखाके, दीन वयन बोला शिर नाके ॥

दोहा— हे स्वामी विन्ती सुनहु, कहूँ दुःख की वात ।
सूरजरज वा रक्षरज, तुम अधीन विख्यात ॥
पर को तृण सम मानते, गर्जत आप प्रताप ।
दोउ भ्रात निर्भीक थे, रवि सम तेज प्रताप ॥

यम ने इन पर करी चढ़ाई, रण को निकसे दोनों भाई ।
गय हय रथ अरु चले प्यादे, रण के सूचक वजे नगाड़े ॥
या विध रण घनघोर मँचाया, शस्त्रनिपात अग्नि प्रज्वलाया ।
मंडप बना शस्त्र विकराला, रुधिर स्रोत तबही वह चाला ॥

दोहा— महा भयंकर रण हुआ, यम सेना हट जाय ।
कुपित होय तब शीघ्र ही, यम हू सन्मुख आय ॥
आते ही याने घनी, दल विराधना कीन ।
इतना कह अति दुखित हो, खग ने मूर्छा लीन ॥

दशमुख ने उपचार कराया, पुन ताको अति धैर्य बँधाया ।
कहा, वृत्त आगे बतलावो, जासें तुम चित अति दुःख पावो ॥
तब ये पुन यों वृत्त बताता, यम ने कपिदल बहुत विघाता ।
लखत रक्षरज सन्मुख आया, यमसे रण घनघोर मँचाया ॥

दोहा– शक्तिवंत यम ने तभी, पकड़ रक्षरज लीन ।
इमि लखि सूरजरक्ष भी, सन्मुख यम का कीन ॥
बहुत समय तक रण हुआ, यम था अति बलवान ।
याके आयुध व्यर्थ कर, मारा इसे कृपान ॥

असि से याको देह विदारी, तभी सूर्यरज मूर्छाधारी ।
यम ने अति आनंद मनाया, पकड़ याहि को बंदि बनाया ॥
डाल नर्क में अति दुख दीन्हा, क्या वरणूं जो दुःख उन लीन्हा ।
बंदी पड़े हैं दोनों भाई, नहिं है कोई शरण सहाई ॥

दोहा– नकल बनाई नर्क की, बैतरणी इत्यादि ।
ता मँह डारे नृपति जिन, कैद किये इन आदि ॥
दुःख असह्य तें कइ मरे, ये भी दोनों भाय ।
अति संकट में फंस गये, यम के फंदे जाय ॥

प्रभु दुख कहने को इत आया, उन दुःख वर्णन सर्व सुनाया ।
आप सदा से उनके रक्षक, आज बना यम उनका भक्षक ॥
मैं हूं उनका प्यारा चाकर, किया चुकारा मैंने आकर ।
शरणागत प्रतिपाल लखाया, इमि कहि नयनन नीर बहाया ॥

दोहा–सुन दशमुख ने यों कथन, याको धैर्य बँधाय ।
व्रण गण का उपचार कर, क्षण में पीर मिटाय ॥
महाकोप यम पर लहा, दशमुख खग महाराज ॥
आज्ञा दी निज सैन्य को, उन्हें छुड़ावन काज ।

जलद ध्वनि सम वचन उचारा, वृथा कहै यम नाम हमारा ।
विना प्रयोजन दुख को देवै, नाम धराय नर्क का लेवै ॥
वैतरणी आदिक की रचना, करूं ध्वंस अवरहे क्षणिक ना ।
सबको बंधन अभी छुड़ाऊँ, सारा संकट दूर भगाऊं ॥

दोहा–इमि कह नभ से शीघ्र ही, दल युत दशमुख धाय ।
पहिले पहुंचा नर्क थल, यम का नर्क कहाय ॥
गहरा खांडा खोद कर, नर्क रखा तसु नाम ।
बांधे नृप डारे सबै, महा दुःख के धाम ॥

नरक थान के सेवक सारे, मार भगाये और पछारे ।
सूर्य रक्षरज दोऊ छुड़ाये, घोर विपत्ति से इन्हें बचाये ॥
जीवित शेष नृपति भी सारे, छुडाय बंधन सब को छारे ।
याविध सब का दुख हर लीन्हा, प्राणदान नृपतिनि को दीन्हा ॥

दोहा–सबने मिल अतिथुति करी, धन्य धन्य श्रीमंत ।
राक्षस वंश शिरोमणि, दया धर्म के सन्त ॥
जग में महिमा आपकी, को कर सकै बखान ।
हम पै यों उपकार किय, चिंतामणि समान ॥

सेवक यम पै जाय पुकारे, सुनहु बीनती नाथ हमारे ।
नर्क थान पैं दशमुख आया, ताहि मिटाके हमें भगाया ॥
वाका दल है अपरम्पारी, समर करन नहिं शक्ति हमारी ।
इमि कह सब नें शीस झुकाया, सुन कर यमहू अति रिसयाया ॥

दोहा—चला साज सज युद्धका, मनो उदधि उमड़ाय ।
हय गय रथ सामंत अरु, प्यादन पार न आय ॥
आये सब रण क्षेत्र में, भिड़े दोऊ दल वीर ।
घमासान अति युद्ध किय, चलें खचाखच तीर ॥

वादित्रन के बजे टकोरा, मँचा परस्पर रण घनघोरा ।
शस्त्र चलें दोउ ओर अपारा, हनें परस्पर करें प्रहारा ॥
गय से गय हय से हयवारे, रथ वारन नें रथी पछारे ।
प्यादन की है सेना भारी, उनने हू अरि सैन्य विदारी ॥

दोहा—शस्त्रन तेज निपात तें, उठि अग्नि की ज्वाल ।
रुधिर स्रोत अब बह चला, मँचा युद्ध विकराल ॥
तभी बिभीषण ने किया, यम दल का संहार ।
इमि लखि यम धाया तभी, करने याको क्षार ॥

लखा दशानन अब यम धाया, और विभीषण के ढिग आया ।
शक्ति विभीषण की है नाहीं, जितनी है या यम के माहीं ॥
यातें आगे आप सिधाया, शीघ्र विभीषण को पछियाया ।
जिमि दशमुख तिमि यमभी जानों, गिरिवर या वारिधि सम मानो ॥

दोहा– दोनों आडम्बर सहित, आये अब समुहान ।
मानो ये हैं केशरी, आये तज बन थान ॥
दोउ दहाड़ें रण विषें, दोऊ दल थर्रांय ।
जिन्हैं बाण इनके लगें, वे ही प्राण तजांय ॥

दशमुख पै यम बाण चलाये, यानें क्षण में काट गिराये ।
अपने तीर खचाखच मारे, बनाय मण्डप नभ में सारे ।
यासे रुका रवी उजियारा, मनो मेघ ने किय अंधियारा ॥
तभी सारथी यम का मारा, पुन यम पै भी कीन्ह प्रहारा ।

दोहा– यम की छाती में लगा, गिरा भूमि पै आय ।
सोचा दशमुख है प्रबल महापुरुष दृढ़ काय ॥
ता सन्मुख नहिं टिकसकूं है मों से बलवान ।
पुन यदि कर है वार तो क्षण में ले है प्राण ॥

इमि विचार कर पीठ दिखाके, भागा झट ही प्राण बचाके ।
यदपि वीर था अति ही क्रूरा, या सन्मुख कोउ टिकै न शूरा ॥
सब गुण यम सम पाये याने, डरैं नृपति सब यमही मानें ।
यातें विमुख होंय जे भूपा, गेरैं बांध नर्क के कूपा ॥

दोहा– कंपते थे सब ही नृपति, सुनकर यम का नाम ।
शीस नांय सेवा करें, देवैं सब धन धाम ॥
सूर्य रत्नरज बांध के, डारे नर्क मंझार ।
तिनें छुड़ावन दशवदन, की चढ़ाई दल लार ॥

लोकपाल हरि का कहलाया, आय इन्द्र को शीस नवाया।
सुनहु नाथ अब विन्ती मोरी, आप चाकरी मैंने छोरी॥
मारो अथवा जीवित राखो, या बंधन में मोको नाखो।
जो वांछा हो सोई कीजे, यमपन मोसों वापिस लीजे॥

दोहा—माली तथा सुमालि का, पोता जग विख्यात।
दशमुख नाम प्रसिद्ध तसु, अतुल बली प्रख्यात॥
तासें हारा वैश्रवण, मुनि होके शिव पाय।
मैं अब जान बचायके, तुम ढिग पहुँचा आय॥

ताम वीर रस बना शरीरा, टिकै न ताके ढिग कोउ वीरा।
ज्येष्ट सूर्य मध्यान्ह दिपावै, ता देखन को समरथ पावै॥
या सम वाका तेज अपारा, बल भी तसु तन अपरंपारा।
फैला जग में तास महातम, इमि कह नाया शीस तहांयम॥

दोहा—इमि सुन सज हरि तुरत ही, करने को अरिघात।
तभी मना सचिवन किया, है नाहीं लघु बात॥
सहसा करें न धीर कछु, प्रथम विवेक विचार।
तभी विजय को लहत हैं, नाहिं तौ निश्चय हार॥

मन्त्रिन की सुन इन्द्र विचारै, अधिक शीघ्रता काम विगारै।
सचिवन ने यह उचित बताई, मोकूं याविध सूझ न आई॥
यों विचार हरि थिरता धारी, श्वसुर यमहिंको गिरा उचारी।
योधापन तुममें कम नाहीं, पर प्रचंड बल दशमुख माहीं॥

दोहा-- याते' तुम चिन्ता तजहू, करो यहां सुख वास ।
मैं देखूँगा ताहि को, होओ नहीं उदास ॥
इमि कह कर पुन इन्द्र ने, किया वहुत सत्कार ।
यम भी प्रभु कृति देखके', गह सँतोप अपार ॥
अधिक सभय था यम मन माहीं, इन्द्र कहैगा लज्जा नाहीं ।
क्यों तूं वीरपना तज आया, कायर हो पुन मुख दिखलाया ॥
रण तें भग, मृत तुल्य कहावै नहीं विदित क्या दंड दिवावै ।
यों चिन्तित था यम भय खाके, मुदितहुआ अब आदरपाके ॥
दोहा-- आय इन्द्र रनवास में सुध बुध सब बिसराय ।
मोह धतूरा पीयके', भोग मग्न हो जाय ॥
यम भी निज मन तोप गह, विसरा सब गत वात ।
शक्र सदृश दामाद मम, को मो पै इतरात ॥
ली दशमुख इक विजय पताका, और कछू नहिं लिया यहां का ।
सूर्यरजहिं किहकँधपुर दीना, लघु को किहकू' का नृप कीना ॥
याविध दशमुख हित दर्शाया, वानरवंशिन अति सुख पाया ।
मारग के नृप इन ढिग आके', मिले भेंट युत शीस झुकाके' ॥
दोहा-- लंका को आये जभी, सब ने उत्सव कीन ।
परिजन पुरजन हर्ष युत, दी अशीप सुख लीन ॥
पुण्य उदय तें' जगत में, जिय सब ही सुखपाय ।
'नायक' धर्म प्रभाव तें, शिव वैभव प्रगटाय ॥

॥ इति एकादशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ चन्द्रनखा का खरदूषण से सम्बन्ध वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

नृपति मेघप्रभ सुत खरदूषण, ये दशमुख की बहिन लखाय ।
ताहि निरख बिह्वलता पाई, ताके हरने को चित चाय ॥
पै दशमुख का प्रताप लखिके, सन्मुख हरण अशक्ती जान ।
यातें दांव हरण का सोचै, काविध हर कर करूं प्रयान ॥

दोहा समय पाय दशमुख गये चित विनोद के काज ।
खरदूषण ने ता समय, हरने का किय साज ॥
काहूविध छल कर हरी, झट बैठाइ विमान ।
हर्षित हो चित के विषें, शीघ्र किया प्रस्थान ॥
लख ली कुम्भकर्ण विभीषण, चन्द्र नखा को हरि खरदूषण ।
दोष युक्त भगिनी को जाना, उचित न खरदूषण वध माना ॥
ताहि समय पै दशमुख आया, बहिन हरण का वृत्त लखाया ।
मार्ग खेद तें झरे पसीना, तउ पछियाने का चित कीना ॥
दोहा– एकाकी दशमुख बली, खडग हाथ में लेय ।
चलने को उद्यत हुआ, मन्दोदरि उचरेय ॥
सुनहु नाथ मो बीनती, प्रथम कोप तज देउ ।
नाहिं गमन सहसा करो, चित विचार कर लेउ ॥

लोक रीति के तुम हो ज्ञाता, अन्य देन कन्या जग ख्याता ।
परगृह को वह वेवश जावे, यह क्या तुमरी समझ न आवे ॥
खरदूषण हैं खगपति नामी, चौदह सहस खगों का स्वामी ।
विद्या सिद्ध बहुत हैं ताको, शूर आप सम जानो वाको ॥
दोहा—इनको ननद न देहु तो, पुनि किसको परणाव ।
सहसा कार्य न कीजिये, चित विचार कछु लाउ ॥
यदि करो संग्राम तो, हार जीत सन्देह ।
कन्या दूषित हो गई, कोइ न ताको लेय ॥
पुन भी स्वामी आप विचारहु, कन्याको यदि वाहि सुहावहु ।
तदि हनने तें वैधवताई, कन्याको पुन सहजहिं आई ॥
तब ही बातें ठीक विचारो, सहसा कोप नाहिं चित धारो ।
राखा थानें पताल लंका, समझ ताहि को वीरजु बंका ॥
दोहा—चन्द्रोदयहि निकाभके, याकूं आप रखाय ।
स्वतः आप रिप करत तो, काके शरणों जाय ॥
याविध से मन्दोदरी, बोली विहंसन बैन ।
चन्द्रचन्द्रिका सम सरम, शीतल ताई देन ॥
मन्दोदरी वच सुनत दशानन, हो प्रसन्नचित प्रफुल्लित आनन ।
याको पुन यों गिरा उचारी, धन्य धन्य है बुद्धि तिहारी ॥
यश अनर्थ वर्जन है तोकूं, नहिं सूझी थी या विध मोकूं ।
याकूं हन कर का फल पाऊं भगिनी विधवा स्वयं बनाऊं ॥

दोहा– सुन मन्दोदरी ने कही, भली विचारी नाथ ।
लोक माहिं आदर्श तुम, गह जनता तुम पाथ ॥
तुम यश फैला जगत मँह, न्यायरु नीति सुमार्ग ।
पिता पुत्र का धर्म सम, अनुकरणों सब मार्ग ॥

पताल लंका से जब काढ़ा, चन्द्रोदय का दुःख अति बाढ़ा ।
तिया गर्भिणी थी तब याकी, दुःख की कथा सुनै को ताकी ॥
दशमुख तेज दिपै भूमंडल, को शरणा दे, गहै अमंगल ।
यातें तिया लेय बन आया, कर्म योग से मृत्यू पाया ॥

दोहा– अनुराधा तिय गर्भिणी, समया मृगी समान ॥
इकली ही बन में फिरै, नाहिं सहाई आन ।
प्रसव समय नियरें लखी, पल्लव सेज विछाय ।
तब ही रवि सम शिशु जना, नाम विराध रखाय ॥

गर्भ अवस्था मां ने पाई, तब से दुख में घड़ी बिताई ।
यातें नाम विराधित राखा, सुखविराध कर दुःख फल चाखा ॥
क्रमशः शशि सम वृद्धी पाई, तो भी सुखमय घड़ी न आई ।
नृप समाज में जब यह जावे, कोई न आदर भाव दिखावे ॥

दोहा– थान भ्रष्ट होते जभी, तन के केशरु दंत ।
उल्टे धकियाते उनें, करने को तिन अंत ॥
हुई विराधित की दशा, केसरु दंत समान ।
याते निशिदिन चितवै, कब पाऊँ निज थान ।

विजय करन सामर्थ्य न पाई, दिखै न दूजा कोउ सहाई ।
चित में याने थिरता धारी, रण की शिक्षा लैन विचारी ॥
जँह पै रण हो तँह पं जावै, विजय हार की दशा लखावै ।
कैसे जीतत कैसे हारें, कैसे अरि को आय पछारें ॥

दोहा—काललब्धि की आशधरि, होनहार बलवान ।
चाहे ते कछु ना मिलै, बिन चाहै आ थान ॥
यातें पुण्य कमायकें, करो पाप की हान ।
"नायक" धर्म कमाय कर, पावो शिवपुर थान ॥

॥ इति द्वादशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ बालीकी प्रतिज्ञा, उपसर्ग और माहात्म्यका वर्णन

❀ वीर छंद ❀

नृपति सूर्यरज वानरवंशी, किहकंधापुर में विख्यात ।
ता सुत बाली शील धुरंधर, वहु विद्याओं में निष्णात ॥
जो त्रिकाल साधै सामायिक, सब चैत्यों प्रति वंदन जाय ।
अति श्रद्धालु, धर्म भाव रत, देव शास्त्र गुरु शीस नवाय ॥

दोहा—किहकंधानगरी विषें, रमता इन्द्र समान ।
था कनिष्ठ सुग्रीव इक' धीर वीर गुण खान ॥
भगिनी भी सुन्दर हुती, सिरीप्रभा तसु नाम ।
सर्व कलाओं में निपुण, शील गुणन की धाम ॥

सूर्य भ्रात लघु रक्ष कहाया, किहकूँ मैंह सुख काल बिताया ।
हुये नील नल उभय कुमारा, शस्त्र शांस्त्र विद्या भंडारा ॥
रविसम तेज मान दिपावें, शशिसम महाकान्ति प्रगटावें ।
याविध कुल गुण सबही पाये, निज महिमा को प्रगट कराये ।

दोहा—समय पायके सूर्यरज, जगते हुए उदास ।
दिया बालि को राज्यपद, सुग्रीवहिं युवराज ॥
वन में आये गुरु निकट, मुनिपद गहा महान ।
उग्र उग्र तप को तपें, चाहें पद निर्वान ॥

बाली अति दृढ़ श्रद्धा पाके, गही प्रतिज्ञा गुरु ढिग जाके ।
जैन देव गुरु आगम ध्याऊं, भूल न परको शीस झुकाऊं ॥
येही मोक्ष' जग से तारक, और न कोई भव उद्धारक ।
देव शास्त्र गुरु को, नम बाली, नमा न सो यों दशमुख साली ॥

दोहा— दशमुख सब भूपन प्रमुख, सब से चाहै मान।
वालि न आया नमन को, चित्या अति रिप ठान॥
झटही दशमुख वालि ढिग, अपना दूत पठाय।
आके वह वाली निकट, कहै वयन इतराय॥

सुनो वानराधीश हमारी, दशमुख ने जो तुम्हें उचारी।
मेरी आज्ञा मस्तक धारो, आगा पाछा नाहिं विचारो॥
महावली हम हैं परचंडा, सुजन मान दें दुर्जन दण्डा।
नीतिशिरोमणि न्याय महोदधि. तेज सूर्यसम दिपें गुणोदधि॥

दोहा— अति प्रचण्ड भूपति नमें, नर खग सुर सब कोय।
सब वैभव सम्पन्न हम, कंह तक वर्णन होय॥
कहत तुम्हें सन्देश को, सुनहु कपिन के राय।
पिता तिहारे सूर्य रज, दुर्दिन अति ही पाय॥

यम फंदे में नर्क मंझारा, जाय फंसे नहिं कोइ सहारा।
तब मैं नर्क दुःख कर लीना, किहकंधा नृप बनाय दीना॥
तुमने सब उपकार भुलाया, हो कृतघ्न ना शीस झुकाया।
यामें शोभा नाहिं तिहारी, मो सम और न तो उपकारी॥

दोहा—सुनसंदेश झटआव तुम, होहु न मद में अंध।
करके मम पद नमन को, करो बहिन संबंध॥
महासौख्य तुम पावगे, यां विवेक चित लाव।
निपुण दूरदर्शी गुणी, पंडित चतुर कहाव॥

यों सुन नृप मन मांहि विचारै, उचित ब'हन संबंध उचारै ।
केवल नमन नाहिं चित भाया, पूर्व प्रतिज्ञा बाधक पाया ॥
चाहे प्राण भले ही जावें, गही शपथको, पूर्ण निभावें ।
चित में चिंता याविध लीनो, दूतहिं उत्तर कुछ ना दीनो ॥

दोहा—था निर्भय निज चित तदपि, गहा बालि, दृढ़ मौन ।
दूत कहा तब गर्ज के, सुनौं कहत मैं जौन ॥
अधिक कथन में लाभ क्या, चूको तो पछताव ।
जो कहता हूँ सो सुनों, ये ही निश्चय ल्याव ॥

अल्प विभव लह गर्व न धारहु, क्यों जनधनकी हानि विचारहु ।
नमन करो मोढिग में आके, सेवक होय रहो सुख पाके ॥
या पुन छाड़ों देश हमारा, जाव जहां है थान तिहारा ।
या आयुध लै सन्मुख आवो, सजा किये की रण में पावो

दोहा—अरहट की घरिया भरें, जौन रीति के आंय ।
इक क्षण में नहिं हो सकत, भरें रीत भी जांय ॥
अकड़ न स्वामी पै चलै, कोटिक करो उपाव ।
प्रभु चरणों को नमन कर, नहिं तो रण में आव ॥

दो मुख सुई, सिये न कन्था, दो मुख पन्थी चले न पन्था ।
दोइ कार्य ना होंय सिगाने, जगसुख अरु शिवसुखभी पाने ॥
हूं दशमुख अति बलका धारी, समर करन नहीं शक्ति तिहारी ।
जीत वैश्रवण यमहिं पछारा, नचा सकत भू मंडल सारा ॥

दोहा– यों कठोर वच सुनत ही, नृपका भट रिसयाय।
हुई क्षुभित सारी सभा, हलचल तँह मंच जाय॥
तबहिं दूत से भट कहा, तूं कुदूत है नीच।
इमि कठोर वच कों कहत यहां सभा के बीच॥
बाण वेध सम हृदय विदारैं, या अरकससम तनको फारैं।
क्यों छांड़त है वचशर धारा, नहिंसोचत हम किनेंउचारा॥
जबरन तूंने मृत्यु बुलाई, स्वामी पै भी विपदा लाई।
यों कहके पुन असी निकारी, दूत मारने अति रिस धारी॥
दोहा– इमि लखि बाली ने तभी, भट को मने कराय।
नाहिं दोष है दूत का, कहि जो प्रभू कहाय॥
अल्प आयु बाकी रही, भेज संदेशो एम।
मान शिखर ते जो गिरै, वाकी कुशल न क्षेम॥
नीति दूत को अवध उचारी, दूत हनें तें क्षति हो भारी।
दूत न हो तब बताय कैसे, कहन चहत हों तुमसों यैसे॥
यातें याकूं अभी निकारो, दोष न याको रञ्च विचारो।
यों कहके संतोषित कीना, सुनत सुभटने रिषतज दीना॥
दोहा– मृत्यु मुख से दूत वच, झट ही इत तें भाग।
रिषतो चितमें अति चढ़ी, जिमि तन लागी आग॥
चित में सोचा दूतपन, है अटपट को काम।
निंदै, जा सन्मुख कहत, स्तुति प्रभु गुण धाम॥

यों सोचत दशमुख ढिग आया, वालिसभा का वृत्त सुनाया ।
सुन दशमुख ने अति रिष धारी, दलपतिको झट गिराउचारी ॥
शीघ्र सजो तुम अपनी सेन्य, कूच करत ज्यों देर लगे ना ।
इमि आज्ञा दशमुख ने दीन्ही, क्षणमें सैन्य साज सब लीनी ॥

दोहा— आया पुर किहकंध को, चहुं ओर से घेर ।
लिपिटत है जिमि नाग तन, ता सम लगी ना देर ॥
भीतर से जब रिष उठत, बाहर मन वच काय ।
करते शक्ति प्रमाण सब, जग की रीति कहाय ॥

याही तें रिप अति सुखदाई, देव शास्त्र गुरु याहि बताई ।
यातें रिप कूं सब तज देवो, क्षमा भाव आतम गुण सेवो ॥
हो विभाव पर निमतहिं पाकें, जग स्वभाव पर निमित हटाकें ।
यातें सब जिय समता धारो, तब भव नाशै मोक्ष पधारो ॥

दोहा— सुना वालि ने वृत्त यह, पुर मेरा लिय घेर ।
समर हेतु उद्यत हुआ, क्षण में लगी न देर ॥
मन्त्रिन ने नृप सों कहा, प्रथम विचार सुलेव ।
सहसा कार्य न कीजिये, कर विवेक स्वयमेव ॥

सहसा सब ही कार्य बिगारैं, हो विवेक सब कार्य सुधारैं ।
यातें प्रथमहि आप विचारहु, पुन कछु करवे की चित धारहु ॥
पूर्व चक्रिसुत सो अभिमानी, मेघेश्वर से पाई हानी ।
यदपि चक्रिसुत देव सहाई, मेघेश्वर ने तउ जय पाई ॥

दोहा—दल से बल से जीत हो, सो नहिं मानहु नाथ ।
होत विजय निश्चय सही, भाग्य जिन्हों के साथ ॥
पै नहिं दीसत भाग्य है, प्रथम क्रिया ही होय ।
सुधरत बिगड़त भाग्य वश, फल चाखत सब कोय ।

दशमुख दल है गणनातीता, संशय करन हार वा जीता ।
निश्चय नाहिं जब है ऐसी, सहसा करो होय फिर कैसी ॥
यातें नाथ विवेक विचारो, होय न अपयश, कीर्ती धारो ।
हम आश्रित हैं, नाथ तिहारें, भली बुरी को सभी विचारें ॥

दोहा—जैसी आज्ञा होयगी, कर हैं ता अनुसार ।
नमक आपका खात हैं, ता ऋण दें य उतार ॥
याविध बहु विन्ती करी, मंत्रिन मंत्र विचार ।
इमि सुन बाली रोष तज, कहे वयन सुखकार ॥

सुनहु बात अब सभी हमारी, जो हमने निष्कर्ष विचारी ।
आत्म प्रशंसा निज मुख द्वारा, नहिं दे शोभा यदपि अपारा ॥
तदपि अभी परमार्थ उचारूं, दशमुखदलचणमांहि विदारूं ।
यह मम बांय हाथ का खेला, मैं समर्थ हूं एक अकेला ॥

दोहा—किंतु डरों भव उदधि मँह, भ्रमता फिरा अनादि ।
पुन हिंसा कर डूबहों, नर्क निगोदन आदि ॥
शपथ पलै, हिंसा टलै, यातें मुनि पद धार ।
यह निश्चय मैंने किया, करों कर्म रिपु छार ॥

यों कह पुन सुग्रीव बुलाया, विचार अपना ताहि सुनाया ।
मैंने अब विरागता धारी, जग की चिंता, सब ही छांरी ॥
अब तुम अपना श्रेय विचारो, करो नमन या नहीं उचारो ।
देवो भगिनी या ना देवो, स्वय हिताहित विचार लेवो ॥

दोहा—यों कहि वाली तुरत ही: निज पद दिय सुग्रीव ।
आप चले मुनि पद धरन, निस्पृह होय अतीव ॥
गुरु ढिग, मुनिपद को धरा, गहा मोक्ष का पंथ ।
महा उग्र तप को तपें, करीं इन्द्रियां रुंथ ॥

जीत परीषह वाइस सारी, घोरोपसर्ग सहें सम धारी ।
अनुप्रेक्षन वैराग्य बढ़ाया, निज स्वरूप में लगन लगाया ॥
देश देश में करें विहारा, आगम विधि से करें अहारा ।
सर्व मुनिनि में श्रेष्ठ कहाये, अचल मेरुसम ध्यान लगाये ॥

दोहा— दूर करन मृगखाज कों, उपल समझ रगड़ायँ ।
आपस में बन जीव सब, वैर विरोध तजायं ॥
गुण गण का तप तेज से, प्रगटी ऋद्धी काय ।
मुनि विचरें कैलाश गिरि, शिव रमणी की चाय ॥

नृपपद लह सुग्रीव विचारा, रण को नहिं सामर्थ्य हमारा ।
दशमुख प्रवल पराक्रम धारी, अरु दल भी है ताका भारी ॥
याते भगिनि को परिणाऊं, अरु ढिग जाके शीस झुकाऊं ।
हम विचार दशमुखढिग आया, किया नमन भगिनी परिणाया ॥

दोहा– तभी अन्य नृप निज सुता, ला दशमुख कों दीन ।
परिणय कर पुन यान से, दशमुख गमन सुकीन ॥
सुखयुत लंका के विषें, कीना समय वितीत ।
पुण्य उदय से सुख लहा, चित में ईति न भीति ॥

सुख सों काल विताय दशानन, निशिदिन रमता विषय कषायन ।
सुख का काल, समझ ना आवे, चाहै जितना वीतत जावे ॥
समय समय पै धर्म्हु ध्यावे, चित में चाह, नहीं विसरावै ।
अब पुन विचरन को चितचाया, सब को चित की चाह सुनाया ॥

दोहा–मंत्री, परिजन, तियनयुत, चले दशानन राय ।
अष्टापद के शिखर पै गति विमान रुक जाय ॥
चक्री के जिन भवन जहँ, या मुनि ऋद्धि प्रभाव ।
रुके यान चाले नहीं, कीना वहुत उपाव ॥

जिमि सुमेर तें रुकै वयारा, तिमि विमान रुक ऋद्धी द्वारा ।
हो गति हीन चीण हो शक्ती, चलै न चाला हुई अशक्ती ॥
ऋद्धि प्रभाव अगम्य वताया, विद्या का वल हीन कहाया
वहुतक शक्ति लगाइ दशानन ना चाला, हो मलीन आनन ॥

दोहा– हारा सवविध तवहिं यों, मंत्रिन से उच्चार ।
ये विमान चलता नहीं, क्यों अशक्तता धार ॥
इमि सुन मारिच ने कहा हेतु जँचत है मोय ।
इस कैलाश गिरीश पर, तिष्ठैं ऋद्धिवर कोय ॥

ग्रीष्म ऋतु में बैठ शिलासन, तपते योग धरें आतापन।
धीर वीर मुनि समता धारी, जीत परीषह बाइस सारी॥
इस विधि कोउमुनि ऋद्धि उपाई तासु प्रभाव लखो खगराई।
मुनि का दर्शन करके चालो, या विमानको पांछु पछालो॥

दोहा– दोय समस्या के विषें, करो तुम्हैं रुचिथाय।
हठ तें यान चलाव तो, खंड खंड हो जाय॥
सुन दशमुख ने यों वयन, मुनि दर्शन चित लाय।
द्रुत विमान से उतर कें, गिरि पै दशमुख आय॥

निर्झर नीर बहै अति पावन, छहऋतुके फलफूल सुहावन।
गर्जहिं सिंह फुंकारे अजगर, विचरैं मत्त गयन्द भयंकर॥
गिरिवर गुफा शान्ति सुखदायक, प्रगटकरत शिवमार्ग विधायक।
पक्षिन कलरव अती सुहावन, प्रकृति रम्य देखी मन भावन॥

दोहा– जलद घटा घुमड़ी गगन, दामिनी दमक दिखाय।
सुमन सुगंध सुहावनी, तृणलता अति अधिकाय॥
मँदचाल दशमुख चलत, चित में अति हर्षाय।
कहै धन्य कैलाश यह, शोभा कही न जाय॥

विहरत दशमुख सुखयुत आया, जँह बाली ने ध्यान लगाया।
फटिक मणि सम शिला सुहाई, तापै ध्यान अग्नि प्रज्वलाई॥
महा आतपन योग लगायें ग्रीष्म धूप में काय सुखायें।
लजै सूर्य लख तेज अपारा, तन में लिपटे अहिफणि कारा॥

दोहा—खड़े ठूंठ सम ऋषि दिखें, मनों थंभ पाषान ।
रमें अचल चिद्रूप मँह, शान्त छवि अमलान ॥
यों अतिशय युत लख तऊ, पूर्व विरोध चितार ।
जिमि घ्रत आहुति अग्नि लह, प्रज्वलै तुरत अपार ॥

भ्रकुटि चढ़ाई, ओंठ डसाकें, कहे कुवच,अति ही रसियाकें ।
चलत विमान, रोक दिय मेरा, अब देखत बल कितना तेरा ॥
तेरा अब तक मान न छूटै, साधु भेष धर जग को लूटै ।
तप करके मुनि, मान नशावें, तू तप करके मान बढ़ावें ॥

दोहा—वीतराग का धर्म तो, मान कषाय नशाय ।
तूं पाखंडी भेष धर मान कषाय बढ़ाय ॥
विष अरु अमृत मर्म बिन, देता जबरन प्रान ।
तन सुखाय फल ना लहै, जिन वृष कठिनमहान ॥

ढोंगी तूं कैलाश लजाया, वृथा ढोंग रच या थल आया ।
सिन्धु मांहि कैलाश डुबाऊं, तो तपबल का मान नशाऊं ॥
यों कह रूप भयंकर कीन्हा, विद्या बलकर बनाय लीन्हा ।
पुन प्रविशा पताल के मांही, रिपतें तन की सुध बुध नांही ॥

दोहा—निज विद्या बल जोर से, हिला दिया कैलाश ।
प्रलय काल सा छा गया, करने सर्व विनाश ॥
गज केहरि आदिक सभी, वनचारी जे जीव ।
भागे प्रान बचावने, व्याकुल हुए अतीव ॥

पक्षिन का कोलाहल छाया, उथल पुथल झिरनन जल पाया।
शिलागिरीं अति हुआ धड़ाका, दृश्य भयानक हुआ तहाँ का॥
यों उपसर्ग अचानक देखा, क्रीड़त खग सुर चित्त भय लेखा।
प्राण बचाव सभी जिय भागें, महा भयंकर दशदिशि लागें॥

दोहा– अनुचित रावण ने कियो, यों बाली लख लीन।
अमित शक्ति धारी तऊ, नहिं रिष चितमंह कीन॥
ज्यों के त्यों ध्यानस्थ रह, निस्पृह देह मंझार।
चक्रिरचित जिन भवनका, चितमंह किया विचार॥

ऋषभ यहां ते मुक्ति पधारे, सुर अष्टापद नाम उचारे।
ता सुत भरत चक्रि यंह आके, रत्नजड़ित जिनगृह निरमाके॥
त्रिकाल चौवीसी गढ़वाई, रत्नन बिम्ब तहां पधराई।
प्रमुख तीर्थ कैलाश कहाये, तास अभाव आज हो जाये॥

दोहा– यातें तसु रक्षण करूं, नाश हान नहिं पाय।
यों विचार अँगुष्ठ पग, ढीलो शीघ्र दबाय॥
वृष उपसर्ग मिटाऊं मैं, मात्र यही है भाव।
नांहिं रोष दशमुख प्रती; यातें कछुक दबाव॥

ज्योंहि अँगूठा बालि दबाया, त्योंहि दशानन बल बिघटाया।
बल विद्या का तत्क्षण भागा, निज तनबलभी लगै न लागा।
धंसा शैल पहिले से नीचे; दबा दशानन जिसके नीचे।
निकसा रुधिर माय के माही, टूटा मुकूट रही सुध नाहीं॥

दोहा–लखा दशानन अब मुआ, चलत न मेरा जोर ।
विद्या बल भी विफल हो, प्राण बचै नहिं मोर ॥
तब विलाप दशमुख किया, गूंजा दशदिशि मांहि ।
हाय मरा, हा मैं मरा, प्राण बचै अब नाहिं ॥

नाम दशानन जन्मत पाया, रुदन किये रावण कहलाया ।
किया काम अति अपयश कारी, यातें नाम अयशता धारी ॥
निंद्यक्रिया होती क्षण मांही, तोहू अपयश मिटता नांही ।
यातें कबहुं न पाप बिचारो, मन वच काया लें निरवारो ॥

दोहा–कृत कारित अनुमोदना, भंग सहित कर त्याग ॥
कबहुं, पाप ना कीजिये, दुखद, दहन जिम आग ।
देव शास्त्र, गुरु अविनयी, लह दुख भव भव मांहि ॥
यातें ज्ञानी, तजत हैं, लह शिव संशय नांहि ।

देव शास्त्र गुरु, तारनवारे, इन प्रति जो कोउ रिप कूं धारे ।
को कह तब तक वह दुख पावै, नर्क निगादन में उपजावै ॥
यातें भूल कबहुं ना कीजे, निज को स्वतः सुधार सुलीजे ।
मोह राग रुष अति दुख दाता यातें याकूं मेटौ भ्राता ॥

दोहा–पर नहिं सुख दुख देत है, देत स्वयं परिणाम ।
निज स्वरूप की भूल तें होता दुख का धाम ॥
यातें रमों स्वरूप मंह, सब विध तजो विभाव ।
पापरु पुण्य नशाय कें, क्षण में शिव को पाव ॥

सुन दशमुख के विलाप वैना, और कहत है प्राण वचैना ।
द्रुत विमान तें गिरि पै धाये, तियां मंत्रि सेनापति आये ॥
वाली का तप तेज लखाया. गिरि तल स्वामी रुदन मँचाया ।
रुदन करन पै अचरज धारा, पुन सबने मन मांहिं विचारा ॥

दोहा— करन अवज्ञा ऋषि प्रती प्रविशे गिरि तलमांहिं ।
रोये बल निर्बल हुआ, प्रभु बल चाला नांहिं ॥
नहि समझै ऋषिबल अगम निज बल का किय मान ।
दबके रोयें यों तभी, किया महा अज्ञान ॥

समझे थे कोऊ अरि दबाया, यातें स्वामी रुदन मंचाया ।
रिपू नशावन शीघ्र सिधाये, लखत हाल यों सब अकुलाये ॥
सबने शस्त्र भूमि में डारे, नम कर ऋषि की थुती उचारे ।
हे प्रभु आप क्षमा के सागर, दुःख निवारक करुणा आगर ॥

दोहा— नाहिं कोप है आप चित, और न व्यापै मान ।
शत्रु मित्र इक सम गिनत हे त्रिभुवन हित दान ॥
क्षमो हमारे स्वामी ने, किया अधिक अपराध ।
समता सागर आप हो, करो न तास विराध ॥

काय ऋद्धि थी ऋषि तन मांहीं ताबल मेंट सका खग नांहीं ।
तनक अँगूठा ऋषि दबाया, ताका अतिशय यों प्रगटाया ॥
देव दुंदभी नाद मंचाये, पहुप रतन नभ तें बरसाये ।
नर खग, सुरने किय जयकारा, ऋषिलखि विघ्न टला अब सारा ॥

दोहा—ढीला किय अंगुष्ठ जब, खगप सचेती लीन ।
झट निकसा पाताल से, ऋषि प्रति नमन सुकीन ॥
प्रमुदित चित थुति उचारी, अहो ! धन्य ऋषिराज ।
क्षमो आप अपराध मम, तुअ प्रताप लख आज ॥

मैं अति अज्ञ किया अभिमाना विद्याबल से हुआ दिवाना ।
योगशक्तिबल आज निहारा, क्षण में घुमा सकत जग सारा ॥
धन्य प्रतिज्ञा आप निवाहे, देव शास्त्र गुरु को शिर नाये ।
ताका अतिशय यों प्रगटाया, सुन न देख जो बल तुम पाया ॥

दोहा—शत्रु मित्र पै दृष्टि सम धारी आप अपार ।
आप सदृश तप तेज बल, इन्द्र चक्रि नहिं धार ॥
अरु सूरज का तेज भी तुअ ढिग निष्फल दिखाय ।
अद्भुत महिमा आपकी, मो पै कहिय न जाय ॥

मुझ पापी ने अविनय कीन्हा, दुर्गति बन्ध स्वयं कर लीन्हा ।
गुरु द्रोह जिन भवन अवज्ञा, आप निवार दई शुभ प्रज्ञा ॥
आप समान नहीं हितकारी मो पापी की गति सुधारी ।
जगत असार आपने जाना; मैं शठ, अजहूं रहा अजाना ॥

दोहा—आप सदृश नर रत्न, प्रभु मो समान दुर्बुद्धि ।
हुआ न है नहिं होयगा, धिक धिक मेरी बुद्धि ॥
मम बल सरसों सम गिनो, तुव बल मेरु समान ।
रंक कांच लह मद करै, त्यों मैं कीना मान ॥

दुर्लभ नरभव, मैंने पाया, तो भी विषयन मांहि गमाया ।
निज स्वरूप श्रद्धा नहि धारी, यातें भूल भई मम भारी ॥
आप्त स्वरूपहिं श्रद्धा कीन्ही, स्वहित मांहिं अब दृष्टि दीन्ही ।
रत्नत्रय की प्रापति लीन्हे, दुर्लभ सफल मनुज भव कीन्हे ॥

दोहा—या विधसे अति थुति करि, दई प्रदीक्षण तीन ।
अति लज्जित हो मनविषें, पश्चाताप सुलीन ॥
कर थुति पुन यहं से चला, गया जिनालय मांहि ।
भक्ति युक्त, वंदे प्रभू, लीन हुआ सुध नांहिं ॥

प्रमुदित रत्नन विंब निहारे, किय पूजा पुन थुति उचारे ।
नांहि भरा मन, नस इक खैंची, अपनी बाहु में से ऐंची ॥
पुनि वन्दे त्रिकाल चौवीसी, मुक्ति प्राप्तिकी लगी गलीसी ।
जो निज चितिमँह, तुम गुणधारै, वही कर्म अरि वेग विदारै ॥

दोहा—धन्य धन्य जिनराज तुम, तीन लोक के राय ।
नस की वेणु बनायकें, ठुमकिठुमकि गुणगाय ॥
दोष अठारा गत प्रभु, अतिशय हैं छयालीस ।
प्रणमहुँ श्री अरिहंत को, त्रय कालिक चोवीस ॥

क्षेत्र विदेहन के तीर्थंकर, नमों वीस ते पाप क्षयंकर ।
धन्य सुक्षेत्र विदेह कहाया, धर्ममार्ग नित ही प्रगटाया ॥
अंतराल कबहूं ना आवै, बत्तिस नगरीमें कहुं पावै ।
प्रगटे श्रीजिनवर की वानी, हों चक्री हरि हलधर ज्ञानी ॥

दोहा— प्रणमूं सिद्ध समूह अरु, आचारज उवझाय।
सर्व साधु वन्दन करूँ, नितप्रति मन वचकाय ॥
या विध से अति थुति करी, आसन डिग धरणेन्द्र।
अवधिज्ञान से यों लखै, करी थुती भूपेन्द्र ॥

यातें शीघ्र यहां पै आया, श्री जिनवर को शीस झुकाया।
थुतिकर पुन खग ढिगै पधारा हर्षभावयुत इन्हें उचारा ॥
सुनहु खग तुम बात हमारी, तुमने अति ही थुती उचारी।
यातें कांपा आसन मेरा' अवधिज्ञान से लख गुण तेरा ॥

दोहा— नस की वेणु बनाय तुम, ठुमकि ठुमकि गुण गाय।
त्रय कालिक चौवीस की. अति ही थुती उचाय ॥
यातें, मैं हर्षित भयो, देत तुम्हें वरदान।
जो चाहो, याचन करो, देहों निश्चय जान ॥

सुन दशमुख अति हर्ष उपाया, नागपति से एम उचाया।
श्री जिनदर्शन विनती पूजा, इन सम पुण्य पुञ्जनहिं दूजा ॥
इनकी प्रापति भवभव यांचों, और नहीं इच्छा कछु जांचो।
कमी होय तो यांचों तोसूं. अनरथ यांचों जाय न मोसूं ॥

दोहा—इमि वच सुन धरणेन्द्र ने, कहा सुनहु खगराज।
जिनभक्ती से मिलत पद, मुक्त पुरी साम्राज ॥
पुन नर, खग,सुरपतिन के, पद मिल अचरज कौन ॥
जाको तुमसे हम कहें, नांहि मिलेगा जौन।

तो भी हित कहत तिहारी, नाहिं विफल हो मिलन हमारी।
विजया शक्ति अब अपनाओ, अरि अरिष्ट को तुरत नशावो॥
ना मालूम कब विपदा आवै' कौन समय पर का हो जावै।
यातें मानो बात हमारी गृहण करो जा भई तिहारी॥

दोहा– याविध से धरणेन्द्र ने, शक्ती याको दीन।
रावण होय उदास चित, शक्ती को ले लीन।
नाहिं याचनें भाव किय तउ ये जबरन देत।
काविध से नाहि करो, बहुत बतावत हेत॥

गले पड़ै पै शक्ती लीन्ही, ना प्रसन्नता चित में कीन्ही।
दाता पद को ऊँच बताया, याचक पद अति हीन कहाया॥
यातें शक्ती नाहिं सहाई, पुण्ययोग ने विवश दिवाई।
जिनभक्ती से पुण्य कमाया, तत्क्षण ताका फल भी पाया॥

दोहा-- रावण अरु धरणेन्द्र ने, प्रमुदित किया मिलाप।
गवने निज निज थानको, शिष्टाचार अलाप॥
आये लंका के विषैं, सुख सों काल बिताय।
अविनय गुरु अरु देवकी, पुन न करो खगराय॥

अब वाली मन माहिं विचारा, मैं हू अपना साम्य विगारा।
यों विचार गुरुके ढिग आया, रावण का वृत्तांत सुनाया॥
रक्षों भवन चाह चित लीन्हें, यातें याविध उपाय कीन्हें।
मो निमित्ततें दुख हो वाको, हे गुरु शल्य मिटावो याको॥

. न प्रायश्चित दिया, सदृश विष्णु कुमार ।
आत्मशुद्धि की बालि ने, गुरु आज्ञा अनुसार ॥
तप कर कर्म खिपायकें, पाया पद निर्वान ।
'नाथक' रमत स्वरूप निज, पावेंगे शिव थान ॥

॥ इति त्रयोदशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ सुग्रीव और सुतारा के सम्बन्ध का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छंद ❀

नगर ज्योतिपुर नृपति अग्निसिख, सुता सुतारा लक्ष्मी रूप ।
मानो कमल वास तज तज आई या श्री ही सम दिपै अनूप ॥
समय पाय ये यौवन पाई, मात पिता मन चिन्ता लीन ।
पुत्री के अनुरूप मिले वर, कुल गुण वय में हो ना हीन ॥
दोहा– नृप चक्रक रानी मती, सुत साहसगति तास ।
हुआ युवा अविवेक लह, क्रूर कलह की रास ॥
ये साहसगति एक दिन, ज्योतीपुर को आय ।
रूप सुतारा का लखा, हृदय विकलता छाय ॥
रात्रि दिवस ये ताहि विचारै, खान पान की रुचि विसारै ।
मत्त समान अवस्था धारी, विगड़ी देह व्यवस्था सारी ॥
अकुलाके तब दूत पठाया, वाने आके वृत्त सुनाया ।
कहि साहसगति तुम्हें उचारी, मो लायक है सुता तिहारी ॥
दोहा–यों सुन सोचा नृपति ने, पुन कह दीना ताह ।
हम विचार कर कहेंगे, कहां करेंगे व्याह ॥
दूत जाय कहि स्वामि से, उत्तर दीना राय ।
निश्चय नहिं कुछ है अभी, कर विचार परिणाय ॥
वाली अनुज सुग्रीव कुमारा, सुनी रूप गुणवन्ती तारा
याने भी निज दूत पठाया, वाने याको योग्य वताया

याको भी नृप उत्तर दीन्हा, अभी न हम कुछ निश्चय कीना ।
पुन, पुन दूतहिं, भिजवाय देवें, भूपति मान कौन की लेवें ॥
दोहा—मोह शैल ते. यह निकस, आशा सरिता भूर ।
जग महं भरी अगाध है, विविध मनोरथ पूर ॥
तृष्णा तरल तरंग अति, निशिदिन याके मांहिं ।
वीतराग ही तर सकत, दूजो समरथ नांहिं ॥
आश फांस सम है दुखदाई, सब भूतल मॅह ये ही छाई ।
जब तक होय न आशा पूरी, तब तक चाह होत नहिं पूरी ॥
आशा सुतारा दुहुन लगाई, नृप चित मॅह विकलपता छाई ।
काको ब्याहें काको छांरें, दुहू योग्य चित मांहिं विचारें ॥
दोहा—चिन्ता ज्वाल चिता सदृश, होन नांहिं दे चैन ।
चिता दहै इक वार ही, अरु चिता दिन रैन ॥
सुता हमारी एक अरु, छै वर यांचत ताह ।
निशिदिन नृप चिंतित रहै, काको देवें ब्याह ।
कछु दिन बीते यती पधारे, अवधिज्ञान से जानन हारे ।
शीश नाय नृप तिन्हें उचारी, नाथ मिटावो शल्य हमारी ॥
दो वर, सुता सुतारा चाहें, बतलावो हम काको ब्याहें ।
हुई युवती है सुता हमारी, ताकूं ब्यांहन, चिंता भारी ॥
दोहा—मुझे प्रयोजन ना मुने, होय धनी या दीन ।
किंतु हमें बतलाइये, काकी आयू हीन ॥

यों सुन श्री मुनिराज ने, शल्य मिटावन काज।
अवधि ज्ञान से आयु लख, कहै नृप को गुरुराज ॥

है सुग्रीव दीर्घ वय धारी, साहसगति की अल्प उचारी।
यों कह् नृप की शल्य मिटाई, सत्य यथावत गुरु दर्शाई ॥
मुदितहोय नृप अतिथुति कीन्हीं शल्य हमारी मिटाय दीन्हीं।
आप जगत के हो हितकारी, दीनबन्धु हो करुणाधारी ॥

दोहा– यों निर्णय सुन नृपति ने. ब्याहि सुता सुग्रीव।
सुग्रीवहु थाकूँ परखि, पाया हर्ष अतीव ॥
जग मंह उत्तम वस्तु को, चाहत है सब कोय।
मन चाही तब ही मिलत, पुण्य उदय जब होय ॥

यों दम्पति सुग्रीव सुतारा, सुख भोगें नित रमें अपारा।
समय पाय नृप द्वय सुत जाये, अङ्गद अङ्ग सुनाम रखाये ॥
सुखसे अपना काल वितावें, महराजा सुग्रीव कहावें।
पुण्य उदय से सब सुख पाया, नमै याहि को बहु खगराया ॥

दोहा-- साहसगति अब तक चहै, मिलै सुतारा मोय।
अनहोनी चिन्ता करै, सुध बुध दीनी खोय ॥
पापी को मन पाप मंह, निश दिन रमत अपार।
धिकधिक काम विकारको, तजत न निंद्य विचार ॥

ऐसे वीर जनें जगती नें, मत्ता गज को वश में कीनें।
पकड़ केहरी कर्ण उपारें, या पग तल रख ताहिं पछारें ॥

अचरज यामें कछु भी नाहीं, जीतै काम बीर जग माहीं।
वे वीरन में वीर कहावैं, मन्मथ वशकर शिवसुख पावैं॥

दोहा— मन्मथ के वश करन को, नहिं साहसगति शक्त।
चहै रूप परिवर्तिनी, साधन विद्या सक्त॥
सहै परीषह अतिघनी, बैठा ध्यान लगाय।
चिंतै चित मंह चाव से, कबै सिद्ध हो जाय॥

पूरण करन वासना खोटी, बैठ शिखरकी ऊंची चोटी।
दुःखी जीव ज्यों मित्र चितारै, त्यों ये विद्या मन्त्र उचारै॥
यदि सुभावना हिय में धारै, कर्म नाश कर मोक्ष पधारै।
किंतु मोह वश करै कुभावा, जो लेवैं भव भव में दावा॥

दोहा— कर्मन के वश जीव है, जंह खैंचे तंह जाय।
कर्मन को वश वह करै, जो स्वरूप प्रगटाय॥
यातैं सेव स्वरूप को, यो है सुख की खान।
'नायक' रमत स्वरूप मंह, पावैं पद निर्वान॥

॥ इति चतुर्दशः परिच्छेद समाप्तः ॥

अथ रावण की दिग्विजय, सहसरश्मि से युद्ध पुन याका दीक्षा ग्रहण वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

दिग्जय हेतु सैन्य युत दशमुख, गवने, मग मँह अन्तर द्वीप ।
तहँ के सब नृप, शरणों आये. तिनकों तहँहि रखे महीप ॥
वशी नृपन का आदर कीन्हा, और बचन से दिय सन्मान ।
इत्थत, निज शासन मनवाकें, आगे दलयुत किया प्रयान ॥

दोहा–पताललंका तब निकट, अर्ध निशा पै आय ।
मेला दल चारों तरफ, हुआ शोर अधिकाय ॥
जयध्वनि गूंजी दश दिशन, धन्य दशाननराय ।
शीस झुकाये नृपन के, विजय ध्वजा फहराय ।

सुन कोलाहल चन्द्र नखाने, खरदूषण को लगी जगाने ।
उठहु वेग मम भ्राता आया, इमि कह, पतिको शीघ्र जगाया ॥
वेग जाव पाहुन गति कीजो, रत्नन आरति, उतार लीजो ।
सुन खरदूषण अति हर्षाया, शीघ्र दशानन के ढिग आया ॥

दोहा–हर्षित हो सन्मान किय, आरति लई उतार ।
पुष्पवृष्टि अति ही करी पुन जयकार उचार ॥
दशमुख हर्षित होयकें, उरसे लिया लगाय ।
मिले परस्पर प्रेम मय, प्रीति न हृदय समाय ॥

दलपतिका पद, दशमुख दीन्हा, हर्षित हो खरदूषण लीन्हा ।
पुन निजदल दशमुखहिं बताया, चौदह सहस संग खगराय ॥
विद्या मंडित, शस्त्र सजाये, दशमुख लखकर अति हर्षाये ।
सम्भाषण कर, अति सुख पाया, गमन किया पुन रावण राया ॥

दोहा—बैठे पुष्पक यान में रावण नृपति अधीश ।
शीस छत्र, चामर ढुरें, बंधा मुकुट है शीश ॥
सहस अक्षोहणिदल सहित, दशमुख किया प्रयान ।
नर खग सुर भयभीत हो, सेवें चरणन आन ॥

चलत-चलत रेवा तट आये, अमृत पय पिन प्यास बुझाये ।
देख तहां की शोभा भारी, ठहरी यँह पर सेना सारी ॥
जलचर जल में करें किलोलें, वनचर जीव जहं तंह डोलें ।
पक्षिन कलरव है सुखकारी, इमि शोभित नर्मदा निहारी ॥

दोहा—कहुँ अथाह कहुं थाह लख, कहुँ पै वेग लखाय ।
कहुँ कुंडलाकार कहुँ, सूधो नीर बहाय ॥
कहुँ भयानक दिखत, कहूं कहूं सुन्दराकार ।
निरख रम्य रेवा सुखद, हर्षे हृदय अपार ॥

यहां पर हुआ विशेष कथानक, दशमुख आयेयहां अचानक ।
माहिष्मति नगरी का राया, सहसरश्मि जलक्रीड़न आया ॥
जल यंत्रन से नीर बंधाके, कीनी क्रीड़ा तियन बुलाके ।
कोउ जल छिड़कें कोउ उछालें, कैनक डुबकी लेकर चालें ॥

दोहा– याविध से क्रीड़ा विपुल, सबने मिलकर कीन ।
भूपति अरु ललनान ने, सुध बुध सब खो दीन ॥
महा भीड़ से खुल गये, जे जल यंत्र बँधाय ।
ठेलि पड़ी जल की घनी, पूर महान दिखाय ॥

पूजा का अब समय लखाया, दशमुख चित में अति हरषाया ।
रचकर आसन वालू ऊपर, गाड़ा दँड रत्न को भूप्र ॥
तान चँदेवा मोतिन झालर, थापी प्रतिमा किय बहु आदर ।
दर्शन पूजा अति थुति कीन्हा, मोद मग्न हो अति सुख लीन्हा ॥

दोहा—ताहि समय अति ठेल से, जल का आया पूर ।
लखतँइ दशमुख चित्त में, रिसयाया भरपूर ॥
धरी शीश पै बिम्ब को, देखो इमि उच्चार ।
आइ कहाँ से ठेलि यह, बहता नीर अपार ॥
सुन सामन्त निकट इक आया, शीश नाय यों वृत्त बताया ।
उपरासे पै जल बँधवाकें, करे केलि नृप तियन बुलाकें ॥
महा धूम से बन्धन टूटा, यातें जल का प्रवाह छूटा ।
रवि सम तेज दिपत है ताका, का गुण वरणों अब मैं वाका ॥
दोहा—निज भटके सुन यों वचन, रावण अति रिसयाव ।
आज्ञा दीन्ही नृपन गण, बांध शीघ्र ले आव ॥
पूजा में अति विघ्न किय, मूरखता अधिकाय ।
ढील करहु नहिं रञ्च भी, जस किय तस फल पाय ॥

आज्ञा पाय नृपति वहु साजे, चले सैन्य ले वजते बाजे।
गमन गगन पथ चण मँह कीन्हा, गय हय रथ असवारी लीन्हा॥
सहसरश्मि ने ज्यों ही देखा, अरिका दल ढिग आवन लेखा।
तभी तियन को धैर्य बँधाया, आप निकस झट बाहर आया॥

दोहा– याकी सेना भी तुरत, सज धज के ढ़िग आय।
खग दल लख करके तऊ, चित मँह भय ना खाय॥
एक नृपति सेना घनी, ताको नृप आधार।
जिमि वहु तरु इक शैल पै, फूलैं फलै अपार॥

सहसरश्मि के शुभ सामंता, अरिदल ढ़िग में देख तुरन्ता।
रचना व्यूह स्वयं कर लीन्ही, आज्ञा की परवाह न कीन्ही॥
अरु रण हेतु हुए सब तत्पर, रावन सैन्य सजी थी अतपर।
यों लख सुरन करी नभ वानी, महा अनीति अहो खग ठानी॥

दोहा– भूमि गोचरिनि अल्पवल, हैं महि पर रण हेत।
खग साजे हैं गगन मँह, करन चहैं रण खेत॥
यह भारी अन्याय है, न्याय नीति रण होय।
यहां अनीती हो रही, ऐसा करै न कोय॥

वहु समूह से खग थे आये, मानव संख्या अल्प लखाये।
सुनी खगों ने यह नभ वानी, उपजी लाज अनीती ठानी॥
वेग उतर खग महि पर आये, दोउ परस्पर युद्ध मँचाये।
गय हय रथ सब सन्मुख आकें, लड़ें परस्पर अति रिसयाकें॥

दोहा- मंचा युद्ध घनघोर अति, मरे बहुत ही वीर ।
शैल खडग बरछी चलें, चलें परस्पर तीर ॥
हटतो लख निज सैन्य को, सहसरश्मि भूपाल ।
लड़ने को सन्मुख हुआ, सज धजकें तत्काल ॥

सिर पै मुकट देह पर बख्तर, निर्भयचित हो रणको तत्पर ।
हटता दल को साहस आया, निज स्वामी के बलको पाया ॥
पुनः भिड़े वे वीर प्रचण्डा, करने लगे शत्रु दल खण्डा ।
घाव लगे की सुध नहिं लावें, केवल मारामार मँचावें ॥

दोहा— सहसरश्मि अतिकुपित हो, मारे वसके बाण ।
शत्रु सुभट घायल हुये, गिरें भूमि पर आन ॥
सहसरश्मि के सम्मुखै, टिकै न कोऊ खग आन ।
रावण की सेना हटी, इक योजन परिमान ॥

रावण से कोउ आय उचारी, नाथ हटी तुअ सेना सारी ।
महाबली है वह नृप सोई, ता के सन्मुख टिके न कोई ॥
इक योजन तुअ सैन्य हटाई, ऐसी मारा मार मचाई ।
औरहु हटती जाती सैना, वाकै सन्मुख धीर धरै ना ॥

दोहा— यों सुन हटती सैन्य अरु, वा ढिग टिकै न कोय ।
रावण भारी कुपित हो, रण को उद्यत होय ॥
सज त्रिलोकमन्डन तुरत, रण थल में द्रुत आय ।
की बाण वर्षा विपुल, रण घनघोर मंचाय ॥

सहसरश्मि के रथ को तोड़ा, घायल कीने रथ के घोड़ा।
सहसरश्मि चढ़ गज पै आया, शीघ्र वान अरि पै वरसाया॥
वखतर भेद चुभा जब तीरा, रावण नेक गिनी ना पीरा।
यों लख सहसरश्मि उच्चारा, हिरदय विद्ध करन कटुवारा॥

दोहा—विहंसत रावण से कहा, को गुरु धनुष सिखाव।
पुन वापैं सीखो धनुष, रण करने फिर आव॥
सुन रावण यों कटु वचन, चितमें अति रिसखाय।
उठा शैल मारी उसे, लगतइ रुधिर वहाय॥

सहसरश्मि तन रुधिर बहाया, नयनों में अंधियारा छाया।
हुआ अचेत पील के ऊपर, बचा किन्तु गिरने से भूपर॥
हो सचेत पुन शस्त्र उठाया, त्योंही दशमुख शीघ्र फंसाया।
तुरतइ बांध ताहि सो लीन्हा पुन सुभटन के कब्जे दीन्हा॥

दोहा—लख अचरज खगपतिननें, जय जयकारा कीन।
सहसरश्मि सा शूर भी, बंधन मँह कर लीन॥
जीत वैश्रवण यम पुनः कैलासहु कम्पाय।
वल अखंड या तन विषैं दूजो नाहि दिखाय॥

निशि में पाये घायल वीरा, कर उपचार हरी उन पीरा।
मृतकन का भी दहन कराया न्यायोचित रण धर्म कहाया॥
फहरी सबमें विजय पताका सबने अतियश गाया याका।
धन्य धन्य है वीर दशानन, एकछत्र हो तेरा शासन॥

दोहा– सहसरश्मि के बन्धु सब, मिलके पितु ढिग आंय ।
जंघाचारण ऋद्धियुत, ऋषि शतबाहु कहाय ॥
ऋषि चरणन को नमनकर, सुत का वृत्त बताय ।
पुन कह ताहि छुड़ाय अब, खग रावण पै जाय ॥
सुनो वीरता समता सागर, दया दक्ष तप तेज उजागर ।
सब जीवन पै करुणाधारी, तास छुड़ावन चित्त बिचारी ॥
दशमुख को जिनधर्मी जानो, दया धर्म का मर्मी मानो ।
धर्मी मर्मी लख ढिग आये, दशमुख ने लख शीस झुकाये ॥

दोहा–अति हरषा चितके विषें, काष्टासन बैठाय ।
आप महीं पर बैठके, पुन इमि वयन उचाय ॥
ऋषिवर कृपानिधान तुम, दुर्लभ दर्शन जान ।
अनायास मोकूं मिले, धन्य भाग्य निज मान ॥
शशिसम है ऋषि कांति तिहारी, रवि समदीप्तिदिपै अतिभारी ।
मेरु समान अचलता पाई, सागर सम गुण गण गहराई ॥
क्षमा आपकी लोक उजागर, शत्रु मित्र सब एक बराबर ।
याविधदशमुख अतिथुति कीन्ही पुलकितवदन शांतिचितलीन्ही ॥

दोहा– सुन ऋषि याका मधुरवच, पुरुष शलाका जान ।
बहुत प्रशंसो पुन कहा, भो दशमुख कुलवान ॥
देव शास्त्र गुरु धर्म की, अति श्रद्धा है तोय ।
वचन श्रवण तें हो विदित भव्य आतमा मोय ॥

शूरवीर तुम नृप गण भूषण, कीर्ति तिहारी अति गतदूषण ।
अरिगण समुद विमल यश गावैं, सन्मुख रणमें टिकन न पावैं ॥
क्षात्र धर्म की नीति निभावो अरिको वश कर मान बढ़ावो ।
किया पराभव दया न तोड़ो, सहसरश्मिको अब तुम छोड़ो ॥
दोहा--सुन आज्ञा ऋषिराजकी, रावण शीश झुकांय ।
कहा सुनहु ऋषिराज जी, हम रण हेतु बतांय ॥
उद्यत हूं वशकरण को, जो खगपति वर इन्द्र ।
वाहि हाथ दादा मुये, माली नाम नरेन्द्र ॥
यातें वापै अति रिष छाई, तातें मैंने करी चढ़ाई ।
रेवातट पै किय विश्रामा, पूजन समय लखा अभिरामा ॥
बना चोंतरा बालू ऊपर, पूजन कीन्हीं शुरू वहीं पर ।
ठेल नीर का अति ही आया, पूजा मांही विघ्न मँचाया ॥

दोह--हेतु विदित हमको हुआ सहसरश्मि उतपात ।
क्षमा न यांची इन तऊ, कटु वच कह बहु भांत ॥
यातें बन्धन में किया दोप नांहि मम कोय ।
सुनहु नाथ ऋषिराज जी, सत्य बताऊं तोय ॥

भूमि गोचरिन जीत न पाऊं, तो पुन कैसे खगन हराऊं ।
जो हैं महा पराक्रमधारी, विद्या मण्डित शक्ति अपारी ॥
यातें मैंने यही विचारा करों स्ववश भू-पति दल सारा ।
क्रमशः चढ़ सोपान सुधीरा, शिखर शीश शोभित सो वीरा ॥

दोहा—वश करि के पुन छोड़ना, मो कहै उचित दिखाय ।
तापर आज्ञा आपकी, सोई होय अपिराय ॥
यों कह पुन आज्ञा दई, सहसरश्मि को लाव ।
जलदी जाओ सुभट गण, नेकु न विलम्ब लगाव ॥

सहसरश्मि को लेने आये; वे सब बखतर शस्त्र सजाये ।
नग्न खडग ले हाथन मांही, कहुँ वह सीधे आवे नाहीं ॥
याते चहु ओर से घेरा, करें चौकसी सभी घनेरा ।
सबको भय चित माहि समाया, सहसरश्मि सहजोर कहाया ॥

दोहा—कहूं कदाचित छूटकें, बिगड़ै या परिणाम ।
नहिं समरथ कोउ पकड़ने, एम बली अभिराम ॥
यातें सब भयभीत हो, लाये प्रभु ढिग मांहि ।
वाने नीची दृष्टि किय, ऊपर देखा नाहि ॥

जिमि मुनि ईर्यापथ से चालै, सब जीवन पै, समता पालै ।
याविध से ये इत पै आया, ऋषी पिता को शीश झुकाया ॥
बैठ पिता के चरणन मांहीं, इतै उतै कहुँ देखै नांही ।
सोचै अब ही मुनिव्रत धारू, मोह कर्म को शीघ्र विदारू ॥

दोहा—तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावन हार ।
नाचत है जिय स्वांग धर, अपना रूप विसार ॥
यातें मोह नशाय हों, अब न धरूं जग स्वांग ।
बना भिखारी जगत में, कबहुँ न पूरै मांग ॥

मोह महा मद बहु भरमाया, लाख चौरासी योनि रुलाया ।
पुण्य भोग तें नर भव लीन्हा, विषय कषायनमें खो दीन्हा ॥
पाय राजमद निजपद भूला, ज्यों खलिपाय रंक चित फूला ।
यातें शीघ्र महाव्रत धारों मोह कर्म को तुरत विदारों ॥

दोहा—रावण ने यासे कहा, भ्राता सुनहु सुजान ।
तीन भ्रात हम हैं अवै, चौथो तोकूं मान ॥
तो सहाय मैं पायकें जीतूं मानी इन्द्र ।
जो समझत मैं इन्द्र हूं, समतर कौन सुरेन्द्र ॥

निज नगरी को स्वर्ग बतावे, देवन समतर दल ठहरावे ।
लोकपाल हू हरि सम थापे, स्वर्ग विभूती सम निरमापे ॥
पटरानी को शची उचारैं सभी इन्द्र की नकल उतारैं ।
मान शिखर चढ़ वह इतराया होय मनुज हरि नाम धराया ॥

दोहा—यातें हे गुणभूषणे, वीर नरोत्तम धीर ।
हम तुम मिलहैं एक सम जिमि मिलता पय नीर ॥
मन्दोदरि की लघु बहिन, अब तोकूं परिणाऊं ।
सुख भोगो तुम स्वर्ग सम, यामें त्रुटि न रखाऊँ ॥

यों सुन सहसरश्मि उचारा, मेरे चित ने विराग धारा ।
जगरमणी को अब नहिं चाहूं, शिवरमणीसे व्याह रचाऊं ॥
मैंने विषयों को धिक्कारा, दर्शन मात्र मनोज्ञ अपारा ।
इन्द्रधनुपसम लखि जग माया अब न रमणको मो चित चाया ॥

दोहा–विषय कषायन-वश विवश, खोया काल अनन्त ।
अब तो इमि कारज करूं, होय जगत का अन्त ॥
यों सुन रावण ने कहो, सुनहु विचक्षण बुद्ध ।
मुनिपद अभी न सोहई, धरो होहु जब वृद्ध ॥

वचन हमारा अब ना टारो, राज सहित मैं सर्व तिहारो ।
मुनिचर्या अति दुष्कर जानो, कथन मात्र से सरल न मानो ॥
मिसरी मीठी सब कहैं जैसे, बिन चख स्वाद बतावै कैसे ।
यातें भ्राता मानो मेरो, यों दशमुख हट करी घनेरी ॥

दोहा–सहसरश्मि हंसकर कहै, सुनहु दशानन बात ।
बाल युवा या वृद्ध सब, काल गाल में जात ॥
नरपति खगपति देवपति, काल गाल के भोग ।
मंत्र तंत्र मणि औषधि, नहीं रक्षवे योग ॥

यातें काल कराल नशाऊं, अब अविनश्वर पद को पाऊं ।
यों कह सुत को वैभव दीना, आप पिता ढिग मुनिपद लीना ॥
मित्र पास यह खबर पठाई, सुन अरण्य अवधापुर राई ।
पूर्व दुहुन नें जो प्रण कीन्हा, खबर पठाऊं मुनि पद लीन्हा ॥

दोहा–सुन संदेश अरण्य ने, मित्र मुनी हो जाय ।
पूरण करन करार को, हमपै खबर पठाय ॥
हुती दुहुन की मित्रता, हुई प्रतिज्ञा एम ।
जो मुनिपद पहिले धरै, धरै मित्र भी तेम ॥

सुन तहिं अतिविषाद उर आया, अरण्य नयनन नीर बहाया ।
सोच समझ पुन समताधारी, कहै धन्य यह बुद्धि तिहारी ॥
जो या जग का पाश विदारन, किया महाव्रत तुमने धारन ।
पुन हम पै संदेश पठाया, सांचा मित्रपना दर्शाया ॥

दोहा—यों सुचित लघु पुत्र को, दिय अरण्य ने राज ।
ज्येष्ठ पुत्र युत मुनि भये, लैन मोक्ष साम्राज ॥
याविध शिवमग मित्रता विरले करत निबाह ।
'नायक' वे ही करत हैं, जिनको शिव की चाह ॥

॥ इति पंचदशः परिच्छेद समाप्त ॥

अथ यज्ञोत्पत्ति वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

जग में नामी नृप अभिमानी, ते सब दशमुख दिये नवाय ।
हो भयभीत शरण जे आए, तिन का गौरव दिया बढ़ाय ॥
किये स्ववश चक्री सुभूमि सम, अरु सब भूपति दिये कँपाय ।
फैली धवल कीर्ति दशदिशिमें, जगजन दशमुख के गुण गांय ॥

दोहा—धर्म भाव चित में रखे, जिन मन्दिर निर्माय ।
धवल ध्वजा जिन धर्म की, सब थल मँह फहराय ॥
जहं पै ऋषि गण को सुने, पहुंचै ताही थान ।
वंदे थुति पूजा करै, उत्सव रचै महान ॥

याविध फहरी धर्म पताका, दशदिशिमें यश फैला याका ।
मदमाते नृप बृन्द नवाये, ज्ञान दान दै ते समुझाये ॥
जैन धर्म का बाजा डंका, सेवें सब नर नारि निशंका ।
जो कोउ आन बान ना माने, ताहि नवाय दियो अब थाने ॥

दोहा—सुना दशानन जा समय, मरुत राजपुर मांहिं ।
हिंसा यज्ञ प्रचार किय, शँकै कोइ को नांहि ॥
हठी अमित बलवान नृप, मिथ्यो मारग ठान ।
कोउ न समरथ रोकवै, इमि गति मति तसु जान ॥

हिंसा मयी यज्ञ नित ठानें, करें प्रचार न शंका मानें ।
यों सुन श्रेणिक गिरा उचारी, कहौ यज्ञ की उतपति सारी ॥
कोनें यज्ञोत्पत्ती कीनी, प्रगटी हिंसा प्रवृत्ति नवीनी ।
हिंसा मांहि धर्म किम पावै, कहो प्रथम मो संशय जावै ॥

दोहा—सुन श्रेणिकका प्रश्न यों, दिय उत्तर गणराज ।
सुनहु कहों संक्षेप से, संशय मेटन काज ॥
नृपति ययाती अवध का, तास पुत्र वसु एक ।
क्षीरकदम गुरु के निकट, भेजो लहै विवेक ॥

पर्वत गुरु का पुत्र कहाया। नारद एक विदेशी आया ।
नृपसुत गुरुसुत नारद तीनों शिक्षा ग्रहण गुरु से कीनों ॥
गुरु का ज्ञान प्रखर था भारी, विद्यायें सिखलाईं सारी ।
नारद शिक्षा सब गह लीन्ही, वसु अरु पर्वत ग्रहण न कीन्ही ॥

दोहा—समय पायकें वन विषें, आये इक मुनिराज ।
अवधिज्ञान सम्पन्न सो शिष्यों सहित विराज ॥
यह सुन द्विज शिष्यन सहित, ऋषि दर्शन को जाय ।
इनको लख इक मुनि तवै, गुरु प्रति प्रश्न कराय ॥

कौन कौन गति चारों पावैं, इन भविष्य प्रभू हमें सुनावैं ।
श्रवण करन की चाह हमारी शीश नाय गुरु प्रती उचारी ॥
सुन श्रीगुरु ने अवधि विचारा, शिष्य प्रती पुनि एम उचारा ।
नारद क्षीरकदम द्वय ज्ञानी, नृपसुत गुरुसुत हैं अज्ञानी ॥

दोहा—ज्ञानी नर सुगती लहैं, दुर्गति को अज्ञानि ।
श्रवण करी गुरु ने तभी, श्री मुनि की इमि वाणि ॥
जगतें हुआ उदास गुरु, दीक्षा धरन उमंग ।
शिष्यन कों आज्ञा दई, घर जाओ तज संग ॥

पांछे से पुनि मैं भी आऊं, तुम सब चालो प्रथम अगाऊं ।
यों कह सबहिं विदाई दीन्हीं, आप गुरु ढिग दीक्षा लीन्हीं ॥
रमें आप में आप निरन्तर, तपै द्वि विधि तप वाह्याभ्यंतर ।
धन्य धन्य ऐसे गुरु ज्ञानी, जिन निज आतम निधि पहिचानी ॥

दोहा—आया पर्वत घर विषें, माता इकलो देख ।
कही कहां तेरो पिता, संशय चित में लेख ॥
धर्म बुद्धि उनकी हुती, गये मुनिन के थान ।
मालुम मोकूं पड़त है, मुनि पद गहा महान ॥

क्यों पितु छांड़ अकेला आया, साथ तात को क्यों नहिं लाया ।
सुन पर्वत ने उत्तर दीनां, आज्ञा देय विदा मो कीना ॥
पांछे आऊं एम उचारी, यों सुन मां अति किलपी भारी ।
सुत से कहि तूं भेद न जाने, काहे प्रथम भिजाय पिता ने ॥

दोहा— विप्रवधू निश्चय किया, पति जिन दीक्षा लीन ।
पांछे से मैं आउँगो, यों छल कर कह दीन ॥
इमि चितार शोकित हुई, कीना रुदन अपार ।
का वर्णन ताका करों, मानों कुररि पुकार ॥

पुन बोली तुम मुनिपद प्यारा, मेरा तो सर्वस्व बिगारा ।
या को बैरी बैर भँझाया, या देशांतर को उठ धाया ॥
यों विलाप कर रुदन मँचाई, मनु चकवी ने बिछुरन पाई ।
रोवत विलपत रैन बिताई, प्रात पुत्र से गिरा सुनाई ॥

दोहा—जाव लखो पितु आपनो, कँह है पिता तिहार ।
सुनत तुरत पर्वत गया, आया विपन मँझार ॥
लखा मुनिन के संग में, बैठा पिता हमार ।
नांहि वस्त्र तसु तन विषें, भेष दिगम्बर धार ॥

आय माय से वही उचारा, ठगा मुनिन ने पिता हमारा ।
भेष धराय आप सम दीना, अनजानत में वह धर लीना ॥
अब मै जाके उन्हें लखाया, ध्यान मांहि तब बैठा पाया ।
ना मालुम क्या मोकूं लेखा, आंख उठा कर भी ना देखा ॥

दोहा—यतिनी को निश्चय हुआ, पति जिन दीक्षा लीन ।
माथा धुनकर तड़फि इमि, जल बिन जैसे मीन ॥
आया नारद या ढिगै, गुरु का जाना वृत्त ।
कहा धन्य गुरु ज्ञानयुत, मुनि पद गहा पवित्र ॥
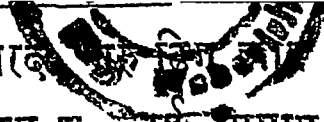
गुरुनी से कहि धीरज धारो, अपने चित से शोक निवारो ।
पै ये अति ही रुदन मँचावै, नारद पुन पुन पुन समझावै ॥
गुरु ने समझी झूंटी माया, यातें त्याग उन्हें मन भाया ।
वे हैं महा पुरुष बड़ भागी, आतम हित की सुध उनजागी ॥

दोहा-गुरु पतिनिंह समुझायकर, नारद [illegible] ।
भक्ति भाव युत नमनकर, हृदय न हर्ष समाय ॥
नृपति ययाती ने सुना, क्षीरकदम मुनि होय ।
ह्वै -विरक्त वसु को कहा, नृप पद दीना तोय ॥

याविध नृप ने भार उतारा, गुरु ढिग आके मुनिपद धारा ।
सहीं परीषह बाइस यानें, तप से लागे आत्म तपाने ॥
क्षीरकदम भी याविध कीन्हा, कारण जियने निजपद चीन्हा ।
आत्मबोध जब आतम होवै, तब ही आतम शिवपद जोवै ॥

दोहा-वसु ने नृप पद को गहा, द्विज पतिनी तहँ आय ।
नृप ढिग अति ही किलपकें, नयनन नीर बहाय ॥
यों लख नृप वसुने कहा, शोक तजहु हे माय ।
काहे तुम यों किलपतीं लेहु तुम्हें जो चाय ॥

इमि सुन द्विजनी धीरज लाई, मुदित होय पुनि एम उचाई ।
धर्म पुत्र तूं उच्च कहाया, औरस पुत्र हीन बुधि पाया ॥
पूर्ण आश रखती हूँ तोपै, अभी न यांचो जावै मोपै ।
वचन भंडार माहिं तुम राखो, जब मैं मांगू तब दै नाखो ॥

दोहा सुनत नृपति प्रमुदित हुआ, कहा मुझे स्वीकार ।
रखा वचन भंडार में यांचै देहुं निकार ॥
सुन ब्राह्मणी नृपके वचन, प्रमुदित दई अशीश ।
चिरजीवो पुनि हाथ निज, रखा नृपति के शीस ॥

एक समय वसु वन में आया, फटिक शिला इक रुचिर लखाया।
लाय तास के किय चउपाये, तिनकों आसन मांहि लगाये॥
बैठा जब आसन के ऊपर, नभ में दीखै दिखै न भूपर।
सत्य प्रभाव नृपति ने पाया, जनता ने या भांति उचाया॥

दोहा—निराधार आसन दिपै, नृप बैठा नभ मांहि।
फटिक मणी के भेद को, कोऊ जानें नांहि॥
यातें सब जयजय करें, धन्य धन्य वसुराय।
सतवादी तुम सम नहीं, सत्य प्रत्यक्ष दिखाय॥

इक दिन नारद पर्वत मांहीं, उठा विवाद निवटवै नांहीं।
यज्ञ मांहि अज को होमावें नारद कहि वे सुर पद पावें॥
पुन अज का यों अर्थ बताया, बोय न ऊगै अज कहलाया।
तीन वर्ष का धान्य पुराना, अन्न वही आहुति हित माना॥

दोहा—वीतराग का मार्ग है, धर्म अहिंसा रूप।
जँह हिंसा होवै तहां, अधरम दुःख स्वरूप॥
शुद्ध अहिंसा से मुकति, राग अहिंसा पुण्य।
जहां अहिंसा लेश नहिं, तहँ पर पाप अक्षुण्ण॥

यातें श्रावक यज्ञ करावें, तहां अहिंसा मार्ग रचावें।
शुद्ध अहिंसा सधती नाहीं, या सधती है यतिपद मांहीं॥
यातें अज का अर्थ विचारो, बोय ने ऊगै सो अवधारो।
यही अर्थ को गुरु वतलाया, एम साख गुरु की ठहराया॥

दोहा–सुन पर्वत रिसयाय कें; नारद से उच्चार ।
बकरा से ही अज कहत, होमें यज्ञ मंझार ॥
नहिं हिंसा हो यज्ञ में स्वर्ग मुक्ति दातार ।
यों आहुति गुरु ने कही, सब जीवन हितकार ॥

सुन नारद ने पुनः उचारी, हिंसा मांहि मिलै दुख भारी ।
नर्क निगोदन को पहुंचावै, पुन काहे तुम एम बतावै ॥
धर्म अहिंसा सुख का दाता, हिसा पुष्टि करो मत भ्राता ।
मन वच तन कृत कारित मोदन, तजहु अहिंसा नृप सम्बोधन ॥

दोहा–सुन पर्वत फुंकार के, हुआ सर्प की जात ।
विषधर विष उगलै सही, कितनउ दुग्ध पिवात ॥
कहै अभी वसु पै चलहु, उनसे न्याय कराय ।
कौन सत्य को झूठ है, देगा सांचा न्याय ॥

सुनकर नारद भी रिष धारा, स्वीकृत कीन्हा वचन तिहारा ।
नृप निर्णय यदि याका देवै, अपराधी क्या दन्डहि लेवै ॥
याका निश्चय प्रथम विचारो, पांछै निर्णय करन सिधारो ।
फिर भी मैं समझावत तोकूं हिंसा पुष्टि करण पुन रोकूं ॥

दोहा–सुन यह बोला गर्ज के, जैसे सिंह दहाड़ ।
मेघ गर्जना होत जनु पर्वत विपन मंझार ॥
अपराधी हो तासु का, जिह्वा छेदी जाय ।
यामें नहिं संकोच कछु ऐसी मेरी राय ॥

सुन नारद ने अस्तु उचारी कही वही स्वीकृती हमारी ।
पै अब भी समझावत तोकू, दोय दिवस तक निर्णय रोकूं ।
यदि नहिं माने न्याय कराऊं, करी पतिज्ञा विवश निभाऊं ।
किन्तु दया उपजत है मोकूं, गुरु भाई मैं समझत तोकूं ॥

दोहा–सुन पर्वत विहँसत कहा, तूं क्या दया उचार ।
मैं ही तोहि बचावता दो दिन और विचार ॥
नहिं तो जिह्वा छेद हो बचा सकै नहि कोय ।
धर्म यज्ञ हिंसा नहीं, बकरा आहुति होय ॥

यों कह पर्वत घर में आया, मां को सब वृत्तांत सुनाया ।
हो असत्य जो दोनों मांहीं, जिह्वा तासु छिदै शक नाहीं ॥
तुमहु कहो पितु अर्थ बताया बकरा का अज अर्थ कहाया ।
यज्ञ मांहि अज आहुति आई, अन्य भांति नहि पितु दर्शाई ॥

दोहा– सुन माता सुत के वचन, बोली अति रिसयाय ।
अज्ञानी पापी कुटिल बहुत अनर्थ बताय ॥
पिता सभी विध से कहा, जहँ जो अज का अर्थ ।
छेलरु त्रिवर्षि धान्य भी, प्रकरण बिन हो व्यर्थ ॥

हो प्रकरण वह पथम विचारो, पांछे से पुन अर्थ उचारो ।
बकरा होम मांहि नहि लीजे धान्यदि अर्थ होम मँह कीजे ॥
होय धान्य त्रय वर्षि पुरानें, उनकी आहुति हितकर मानें ।
याविध अर्थ करो सुखकारी· मोइ बात तुव तात उचारी ॥

दोहा—वीतराग के मार्ग मँह, धर्म अहिंसा जान ।
हिंसा से दुख भोगवै, नर्क निगोदन थान ॥
नर्क निगोदन थान का वर्णन अगम अपार ।
सो जानें भगवान प्रभु, या जो भुगतनहार ॥

यातें कहुँ अब मैं तोकूं, कौन भांति अब निर्णय रोकूं ।
याविध कह पुन विलाप कीनो, हा पति तुमने बहु दुख दीनो ॥
तो बिछुड़न नहिं बिसरन पाई, तो लग सुत को बारी आई ।
जिह्वा याकी छेदी जावै, निश्चय पुत्र मरम तब पावै ॥

दोहा—याविध अतिही रुदन किय, मानो कुररि पुकार ।
पति बिछुड़ा अब सुत चला, हाय हाय उच्चार ॥
मूर्छा खा महि पै गिरी, पुनः चेतना पाय ।
नृपति वचन सुध आइ अब, जो भंडार रखाय ॥

यह सुधिकर हिय धीरज धारी, आय नृप ढिग गिरा उचारी ।
बहुत दिनन में तो ढिग आई, देहु वचन तो ढिगै रखाई ॥
राखी तिहारे पास धरोहर सत्यवादि प्रख्यात मनोहर ।
विप्रवधू इम वचन उचारी, सुनत नृपति निजमाथे धारी ॥

दोहा—शीश नाय वसु ने कहा कहो माय क्या चाह ।
वचन निवाहों आपना है देव की लाह ॥
करने योग्य कार्य न हो, तो भी करहों पूर्ण ।
गिनूं न अनुचित उचित कछु, राखों न वचन अपूर्ण ॥

तब वसु को सब बात सुनाई, नारद पर्वत पक्ष थपाई ।
यज्ञ माँहि अज होम बताया, जुदा जुदा अज अर्थ लगाया ॥
नारद त्रिवर्षि धान्य उचारा, पर्वत बकरा अर्थ निसारा ।
अति विवाद हो दोनों मांही, अर्थ परस्पर मानें नांही ॥

दोहा—तबही निर्णय करन को, निश्चय दुहु ने कीन ।
जो निर्णय वसु नृपति दे, वह ही निश्चय लीन ॥
जिहिं असत्य ठहराय तसु, जिह्वा छेदी जाय ।
होड़ लगाई दुहन नें, निश्चय सेती राय ॥

गुरुपतिनी कहै मांग हमारी, पर्वत पक्ष गहो सुखकारी ।
जिह्वा तास न छेदी जावै, तुव प्रसाद तें जीवन पावै ॥
देहु वचन अब येही मोकू, देहुँ अशीष अभी मैं तोकूं ।
येही आश लगाकें आई, पूरो आश हमारी राई ॥

दोहा— वसु ने असमंजस लहा, दुविधा अटपट आइ ।
असत पुष्टि या गत वचन, एक कूप इक खाइ ॥
असत पक्ष पुष्टी करूं, तो दुर्गति को जाउँ ।
नांहि निबाहों वचन तो, जगमँह अपयश पाउँ ॥

गुरू तिया को मां सम जाना, वचन धरोहर मैंने माना ।
यदि नहिं दूं हो अयश हमारा, सत्य प्रभाव मिटेगा सारा ॥
यातें अपना वचन निवाहूं, नहिं वच को मै टालनचाहूँ ।
यों विचार या भांति उचारी, मानी माता बात तिहारी ॥

दोहा—सुन द्विजनी प्रमुदित हुई, नृप को दी आशीष ।
चिर जीवो पुन हाथ निज, रखा नृपति के शीश ॥
सुन नृप भी प्रमुदित हुआ, दीना धर्म विसतार ।
केवल वचन निबाह हित, गति सारू मति धार ॥
धर्म प्रभाव मनुज भव पाया, सुकुल निरोग प्रभावित काया ।
नृप पद का सुख वैभव लीन्हा, विसार ताहि धर्म को दीन्हा ॥
कोउ कह क्योंहुइ यों मति ताकी, गति सारू मति हुई अब याकी ।
बंध निकांचित का फल पाया, मेंट सका नहिं अमिट कहाया ॥
दोहा—नारद पर्वत मिल दुहू, आये सभा मँझार ।
कौतूहल के लखन को, पुरजन साथ अपार ॥
का निर्णय नृप देत है, याकी सब को चाय ।
थाप पच्छ पुन दोउ कह, निर्णयदाता राय ॥
नारद ने निज पच्छ उचारी, सुनहु नृपति अरु सब दरबारी ।
यज्ञ मांहि अज होम बताया, ताका निर्णय कर वसुराया ॥
तीन वर्ष के धान्य पुराने, हवन हेतु तेहू अजमाने ।
यज्ञ अहिंसा श्रावक कीनें, याहि अर्थ गुरु बताय दीनें ॥
दोहा—यों सुन पर्वत गर्ज के अपनी पच्छ सुथाप ।
अज का बकरा अर्थ कह, होम किये नहिं पाप ॥
यही अर्थ गुरु ने किया, तुमहु पढ़े वसुराय ।
या का निर्णय दीजिये, गुरु का थी क्या राय ॥

दुहू पक्ष सुनकरी वसुराया, पर्वत पक्ष सत्य ठहराया ।
फहतई टूटे आसन पाये, तबही वसु नृप महि पै आये ॥
इमि लख नारद पुनहु पुकारा, चेत नृपति तूं असत उचारा ।
धर्म विरोध उचारन कीना, ताका फल तूं तत्क्षण लीना ॥

दोहा—धर्म भाव का फल सुखद, स्वर्ग मोक्ष दातार ।
दुर्गति दुखद कुधर्म फल, याविध गुरू उचार ॥
तूंने लोपा गुरु वचन, किय अधर्म की पुष्टि ।
ताफल तत्क्षण ही लहा, तज यह पाप कुदृष्टि ।

धर्म लखो सुर शिव का कारण, पाप महा दुख देवै दारुण ॥
मेरु राइ में अन्तर जैसा, तिमहि अहिंसा हिंसा तैसा ॥
यातें असत पुष्टि मत कीजे, धर्म पुष्टिकर सुख को लीजे ।
सत्य प्रभाव चढ़े थे ऊपर, असत प्रभाव गिरे तुम भूपर ॥

दोहा—सुनत पापि वसु ने कहा, ठीक सत्य ठहराय ।
यों पुष्टी के करत ही, भूतल मँह धस जाय ॥
वसु मर कर सप्तम धरा, पहुँचा नर्क मँझार ।
सर्व सभा धिक धिक कहा, लखा पाप दुखकार ॥

सर्व सभा ने एम उचाये, वसु पर्वत इक राशि कहाये ।
नारद की जयकार उचारी, वृष प्रभावना फैली भारी ॥
जो जस करे सो तस फल चाखे, कर्म रियायत कबहुं न नाखे ।
पाप दुःख फल दुर्गति दाता, धर्म स्वर्ग अरु मोक्षप्रदाता ॥

दोहा—याविध से नर नारि में हुआ धर्म प्रचार ।
पाप पक्ष से वसु मुआ पर्वत लहि धिक्कार ॥
पर्वत का सब पुरजनन कीना बहु अपमान ।
की निन्दा भी अति धनी फैला कुयश महान ॥

लख पर्वत हुई निन्दा भारी वसु की मृत्यु हुई अपकारी ।
यातें अब देशान्तर जाऊं, हिंसा पोषक शास्त्र रचाऊं ॥
यों विचार कुशास्त्र रच दीना हिंसा पुष्टि ता मँह कीना ।
हवन हेतु प्रभु पशु बनाये हुत पशु आदि स्वर्ग शिव पाये ॥

दोहा—कालासुर का निमित लहै जग जीवन भरमाय ।
आहुत पशु सुरलोक को, जाते दिये दिखाय ॥
इमि माया को लखत ही बहुतक मूरख जीव ।
हिंसा मारग अनुसरें पुष्टि करें अतीव ॥

गणधर कहि भो श्रेणिक राया, यज्ञोत्पत्ति कथन बताया ।
यों सुन श्रेणिक नृप हरषाके, कीनी अति थुति शीश नमाके ॥
धन्य धन्य तुम गुण गण स्वामी, जग जीवनके हितकर नामी ।
हो तुम विपुल ज्ञान के धारी, थुति उचरन नहिं शक्ति हमारी ॥

दोहा—यों वसु पर्वत ने रची, यज्ञोत्पत्ति सृष्टि ।
ताका फल दुर्गति लहे अतिदुख की जँह वृष्टि ॥
यज्ञ चहै पूजा कहो इनका एकहि अर्थ ।
सेवो 'नायक' धर्म को, कबहुँ न होय अनर्थ ॥

॥ इति षोडशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

❀ अथ नारदोत्पत्ति वर्णन प्रारम्भ ❀

❀ वीर छन्द ❀

मरुत प्रसिद्ध राजपुर स्वामी, महत यज्ञ हिंसामय थाप ।
द्विज संवर्त कराय यज्ञ को बैठा सन्मुख नृप भी आप ॥
आये हवन हेतु पशु बहुतक, द्रव्यार्थी द्विज ले ले आंय ।
नारद ऋषि नभ पथ इत आये, पशु चीत्कार सुना ना जाय ॥

दोहा--अष्टम पदवीश्वर पुरुष, नारद जग विख्यात ।
जनसमूह को देखके, सोचै है क्या बात ॥
कोउ नृपति का दल पड़ा विग्रह को तैयार ।
करें पशू चीत्कार क्यों, याविध किया विचार ॥

नारद मन नित कौतुक आवै, रण दर्शन को अति ललचावै ।
ज्यों रण बाढ़ै त्यों ये नाचै, अति उत्साह हृदय में माचै ॥
इमि सुन श्रेणिक प्रश्न उठावे, बताउ उत्पत्ति किनसे पावें ।
काहे नारद नाम कहाया, श्री गणधर से एम उचाया ॥

दोहा—यों श्रेणिक का प्रश्न सुन, हो हर्षित गणराय ।
कहा सुनहु नारद जनम, छवि गुण देहु बताय ॥
एक ब्रह्म रुचि विप्र तसु, तिया कुरमिनी नाम ।
इक दिन द्विज विरक्त हुआ, आया वनके धाम ॥

द्विज ने धारा तापस व्रत तब, संग तियाभी विपिन मंझारा ।
कन्दमूल का भक्षण कीन्हा, नप का मर्म लेश नहिं चीन्हा ॥
समय पाय तिय गर्भ लहाई, अतिपाण्डुरता तन में छाई ।
गेह त्याजनता सहज लखायो, वनमें आय विषम विष खायो ॥

दोहा—समय पाय द्विज थानढिग, आया मुनि का संघ ।
लख द्विज भी द्विजनी सहित, आयो पास दुरन्त ॥
प्रमुदित मन दम्पति तहां, मुनिगण कूं शिर नाय ।
थुति उचार बैठ दुहू द्विजतिय अति अकुलाय ॥

यों लख श्रीगुरु द्विजहिं उचारी, कहहु विप्र क्या शठता धारी ।
क्यों तू गृह तज वनमें आया, पुन कुशील सेवन चितचाया ॥
याका फल मिल अतिदुख तोकूं, मतकर कुकरम तोकू रोकूं ॥
पक्षी पिंजड़ा तज उड़ जावै, नहिं प्रवेश करने फिर आवै ॥

दोहा—पक्षीगण से हीन तूं, कुकरम कर न लजाय ।
तापस नाम धराय कें, विरथा ढोंग रचाय ॥
विषयदमन की शक्ति नहिं, केवल तापस नाम ।
महापातकी कृत करै, क्यों आया वनठाम ॥

नर्क निगोदन दुख न विसारहु, विषयनके फल दुःख चितारहु ।
यदि सुख होवै विषयन मांही, महांपुरुष फिर छोड़ैं नाहीं ॥
यातें सत्य मार्ग अब धारो, वीतराग को लेउ सहारो ।
रागद्वेष की ममता छांरो, सबसे ममता भाव सम्हारो ॥

दोहा—मोह राग रुप तजत ही, पावो अविचल धाम ।
पुन न रुलो चउरासि में, शिवथल होय विराम ॥
सुन द्विज चित संबोधकर, गुरु से दीक्षा लीन ।
सब विकलप को छांड़ कें द्विज हुआ आतम लवलीन ॥

द्विज पतिनी दृढ़ श्रद्धा धारी, आपरूप को आप सम्हारी ।
दुख का हेतु कुभाव विचारी, ताका फल भोगत संसारी ॥
पति अरु शिशु से नाता तोड़ा, आत्मस्वरूप से नाता जोड़ा ।
जन्मत ही मैं शिशु को त्यागूं, धारूं व्रत निजहित में लागूं ॥

दोहा—दशम मास में सुत हुआ, समय पाय शुध होय ।
सोचे इस संसार में, अब क्या कर्त्तव मोय ॥
निज आयु बल जियत सब, ता बिन जियै न जीय ।
अमर न कोउ संसार मॅह, बिछुड़त मिलन सदीव ॥

कर्म बद्ध फल भोगैं प्रानी, स्वयं करैं रक्षा वा हानी ।
यातें शिशु की यो ही जानें, मात पिता इक निमित कहानें ॥
यों लखि शिशु तज चली यहांते, आय गुराणी ढिगै वहां ते ।
आर्या के व्रत तत्क्षण धारी, सर्वपरिग्रह भार उतारी ॥

दोहा—आया शिशु के पुण्य तें, एक देव तत्काल ।
वाने शुभ लक्षण लखे, पुण्यवंत है बाल ॥
हो हर्षित लिय गोद में, उपजी दया विशाल ।
मनो पुण्य शिशुका कहत, तुमही होहु कृपाल ॥

शशिसम वृद्धी शिशुकी कीन्हो, सब विद्या को पढाय दीन्ही ।
चौ अनुयोग पढ़ाये याको दी नभगामिनि विद्या ताको ॥
सब विध समरथ याको कीन्हा, शिरपर कर धर आशिष दीन्हा ।
चिरजीवो तुम जग के मांहीं, तोमें त्रुटि रही कछु नाहीं ॥
दोहा—गया देव निज थानको, ये यौवनपन पाय ।
श्रावक के व्रत आदरें, क्षुल्लक भेष बनाय ॥
बाल ब्रह्मचारी अहो, देव शास्त्र गुरु भक्त
गान सदा करता रहै, धर्म माहिं आसक्त ॥
भेष बनाया क्षुल्लक जैसा, धर्माचरण नहीं था तैसा ।
गृह से विरकत चित था नाहिं, रमें नाहिं सत संयम मांही ॥
धर्मप्रीति कछु, कलहहु प्रीता, बिन वाचाल रहै ना रीता ।
वीन बजाव गाय मन चाया, याते नारद नाम कहाया ॥
दोहा—बड़े बड़े राजा नमें, करें अधिक सन्मान ।
आज्ञा भंग न कर सकें, रविसम तेज महान ॥
बाल ब्रह्मचारी इसे, नृपपत्नी दें धोक ।
जाय सकल रनवास में, नहिं थी कहुँ भी रोक ॥
द्वीप अढ़ाई विचरन हारे, वंदें मेरु जिनालय सारे ।
छण में महि पै छण नभ मांहीं, इकथल में कहुँ तिष्ठें नाहीं ॥
देव ऋषी कह सभी पुकारें, देवन सम ये महिमा धारें ।
इमि नारद की कही उत्पत्ति, छवि गुन देव शास्त्र गुरु भक्ति ॥

दोहा– गणधर ने श्रेणिक प्रती, नारद, वृत्त बखान।
सुनत सभा हर्षित हुई, वाणी सुधा समान ॥
जग मँह पुण्य प्रधानता, शिव मँह धर्म प्रधान।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, पावन पद निरवान ॥

॥ इति सप्तदशः परिच्छेदः समाप्तः ॥

❀ अथ मरुतनृप यज्ञविध्वंस वर्णन ❀

❀ वीर छन्द ❀

नारद नभ तें नीचे आके, लखा मरुत ने यज्ञ रचाय ।
पशू बंधे अति किलपत पाये, शीघ्र मरुत ने कहा सुनाय ॥
काहे नृप हिंसा आरम्भी, यासे दुर्गति के दुख पाव ।
आहूत पशु अतिदुख को पावें निजसम उनदुख क्यों न लखाव ॥

दोहा— तनक जरे तो तन विषें, अति पीड़ा उपजाय ।
होमों वाकी पीर तो, मुख से कही न जाय ॥
यातें हिंसायज्ञ तज, करहु धर्म का यज्ञ ।
जासे शिव सुर पद लहो, हो तुम नृपति गुणज्ञ ॥

सुनत मरुत ने अति रिष धारी, कहा वृथा तुम बात उचारी ।
प्रथमहिं वाद विप्र से कीजे, पीछे मोकों दूषण दीजे ॥
यज्ञ करें शिव सुर पद पावें, तूं दुर्गति का हेतु बतावें ।
याका निर्णय अब कर लेवो, पीछे तुम कछु दूषण देवो ॥

दोहा— नृप का रिसयुत वचन सुन, नारद द्विजहिं उचार ।
धर्म यज्ञ तज पापमय, मत कर पशुसंहार ॥
यज्ञ कहा सर्वज्ञ ने, हिंसा रंच न होय ।
दुख में टन को यज्ञ कर, सुख को चहै न कोय ॥

दुख देवे तें पाप कमावो, पुन दुर्गति के दुख को पावो।
यातें मानो वात हमारी, वीतराग सर्वज्ञ उचारी ॥
धर्म यज्ञ पूजा कहलावै, जासों प्राणी दुख ना पावै।
निज पर सुखी होन का कारण, ऐसा यज्ञ करो तुम धारण ॥

दोहा—विना प्रयोजन दुख लहै का किय पशु अपराध।
ताहि कहो पुन धर्म तुम, जीवन घनें विराध ॥
धर्म यज्ञ यातें करहु, स्व पर सुखी जो होय।
जव हम दुख को ना चहें, तो दुख चहै न कोय ॥

सुनत विप्र नारद के वैना, भ्रकुटि चढ़ी अरु फड़के नैना।
कहा मूढ़ तू क्या उचारै, राग विहीन धर्म विस्तारै ॥
राग विना सर्वज्ञा नाहीं, राग धरे वक्ता मन माहीं।
वेदन मँह प्रमाणता आई, अपौरुपेय अकृतिता पाई ॥

दोहा—वेद यज्ञ प्रामाण्य हो, स्वर्ग मोक्ष दातार।
होमित पशु दुख ना लहें, या विध वेद उचार ॥
यज्ञ त्रिजाती के लिये, आगम उचित वताय।
सविधि यज्ञ करके मनुज, फल अपूर्व उपजाय ॥

सृष्टि मांहि पशु रचे विधाता, होमे दोष न किंचित आता।
ईश्वर के ही यह मन भाया, होम करन को पशू वनाया ॥
तव हम क्यों ना प्रभुवच मानें, इसी वात को वेद वखानें।
मूरख को यदि नाहिं सुहावे, वासे मेरा क्या वश आवे ॥

दोहा—सुन नारद रिसयुत कहा, सृष्टि थी या नांहि ।
यदि हुती तव क्या रची, नहिं तो क्या जग मांहि ॥
रचने का कारण कहो, सुख दुख का क्या हेत ।
हो न सुखी तो दुख प्रथम, जासो या रच देत ॥

विना सृष्टि प्रभु रहा कहां पै तंह पर क्या अरु कौन वहां पै ।
इकले दुकले अधिक रहावें, वे सव प्रभु पन कैसे पावें ?
वे सदोप थे या निर्दोपी, थे निर्दोप सृष्टि के पोपी ।
या सदोप तो यह क्यों पाया, दोप नशावन सृष्टि रचाया ॥

दोहा—रची सृष्टि दुख मेटने, या निज पर दुख हेत ।
दुखी सुखी कैसे रचे, का विध सुख दुख देत ॥
क्यों जग जिय दुखिया रचे, क्या था इन अपराध ।
यदि नहिं कछु अपराध तो, काहे करत विराध ॥

निज घर कुंभकार घट साधै, कवहुं न चाहै कोइ विराधै ।
पुन क्या कारण ईश रचन जग के मांही दुखी सुखी वन ॥
याते झूंठी युक्ति वनावें, ईशरचन ऐसा वतलावै ।
स्वयँ होम पशु कह पर दोपी, प्रभू वेद की युक्ति पोपी ॥

दोहा—कहत वेद नहिं पुरुपकृत, विना पुरुप किम होय ।
स्वयं शव्द गुंफै नहीं रचना करता कोय ॥
स्वयं वेद नहिं अर्थ कह, पुरुप अर्थ वतलाय ।
याते झूंठी युक्ति कर, वेदहिं दोप लगाय ॥

करे कुभव स्वयं रच दीन्हें, वेद नाम धसु धराय लीन्हें ।
व्यर्थ जगत को तूं भरमावै, उपलनाव जिमि डूब डुबावे ॥
वीतराग सर्वज्ञ अदोषी, ताकूं कहता होय सदोषी ।
विना राग सर्वज्ञा नांही, व्याप्ति बनाय आप चितमांही ॥

दोहा—सर्व अर्थ लख इक समय, दीप प्रकाश समान ।
राग विना वाणी खिरै, तन युत केवल ज्ञान ॥
वीतराग सर्वज्ञ जो, हित उपदेशी भान ।
रागद्वेष बिन सर्व हित, करता सत्य बखान ॥

धर्मयज्ञ अब तुझे बताऊं, वर्तमान सुख होय अगाऊं ।
चिदानंद यह आतम कहावै, याको ही यजमान लखावै ॥
धर्मयज्ञ निज स्वरूप मांही, पर स्वरूप में मिलता नांही ।
होमकुण्ड 'संतोष' कहाया, सर्व परिग्रह हव्य कहाया ॥

दोहा— 'सत्य महाव्रत' यूप है, चंचल मन पशु जान ।
तप पावक प्रज्वलायकें, नाशै विषय कषान ॥
प्राणायाम सु शुक्ल, ध्यान आत्मसंलग्न ।
यही यज्ञ सुख को करत, होत कर्म सब भग्न ॥

दोहा—धर्मयज्ञ या विध करहु जो निज पर सुखदाय ।
यही कदाचि तूं कहै, देव तृप्त हो जाय ॥
यों कहना भी ना बने, सुर तो मांस न खांय ।
सुधा झरत सुर-कंठ से, तासों तृप्ति लहाय ॥

मांस भखन की लोलुपताई, रे द्विज तेरे हृदय समाई।
ईशहि वेदहिं दोप लगावे, स्वयँ न अपना कृत्य लखावै ॥
या विध नारद ने समझाया, पै याके चित एक न भाया।
उल्टी इन पर अतिरिष ठानी, मारन की मन मांहि समानी ॥

दोहा—नारद ज्ञानी अति प्रखर, दिपता सूर्य समान।
द्विज उत्तर नहिं दे सका, फणिसम अतिरिष ठान ॥
झट ही ओंठ चबायके, नारद के ढिग आय।
सब द्विज भेले होयकें, इनकूँ मारन धाय ॥

ज्यों मिल उलूक पर वायस धावें, त्यों सब द्विज मिल इनपैं आवें।
था नारद भी वीर अनूठा, स्वयं एकने सबको कूटा ॥
कइ को मुक्का मार गिराया, करके पाद प्रहार हटाया।
बहु आकुलता चित मँह छाई, कहुं निकसन की गैल न पाई ॥

दोहा—चाहे नभ से निकसनें, दाव लगन ना पाय।
संधि न कहुं से दिख पड़ै, अन्य न कोउ सहाय ॥
दूत दशानन का वहां, उसी समय पै आय।
लखि नारद की यों दशा उल्टा वापिस जाय ॥

दूत आयकें शीघ्र बताया, नारद ने अति सँकट पाया।
घिरे वहां पै द्विज मिल मारें, देंय न निकसन घेरा डारें ॥
यों दशमुख से दूत उचारी, सुनत दशानन अतिरिष धारी।
तुरत सुभट गण भेज वहां पै, आये नारद निकट जहां पै ॥

दोहा—ब्राह्मणदल को बांध के, नारद लिया छुड़ाय ।
वांधे द्विजगण वे सभी घेरें पशू रखाय ॥
बांधा नृप भी महत को, यज्ञथान किय ध्वस ।
कूटे सब ही द्विजन को हों अचेत उन हंस ॥

भूचर खेचर सब मिल मारें, कोउ न इन पर दया विचारें ।
सभी कहें ये हैं हत्यारे निरपराध पशुगण संहारे ॥
मार बंद हुई, सचेत पाये; दशमुख की अतिथुति उचाये ।
करुणाक्रंदन सब ने कीन्ही, छांड़हुँ नाथ प्रतिज्ञा लीन्ही ॥

दोहा—अब न करें यों यज्ञ को, सत्य कहें खगराय ।
होवे जीव विराधना, हम प्रत्यक्ष लखाय ॥
भई भूल हमरी घनी, करें प्रतिज्ञा आज ।
लोभ पाप को बाप लख, अब हम कीना त्याज ॥

दोहा—पुन नारद प्रति शीश नय, यों मृदु वचन उचार ।
आप सीख दीनी मुझे, डूबत लिया उबार ॥
यदि नहिं आते आप तो, मेरा काल अनन्त
जाता नर्क निगोद मँह, दुख का जहां न अन्त ॥

आप समान नहीं उपकारी, डूबत नैया पार उतारी ।
तुम प्रसाद खगपति भी आये, मेरा गेह पवित्र कराये ॥
कँहतक ऋषिवर तुव यशगाऊं, मन मँह फूला नांहि समाऊं ।
मिथ्याबुद्धि मिटाई मेरी, दुष्टन ने भरमाइ घनेरी ॥

दोहा—उपलनाव में बैठ कर, चाहा उतरूं पार ।
जाना हिंसा यज्ञ है, स्वर्ग मोक्ष दातार ॥
घनी भूल मैंने करी, क्षमो सभी ऋषिराज ।
अब न करें यों यज्ञ को, करें प्रतिज्ञा आज ॥

पुन रावण से मरुत उचारी, सुनहु नाथ इक विनय हमारी ।
कनकप्रभा मम सुता कुमारी, ताको परणहु हे उपकारी ॥
आज्ञा पाय सुता परिणाऊं, अपना ऋणवारिधि तर जाऊं ।
यों सुन दशमुख अति हरषाके, आज्ञा दीनी प्रमुदित ताके ॥
दोहा—कहा आप गुणगण सदन, सर्व योग्यता पाय ।
टाल सकूँ नहि तुम्र वचन, अहो राजपुर राय ॥
यों सुन के नृप महत ने, दी पुत्री परिणाय ।
समवयस्क ये दम्पति, सुख सों काल विताय ॥
उत्सव कीना पुर नर नारी, शोभा कीनी पुर की भारी ।
क्षणमँह अरि क्षण प्रेम प्रचारा, लीला करत जगत जन सारा ॥
सदा एकसी लीला नाहीं, क्षण में घटै बढ़त क्षण मांहीं ।
याते जग मँह रचै न ज्ञानी निजकी परिणति आप पिछानी ॥
दोहा—एक वर्ष बीतो जबै, हुई पुत्री सुखदाय ।
दर्शक जन का चित हरै, रूप सुगुण समुदाय ॥
सरस मिष्टफल युक्त जो, सो तरु सबहिं सुहात ।
तिय विवाह फल सुता सुत, जग चाहत दिन रात ॥

रावण महाशूर बलवन्ता, तीन खंड का धनी महंता।
मारग में नृप सन्मुख आकें होहि सुखी इव शीश झुकाकें॥
सबसे हुई प्रीति नित गाढ़ी, रावण सेना नित प्रति बाढ़ी।
दशमुख जँह जँह गमन सुकीन्हा, तँह तँह अति ही आदर लीन्हा॥
दोहा—कीर्ति दशों दिश विस्तरी, तीन खंड साम्राज।
धन्य कहें अरु उच्चरें, चिरजीवो महाराज॥
जग में महिमा पुन्य की, शिव में आतम स्वरूप।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, जो है नित चिद्रूप॥

॥ इति अष्टादशः परिच्छेदः समाप्तः ॥
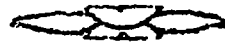
अथ रावण की पुत्री का मथुरा के मधुकुंवर से संबंध, मधु को त्रिशूलरत्न की प्राप्ति तथा मधु और असुरेन्द्र के भवों का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

यौवन पन को प्राप्त हुई जो मरुत सुता से जाय लहाय ।
तो लख दशमुख चिन्ता लीन्ही, काको पुत्री दें परिणाय ॥
तब मंत्रिन सों मंत्रसु कीन्हा, इन्द्र युद्ध को अवधि नांहि ।
पुत्री का सम्बन्ध विचारहु, कहो रुचै जो वर मन मांहि ॥

दोहा—किया प्रश्न मंत्रीन से, दशमुख चितावान ।
हरिवाहन मथुरा नृपति बैठे थे तिहिं थान ॥
दशमुख को चिंतित लखा, निजसुत लिया बुलाय ।
रूप सुगुण युत मधुकुंवर, दशमुख के ढिग आय ॥

दशमुखने जब मधु को देखा, सुतायोग्य वर याको लेखा ।
पुन मन मॅह या भांति विचारा, है यह मथुरानृपति दुलारा ॥
रूप शौर्य सब गुण सम्पन्ना, कहि सबसे ह्वै अधिक प्रसन्ना ।
सुनो मंत्रिगण बात हमारी, पूर्ण हुई आस वर तिहारी ॥

दोहा—मथुरापति का यह कुंवर, है कन्या अनुकूल ।
रूप शील शुभगुण सदन, सुरपति दिया त्रिशूल ॥

सुर सेवितत्रिशूल यह, शस्त्र अमोघ कहाय।
हनत नियम से शत्रु को, कभी विफल ना जाय॥
करत सदा से पितु की सेवा, आज्ञाकारी सुत स्वयमेवा।
पिता शूर गुणवंत नरेशा विनयवंत निर्भय मथुरेशा॥
तसु सुत यो वर उत्तम जानो, पुत्री योग्य सुभंग वर मानो।
सुनत सबहि हिय हर्ष लहाया, सुता योग्य वर उत्तम पाया॥

दोहा—सबकी सम्मति पायके दी पुत्री परिणाय।
रत्न ग्राम गय हय सभी, दिया दायजा राय॥
नहिं वर्णन तसु कर सकत, का दशमुख ने दीन।
सुता दई सब कछु दिया, बरने सब कुछ लीन॥

याही सुता की रीति कहाई, निज को देवें लाय पराई।
उदर मांहि से उपजत दोई, होवैं पुत्री या सुत सोई॥
सुत होवैं तो सब सुख मानें, कुल की बाढ़ चलेगी जानें।
सुता होय तौ कुल की हानी, परगृह जाने पर की मानी॥

दोहा— मधु कुंवर का पुण्य यों, त्रिशूल सुरपति दीन।
का हित लख ताको दिया, का महिमा लख लीन॥
यों गणधर से प्रश्न किय, श्रेणिक नृपति सुजान।
सुनत सभा हर्षित हुई, नृप की थुति सब ठान॥

यों सुन गणधर गिरा उचारी, मानो सुधा बरसती प्यारी।
सुनहु नृपति तसु भेद बतावें, देन त्रिशूल अमर पति आवैं॥

खण्ड धात की द्वीप मँझारा, ऐरावत तँह क्षेत्र उदारा।
शत द्वारों की पुरी सुहाई, कोट किला अरु सोहै खाई॥

दोहा—या नगरी का नृपति सुत, तसु सुमित्र है नाम।
मित्र प्रभव युत ज्ञान लह, चटशाला के धाम॥
नृप का चित्त विरक्त हो, दे सुमित्र को राज।
आप जाय दीक्षा गही, लैन मुक्ति साम्राज॥

जब सुमित्र ने नृप पद पाया, तब ही निज सम मित्र बनाया।
रङ्क नृपति का भेद न राखा, अटल मित्रताका फल चाखा॥
अश्व एक नगरी ढिग आया, देखा पुरजन सुन्दर काया।
आय नृपति से शीघ्र उचारा, सुन नृप चित ह्वै हर्ष अपारा॥

दोहा—आय नृपति द्रुत अश्वढिग, ताहि निरख हो मोद।
चाह भई पकड़ूं इसे, नृप हिय बढ़ा प्रमोद॥
यों विचार नरपति तुरत, चढ़ा अश्व पै जाय।
नाहिं कठिनता कछु लखी, जनु अपना ही आय॥

नृपति अश्व पै चढ़ सुख पाया, पुन ताको इत उते घुमाया।
कछुक देर हय इत उत घूमा, पुन भागा नृप तापै झूमा॥
आय अश्व इक बन के मांही, नृप गह शाखा लटका तांही।
महिं पै आय नृपति सुख लेखा, तहँ पै भील नृपति इक देखा।

दोहा—हो हर्षित दोनों मिले, तँह थी वाकी सैन।
दई बधाई आगमन, गया अश्व था लैन॥

भील नृपति अतिसुख लिया, जब सुमित्र को देख।
यो अभिलाषा पूर है, ऐसा मन मंह लेख॥

ज्यों कन्या त्यों वर भी पाया· मन मंह फूला नांहि समाया।
स्वागत इनका बहु विधि कीन्हा, लायगेह मंह अतिसुख दीन्हा॥
अति ही कीन्ही पाहुनताई, कछु सुमित्र चित समझ न आई।
जान अपरिचित स्वागत कीन्हा पुन हिलमिलकेअतिसुखदीन्हा॥

दोहा--मनहु अश्व को भेज कें, लीन्हा इतै बुलाय।
वह हु मोकों लायकें सीधा इत पैं आय॥
का हित सो नहिं लख परैं, यों चिन्तैं मन मांहि।
बहु अचरज मन मंह किया, समझ सका कछु नांहि॥

नृप की सुता हुती वनमाला, रूप सुगुण शुचि शील विशाला।
यौवनवंत लखी नृप ताको, नृपति विचारी देवें काको॥
चाहा सुमित्र को परिणाऊं, हय को भेज ताहि बुलवाऊं।
जब सुमित्र को नृपने देखा, कन्योचित वर सुन्दर लेखा॥

दोहा—वनमाला को लखि सुमित, जनु सुर कन्या आय।
रूप देख मोहित हुआ परिणय को मन चाय॥
लख सुमित्र को पित सुता, काम विवशता लीन।
मनो कामना सिद्धि लख, व्याह सुता का कीन॥

रूप सुगुण युत वह वनमाला, पाय सुमित चित हर्ष विशाला।
एक मास तक समय विताया, समय बीतता नांहि जनाया।

सुख की घड़ियां बीतत जातीं, जियको लखवे में नहिं आतीं ।
अतिसुख नृपने इस थल पाया, पुन गृहचिन्तन चित मँह आया ॥

दोहा—तब सुमित्र दलबलसहित, तिय वनमाला साथ ।
चला यहां तें मुदित हो, श्वसुर नमाया माथ ॥
मिष्टवचन या विधि कहा, कर्ज चुकाया मोर ।
सुता योग्य वर कब मिलै, थी चिन्ता अतिघोर ॥

कर संभाषण हर्षित होकें, चले यहाँ तें सैन्य सँजोकें ।
दांय आंख मँह फड़कन आई समझा कुछ शुभ होन जताई ॥
कर प्रस्थान मित्र को देखा, दांय नेत्र फड़कन फल लेखा ।
मित्र ढूंढ़ते नृप को आया, मिले परस्पर अतिसुख पाया ॥

दोहा—प्रभवमित्र ने जिस समय, लखि सुमित्र की नार ।
चितमँह अतिमोहित हुआ, बहु विह्वलता धार ॥
खान पान सब ही तजा, चित मँह हुआ उदास ।
मन्मथ ने मन मथन कर, मेंटा सकल हुलास ॥

यों सुमित्र लखि याहि उचारी क्यों उदासता तुमने धारी ।
कौन व्यथा तें व्यथित शरीरा, कहो मेट हों क्षण में पीरा ॥
प्रभव देख नृप आग्रह भारी नांहि छिपाकें सत्य उचारी ।
यद्यपि है यह अति लघुताई तऊ मित्र से थी मृदुताई ॥

दोहा—सुन सुमित्र यों मित्रसे, रंच न खेद लहाय ।
मित्र मनोरथ पूर्ति हित, निशि को तिया पठाय ॥

जग सुमित्र मिलना कठिन, ताकी पूरों आस ।
तिया न पूरे आश यदि, मारों असि ते तास ॥
निःसंकोच तिया से बोला, सकल रहस्य मित्र का खोला ।
पूरै तूं मित्तर की आशा, सहस ग्राम दूं गह विश्वासा ॥
आश न पूरो असि से मारों, रंच न मैं संकोच विचारों ।
यों कह निशि को तिया पठाई, पुन यों मन में सोचै राई ॥

दोहा—प्राण निछावर हों यदि, मित्र गहत है तोप ।
तो देऊं निज प्राण मैं, उपजाऊं संतोप ॥
यों विचार घर मित्र के, आया नृपति तुरंत ।
मो आज्ञा से हो विमुख, करों तिया का अन्त ॥

बैठा छिपकर मितुगृह आके, प्रगट न हो या भाति छि पके ।
ताहि समय नृपतिय इत आई, प्रभवमित्र ने ताहि लखाई ॥
आभूपण अति चमकें याके, दामिनि दमकी मनु इत आके ।
लखत प्रभव अति अचरज पाके, प्रश्न उचारो तत्क्षण ताके ॥

दोहा—कहो कौन तूं काह चह, काहे निशि मँह आय ।
सुन बनमाला ने कही, तो मितु मोय पठाय ॥
आइ आश को पूरनें, पति ने आज्ञा दीन ।
पति आज्ञा टारों नहीं, यदपि काम अकुलीन ॥

वचन सुने यों पतिव्रताके, अकंपश्रद्धा दृढव्रता के ।
कंपा प्रभवचित और शरीरा, ग्लानि सहित तन व्यापी पीरा ॥

तिया पठाई निशि को वानों, मो पापी की आश पुरानें ।
मो सम पापी जग में नाहीं, करि कुदृष्टी भगिनी मांही ॥

दोहा—पुनिबोला अब कौन विधि, मित्रहिं मुख दिखलाऊं ।
जीवन से मरना भला अब विलम्ब न लाऊं ॥
यों कह असि को काढ़ कें, करन चहा निज घात ।
ताहि समय सुमित्र ने, छीना असि तसु हात ॥

अरु सुमित्र ने गले लगाया, तुरत मित्र का घात बचाया ।
कहा मित्र अपघात विचारा, भव भव में दुख देने हारा ॥
नर्क निगोद माँहि ले जावै, कइ भव तक अल्पायु पावै ।
परम मित्र हो आप हमारे, यों सुमित्र ने वचन उचारे ॥

दोहा—पुन सोचा निज चितमँह, नहि है याका दोष ।
तिया न होती सुंदरी, क्यों विकार चित पोष ॥
यातें अनरथकारिणी,-जग मँह तिया महान ।
हो विकार याके निमित, सेंटू जग, जड़ ज्ञान ॥

अभी मित्रसे विछुड़न होता, परम मित्र मैं अपना खोता ।
धिकधिक है तिय जगको माया फँसकर काल अनादि गमाया ॥
अब भवदधि मॅझदार न डारूं, अपनी नैया पार उतारूं ।
यों विरक्तता नृप चित छाई, सर्व तजन चित मांहि समाई ॥

दोहा—भोर होत ही नृपतिने, गुरु से दीक्षा लीन ।
सर्व परिग्रह भार तज, हुये आत्मलवलीन ॥

सप्त तत्त्व व्यवहार में, निश्चय आत्मपवित्र ।
यों समयक की विधि गही, श्रद्धा ज्ञान चरित्र ॥
मरण समाधि अन्त में धारी, ईशानेन्द्र हुआ सुखकारी ।
तॅह ते चय सुत हो मथुरेशा, याको दीन्ही सुता खगेशा ॥
रूप सुगुण युत उत्तम काया, याका कुल हरिवंश कहाया ।
प्रभव मित्र भी दीक्षा धारी, ना हुइ सम्यक निधि सुखकारी ॥
दोहा–यासे जग में भ्रमण कर, पुन नरगति को पाय ।
पुनहु मुनिव्रत धारकें, नहिं सम्यक उपजाय ॥
द्रव्यलिंग धर तप तपा, अन्तिम किया निदान ।
हो असुरन का अधिपति, प्रगटा अवधीज्ञान ॥
अवधिज्ञान से तभी विचारा, पूर्व मित्र उपकार चितारा ।
कॅह उपजा है मित्र हमारा, अब मैं ताका करूं चुकारा ॥
यों विचार द्रुत मथुरा आया, मधु को सब वृत्तांत सुनाया ।
पुन सुर ने अति थुति उचारी, तो सम मेरा नहिं उपकारी ॥
दोहा–पुन मधु को तिरशूल दे, गया आपने थान ।
यों गणधर ने मधुकथन, किय त्रिशूल व्याख्यान ॥
सुन श्रेणिक अरु सबं सभा, लीना हर्ष अपार ।
'नायक' निज पद को चहत, अविनाशी अधिकार ॥

॥ इति एकोनविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

इन्द्र के लोकपाल नलकुंवर से रावण की विजय

❀ वीर छन्द ❀

मरुत यज्ञ विध्वंसक दशमुख, वर्ष अठारह किये वितीत ।
सुख सामग्री सब ही पाई, याको रंच ईति ना भीति ॥
पाके शरद सुहावन गंगा भूचर खेचर क्रीड़ा कीन ।
सैन्य उदधि सम सोहै याकी, अतिशय पुण्य प्रबलता लीन ॥
दोहा—निकट लखा कैलाश को, बालि वृत्तांत चितार ।
जिनभवनन को नमन कर, जय जय शब्द उचार ॥
देव शास्त्र गुरु धर्म की, अतिश्रद्धा चित लाय ।
या प्रसाद सब सुख मिलत, अविनाशी पद पाय ॥

अब दुलंघिपुर निकट लखाया, तास नृपति नलकुंवर कहाया ।
हरि ने लोकपाल पद दीन्हा, यहु नृपतिन का अधिपति कीन्हा ॥
सुभटन मुख नलकूंवर जानी, आया दशमुख ढिग रजधानी ।
इन्द्र निकट संदेश पठाया, दुलंघिपुर ढिग दशमुख आया ॥
दोहा—सुनत इन्द्र ने यों कहा, तुम विद्या बलवीर ।
अरु अमोघ आयुध धनी, रचो दुर्ग गम्भीर ॥
याविध कह हरितद्रुत चला, मेरु वंदना हेत ।
सर्व खगन का अधिपती, रंच न भय चित लेत ॥

महामान याके चित मांही, मो सम दूजा जग में नाहीं ।
मैं हूं इन्द्र महाबल धारी, को समतर जग करै हमारी ॥

पुण्य प्रबलता मैंने पाई, विजयपताका मैं फहराई।
का कर सकता मेरा कोई, सभय धारणा चित से खोई ॥

दोहा—कहै इन्द्र जब यों सुना, नलकूंवर कर मंत्र।
विद्या से यों कोट द्रुत, मायामय रच मंत्र ॥
सौ योजन ऊंचा दिपै, तीन गुना आयाम।
महा भयंकरता सहित, मनो मृत्यु को धाम ॥

मुदित होय इत दशमुख आया, रचा कोट सुन बहु अकुलाया।
सेनापति को आज्ञा दीन्ही, देख आव का रचना कीन्ही ॥
आज्ञा पाके दलपति आया, कोट लखत ही अतिभय खाया।
आय प्रभू से यों उच्चारी, गम्म न पड़ती नाथ हमारी ॥

दोहा—ऐसा कोट अगम्य है, मृत्युकरण भयदाय।
सर्प उगलते विष महा, अग्निज्वाल वरसाय ॥
इक योजन तक का मनुज खेंच लेत है मंत्र।
अस्त्र शस्त्र याविध लगै, करत तुरन्त ही अन्त ॥

नलकूंवर की तिय उपरम्भा, रूपवती ज्यों शुचि या रम्भा।
सुन दुलंघपुर आय दशानन, फूल गया चित अरु तसु आनन ॥
पूर्वें सुन राखा चित माहीं, या सम दूजा नर है नाहीं।
वली सुगुण छवि की वलिहारी, सो रावण ढिग आय हमारी ॥

दोहा—पहिले से अभिलाष थी, लख चित वाढ़ी चाय।
जिमि ईंधन के योग तें, अग्निज्वाल वढ़ जाय ॥

काम अग्नि प्रजलित हृदय, छण में कर बेकाम ।
सुध बुध विसरे अरु सभी, खान पान धन धाम ॥

निशा समय सखि से उच्चारी, प्राणन से प्रिय सखी हमारी ।
नहिं कछु अन्तर तुझ मुझ मांहीं, प्रेमपात्र दूजा मम नाहीं ॥
याते चित की बात उचारूं, यदि तू कह मैं पूरा पारूं ।
तुझे छांड़ मैं काह वताऊं, अपना दुख सुख जाहि सुनाऊं ॥

दोहा—सुन सखि यों स्वामिन वयन, दीन हुई नहिं चैन ।
यातें या विध उचरती, सुख प्राप्ति के बैन ॥
तबसखि अतिविस्मय लही, कही कहो क्या चाय ।
कौन कठिन है काम वह जासें तूं अकुलाय ॥

किस आशा ने तुझे सताई, जासें दीनपना यों पाई ।
सुनतइ पूरूं आश तिहारी, चाहै होवै मृत्यु हमारी ॥
एक मात्र तूं स्वामिनि मेरी, आशा पूरों मैं तुव चेरी ।
याविध से बहु धीर बँधाई, कहने का यह साहस पाई ॥

दोहा—धिक धिक ऐसे निंद्यच, कहत लाज ना आय ।
जानत अपयश होय तउ, चित नहिं धीर धराय ॥
धिक विकारता जिय लहत, मोह कर्म संयोग ।
संसारिन को हो सदा, यह विकार का रोग ॥

जब विवेक को जिय उपजावे, तब विकार को भिन्न लखावे ।
भेद ज्ञान उपजत जिय मांही, तब विकार जड़ रहती नाही ॥

निज स्वरूप को आप लखाये, नहिं विकारको जिय उपजाये ।
समय पायके कर्म नशावे, आप अभग्पद अपना पावे ॥

दोहा–उपरम्भा सखि सों कहि, सुनहु सखी मम आश ।
रावण लोक प्रसिद्ध है, सुन्दर विद्या–राश ॥
बालकाल से चाहती, मैं ताका संयोग ।
नहिं संगम अब तक मिला, कर्मन कीन वियोग ॥

यद्यपि कर्म निंद्य मैं जानूं, अरु दुर्गति का कारण मानूं ।
तदपि मोय अतिकाम सतावै मो पैं व्यथा सही ना जावैं ॥
याते तूं अब ता ढिग जाके, हरो पीर मम ताहि मिलाके ।
तो सहाय तसु संगम पाऊं, नहिं तो अपने प्राण गमाऊं ॥

दोहा–यों कह वह चरणन गिरी, लिया सखी ने थाम ।
कही नांहि चिन्ता करो, शीघ्र करो तुअ काम ॥
यों कह द्रुत दूती चली, श्याम वस्त्र तन ढांक ।
रावण थल पहुँची तुरत, नभ से तसु दल नांक ॥

जबहिं निकट रावण के आई, द्वारपाल से खबर पठाई ।
आज्ञा पाय ढिग ये आकें, बोली अपना शीश झुकाकें ॥
सुनहु नाथ सब लोक मँझारा, फैला अनुपम विरद तिहारा ।
कल्पवृक्ष सम पुरत आशा, कोय न अब तक पाय निराशा ॥

दोहा–याविध अति विस्तरि रही, कीरति दशदिश मांहि ।
श्रीमान दरबार मॅह, कछू कमी है नांहि ॥

यासे कहुँ एकान्त में, अपने मन का भाव ।
यों सुन रावण ने तुरत, दी आज्ञा सब जाव ॥

तब दशमुख से सखी उचारी, मम स्वामिन कूं आश तिहारी ।
बाल्यकाल से नेह लगाई, ना संगम को अब तक पाई ॥
सुनी ढिगे अब आय हमारे, याते भेजी निकट तिहारे ।
आशा पूर्ण करो अब वाकी, जलविन मीन तड़फि तिमिताकी ॥
दोहा—यों सखि के सुन कर्ण मँह, निज कर लिये लगाय ।

दृष्टि सँकोच सिर धुना, न्यायी दशमुख राय ॥
पुन कहिये तूं क्या कहै, महानिंद्य यह काम ।
पापहेतु पुन देत दुख, नर्क निगोदन धाम ॥

दुहू लोक को काम विगारै, या भव परभव के सुख टारै ।
रिद्धि सिद्धि विद्या भी नाशै, नशे सुयश अपयश परकाशे ॥
याते विधवा ब्याही नारी, साध्वी वैश्या और कुमारी ।
इनसे बचे रहे प्रभुताई, तुझे कहत यों लाज न आई ॥
दोहा—सुना विभीषण ने सकल भ्राता सखि संवाद ।
कोट नाशिनी विधि मिलै, सखि से स्वारथ साध ॥
यों विचार झट भ्रात को, बुला विभीषण लेत ।
कहा कर्ण मँह आप क्यों, रूखा उत्तर देत ॥
राजनीति को आप विचारो, ता मन की कह काज सुधारो ।
कभी मृषा को भी नृप पोषें, ताहि उचित लखकैं निरदोषें ॥

यातें बात हमारी मानों, काम बनाओ जैसे जानो।
कोट नशे विद्या हथियावो, याकी स्वामिनि को बुलवावो॥

दोहा—सुन दशमुख हू मुदित हो, सखि के ढिग मँह आय।
विहँस वचन वासे कहा, आई आश लगाय॥
जाओ स्वामिनि लाउ तुम, वाकी पूरों आश।
मैंने अब तक काहु को, कीना नांहि निराश।

यों सुन सखि प्रसन्न ह्वै भारी, जाके वासों वेग उचारी।
चलो अभी तुम पूरो आशा, वाहु समझली नशी निराशा॥
यातें वेग सखी युत आई रावण से अति आदर पाई।
पुन प्रस्ताव आश का कीन्हा, सुन दशमुख ये उत्तर दीन्हा॥

दोहा—मारग मँह का मिलन हो, होवे पुर के मांहि।
प्रथम देहु विद्या हमें, कोट रहै यह नांहि॥
हम तुम मन जब एक है का मग का पुर होय।
मो चिन्ता मेंटो प्रथम, अटक रहै ना कोय॥

सुन के स्वीकृति अतिसुख पाई, मन मँह फूली नांहि समाई।
समझा नांहि कपट है याको, समझी मेंटै कामव्यथा को।
कोटनाशिनी विद्या दीन्हो, झट अपनाकें रावण लीन्हो।
दिव्यशस्त्र भी दीन्हें लाके, सुरसेवित अमोघ बतलाकें॥

दोहा—अतिप्रसन्न दशमुख हुआ, फूला नांहि समाय।
धन्य विभीषण भ्रात तुम, उत्तम युक्ति सुझाय॥

ना तुम युक्ति सुझावते, लाभ कहां से होत ।
यों कह करी सराहना, उमड़ा सुख का स्रोत ॥
प्रात होत विद्या अजमाकें, मायानिर्मित कोट नशाकें ।
चला सैन्य ले दशमुख राया मन मंह फूला नांहिं समाया ॥
नलकूंवर ने कोट न देखा, कोपित हो अतिविस्मय लेखा ।
पुन दल ले झट रण को धाया, चितमँह भयको रंच न लाया ॥
दोहा– यद्यपि दशमुख है प्रबल, सेना उदधि समान ।
नांहि विजय की आश तउ, रण को किय प्रस्थान ॥
वीर समर से नहिं डरत, नमक स्वामिका खांय ।
निज स्वामी पै आय पुन, किम मुखको दिखलांय ॥
भिड़ी परस्पर दोनों सेना, भृकुटी चढ़ी अरु फड़के नैना ।
युद्ध मचा अति हा घनघोरा, लड़ें परस्पर ओर न छोरा ॥
गय हय अरु रथ के असवारे, दुहुन पक्ष ने अति संहारे ।
जीत हार को कोउ न जानी, को जीतेगो काकी हानी ॥
दोहा–बहुत समय तक उभयदिश मचा युद्ध घमसान ।
भिड़े विभीषण नलकुंवर, दोनों सन्मुख आन ॥
मानों केशरि ही लड़ें, गर्जें रण मँह भूर ।
अरुणनयन भृकुटि चढ़ी, करे भूमि चकचूर ॥
तभी विभीषण ने रथ तोड़ा, पुन बाणों को झट ही छोड़ा ।
या विधि मारामार मचाई, टिकने शक्ति न अरि ने पाई ॥

वली विभीषण वीर अपारा। पुन पुन करता शस्त्रप्रहारा।
चली न ताकी याके आगे। मनु रवि सन्मुख जुगनू लागे॥

दोहा—नलकूंवर निर्बल हुआ, पकड़ विभीषण लीन।
जीत विभीषण की हुई। सबने जय जय कीन॥
नलकूंवर की मुखप्रभा, हारे पै कुम्हलाय।
मेघपटल छादित यथा। शशि छवि मन्द दिखाय॥

कामपिशाच महा दुखदाई, यानें पति की हार कराई।
कामविवश नहिं विद्या देती, पतिबंधन में कभी न लेती॥
कामपूर्ति की आशा धारी, पतिकी क्षति को नांहि विचारी।
दशमुख आवै पुर के मांही। आश पूर्ण हो आशा नांही॥

दोहा—केवल विषयहिं सेयवै, यह अनर्थ कर दीन।
अंग भंग हो इन्द्र का। महनृप बंधन लीन॥
ना चिन्ती या काम है, अपयश का भंडार।
दोऊ लोक तसु बिगड़ते, जिय के जगत मंझार॥

पूर्व दशानन मोय उचारा। इच्छा पूरों नगर मॅंझारा।
आशा वश रावण ढिग आई, मन मँह फूली नांहि समाई॥
धिक नारी की मोह कहानी, नहिं देखे हुइ दुस्सह हानी।
नयन अंध विषयान्ध विशेषा, होवै कृष्ण अमावस जैसा॥

दोहा—रावण को एकान्त मँह, उपरम्भा उच्चार।
काम आश पूरी करो, आये नगर मँझार॥

तब हँस कर दशमुख कहा, प्रथम सुनहु मम वैन ।
नर नारी में भेद क्या, क्यों सेवहु दुख दैन ॥
विद्यादात्री गुरुनि हमारी, मात समान गती तूं धारी ।
क्यों अपयश के बोले बैना, काम विवश हो मूंदै नैना ॥
जन्मी व्याही है सकुलीना, क्यों चाहै कर्त्तव्य विहीना ।
जासों बिगड़े शाख तिहारी अरु मम अपयश होवै भारी ॥
दोहा– पाप छिपाये ना छिपै, कोटिक करो उपाय ।
यातें तुमहु विचार ल्यो, विवेक चित मँह लाव ॥
मेह वरसते तृण जरै, वाड़ि खेत को खाय ।
नृपति करै अन्याय तौ, न्याय कौन पै जाय ॥

या विध होगी दशा हमारी, अरु विगड़ेगी शाख तिहारी ।
या भव की तो जा गति मानी, परगति की भगवन ने जानी ॥
नृप को जैसा पंथ सुहावे, ता पथ को जनता अपनावे ।
भृष्टकर्म जो पति सुन लेहै कबहुं न तोकू पुन अपनैहै ॥

दोहा--मर्यादा के रचवे, विषयपुष्टि की लाज ।
नर नारी सम्बन्ध हो, नहिं तो होय अकाज ॥
परम्परा की आन कूं, करते जोहु उलंघ ।
दोऊ भव में हों दुखी, कर दुर्गति का बन्ध ॥
पशु अरु नर में ये ही मानों, विषयतृप्ति में भेद न जानो ।
पशु के नाहीं कछू विवेका, काम वेदना मेंटे एका ॥

मातु सुता भगिनी न विचारै, करै अनर्थहु नांहि सुधारे ।
मनुज मांहि यदि विवेक नाहिं कौन फरक पशु अरु नर माही ॥
दोहा—पशु मँह यदपि विवेक नहिं मनुज विवेक लहाय ।
दशमुख यों संबोध कै, चाहि तोष उपजाय ॥
यों सुन शिक्षा के वचन, लज्जित हुई तत्काल ।
सोचै बात अनर्थ कहि, यामें दिखै न चाल ॥
धिक-धिक अति धिक बुद्धी मेरी सांप छछूंदर सम गति हेरी ।
यदि विद्या को मैं नहिं देती, बंधन मँह पति काहे लेता ॥
यों चिंतत अति ही अकुलाई, ऊर्ध्वसांस ली फेर जँभाई ।
मानों हुई गाज की मारी, लखि दशमुख ने पुन उच्चारी ॥
दोहा—आदरपात्री तूं भई, पति हू आदर पात्र ।
अब मैं ताकूं छोड़तौं, सुखी होय तो गात्र ॥
भगिनीसम तोकों लखों, थान आपने जाव ।
याविध कह कीन्ही विदा, हियें तोष उपजाव ॥
गई तभी छोड़ा पति याका, हो हर्षित किय आदर ताका ।
ताने रावण को शिर नाया, निज अपराध क्षमा करवाया ॥
रावण बहुत प्रशंसा कीन्ही धन्य वीरता तूने लीन्ही ।
मो दल देख न शंका लाया रण करने को सन्मुख आया ॥
दोहा—भक्ति परायण स्वामि को, करी न कर्तव चूक ।
तो सम हैं विरले जगत कर्तव मांहि अचूक ॥

यावित्र संतोषित किया, मिष्ट वचन उच्चार ।
वह भी संतोषित हुआ, कीन्ही थुती अपार ॥
अहो दशानन कीरत धारी, जग में महिमा फैली भारी ।
शूर शिरोमणि तेज अखण्डा, दिपत सूर्य सम तेज प्रचण्डा ॥
इन्द्र समान आपको माना, जस वह ता सम तुमको जाना ।
यावित्र यानें थुती उचारी, शिर नय आदर दीन्हा भारी ॥
दोहा—उपरंभा भी पति विषैं, रखै पूर्ववत भाव ।
रावण ने सत्पथ दिखा मिटा दिया दुरभाव ॥
नलकूंवर जाना नहीं, तिय चित का व्यभिचार ।
पूर्वसदृश यातें रमैं भेदभाव नहिं धार ॥
रावण की यह रीति कहाई, निज आज्ञा सबसे मनवाई ।
माने नांहि पराभव कीन्हा, ताहि छांड़ पुन आदर दीन्हा ॥
यातें बाढ़ी अति प्रभुताई, याको नीति सबै सुखदाई ।
सैन्य उदधि सम हुई अपारी, गय हय प्यादन रथ असवारी ॥
दोहा—पुण्य उदय तें सुख मिलै, पाप उदय तें हान ।
जग की ऐसी रीति है, को कर सकै बखान ॥
जग सुख क्षण भंगुर लखत, ज्ञानी निज चित मांहि ।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, क्षण भंगुर यो नांहि ॥

॥ इति विंशतितमः परिच्छेदः समाप्त ॥

———

अथ इन्द्र और रावण का घोर युद्ध तथा रावण की विजय का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

आया निकट दशानन दलयुत, यों सुन हरि कोप्या तत्काल ।
द्रुत दलपति को आज्ञा दीन्ही, सेना रण को शीघ्र संभाल ॥
यों कह इन्द्र पिता ढिग आया, रावण का वृत्तांत बताय ।
उमड़ रहा अतिकोप हृदय मँह मानसहित वच एम उचाय ॥

दोहा—कहो तात कर्त्तव्य को, प्रबल अरी चढ़ आय ।
भूल प्रथम ही हो गई, उपजत नाहिं नशाय ॥
कांटा उगतइ ना नशै, यदि कठोर हो जात ।
चुभतई अति पीड़ा करै, दाहै उर दिन रात ॥

रोग होत हो मेंट न लेवें जड़ जमाय तो अति दुख देवे ।
याविध अरि को देय न मोका बढ़ै हरै तब मान बड़ों का ॥
याते मैं बहु वार विचारा, कर दूं रावण का संहारा ।
आप निषेध्या तब ही मोकूं, नांहीं सोचा काहे रोकूं ॥

दोहा—अब भी कछु नाहीं गया, स्वयं आय वह मूढ़ ।
करों च्चार अब दल सहित, स्वयं उदधि मँह बूढ़ ॥
जिमि अज्ञानी भव उदधि, बूड़त दुःख लहाय ।
तासम यह अब नशन को, मेरे ढिग मँह आय ॥

सुना तात ने इन्द्र कहा यों, मानशिखर पै स्वयं चढ़ा ज्यों ।
पुन का मानें बात हमारी, मो ढिग आकें वृथा उचारी ॥
स्वतः आप निर्णय उच्चारा, पुन पूंछै कर्त्तव्य हमारा ।
धिक संसारी जिय की बातें, ज्ञानी कभी रमैं नहिं यातें ॥

दोहा—उदासीन श्रावक हुते इन्द्रतात गुणवन्त ।
न्याय नीति ज्ञाता समथ, लखं परिस्थिति सन्त ॥
सोचैं हरि से का कहें, समर तजो धर धीर ।
यह मानत है आप को, ऋद्धि सिद्धि बल वीर ॥

नहिं लख वह हू अति प्रचण्डा, सैन्य सिन्धुसम अतिबलचन्डा ।
जीत वैश्रवण यमहु पछारा, नलकूंवर भी यासे हारा ॥
अरु तानें कैलाश कँपाया, महत यज्ञ विध्वंस कराया ।
साम दंड हो दंडरु भेदा, भेद उछेद शत्रु बल छेदा ॥

दोहा—कबहुं साम कहुँ दाम से कहुँ दण्ड अरु भेद ।
कहुं विग्रह से करत हैं, नृप जग अरि का छेंद ॥
एक चाल से जे चलत, बिना अपेक्षावाद ।
ते मिथ्याती जग विषं, रुलते काल अनाद ॥

पै यह मोसे पूँछन आया, कह दउँ जो कर्त्तव्य कहाया ।
माने चाहे ये ना मानें पाछे याकी येही जानें ॥
कहा इन्द्र ने सुन अब मेरा, बात जँचे नहिं सोकूं तेरी ।
रण करवे सहसा न उचारो, मंत्रिन से कर्त्तव्य विचारो ॥

दोहा—यदि राय मेरी चहै, तो सुन मेरी राय ।
विग्रह करना उचित नहि, संधी उचित दिखाय ॥
वा तें कर सम्बन्ध को, निज पुत्री परिणाव ।
एकछत्र निज राज कर, सुख सों काल बिताव ।
नांहि नियम पुरुषार्थ सुधारै, सब थल मांहि सुधार बिगारै ।
यदि दैव होवै प्रतिकूला, तभी विफल हो ना अनुकूला ॥
यथा कृषक ने अन्न सु बोया मेह न बरसै निज का खोया ।
शिष्यसमूह पढ़ें चटशाला कोइ हीन हो कोइ विशाला ॥
दोहा—बिन विवेक पुरुषार्थ भी, करै ना कारज सिद्ध ।
अतः कार्य की सिद्धि में, हेतु विवेक प्रसिद्ध ॥
राजनीति अख्यात यों, शत्रु सबल जब होय ।
मेल करें हित सों मिलें, तामें दोष न कोय ॥

नीति न्याय की बात उचारी, इन्द्र सुनत ही कोप्या भारी ।
ओंठ डसे अरु भृकुटि चढ़ाई, स्वेदबूंद सब तन मँह छाई ॥
कुपित भुजंग होय जमि काला, इन्द्र हुआ तासम गति वाला ।
चित से विनय विवेक विसारा, तात प्रती यों वयन उचारा ॥

दोहा—न्यायरु नीति विवेक सब, भय सारूं ही पाय ।
ज्यों-ज्यों वह अधिकहि बढ़ै, त्यों-त्यों गुण नश जाय ॥
मैं आया था आप ढ़िग देहो उचित सलाह ।
अरि कों उल्टो कहत हो, देवो सुता विवाह ॥

अरु संधी की राय उचारी, कौन कमी तुम लखी हमारी ।
मरुचरण मँह रवि शशि लागे, झुकै कौन विध इनके आगे ॥
इन्द्र होय मैं संधी कीन्ही, गत पौरुष कायरता लीन्ही ।
तामें बल तुम अधिक बखानो, मोहे काहे कमती मानो ॥

दोहा—दैव तास अनुकूल तो, मेरा क्यों प्रतिकूल ।
सबल ताहि फिर क्यों लखो, व्यर्थ समझ की भूल ॥
यदि कह वानें बहु अरि जीते रण के मांहि ।
केशरि मृगगण को हनें, अष्टापद को नांहि ॥

यदि कह अतिबुध ताके मांहीं, तदि मैं अधिक हीन हूं नांहीं ।
यदि कहो वह अति बलधारा, तदि मोमें क्यों हीन विचारा ॥
सिंह श्याल दोउ बनके बासी, बल मँह होवें ना इकरासी ।
बिन विवेक यों आप उचारा, चित में नांहीं नेक विचारा ॥

दोहा—यों सार्व कह तात से, चला शीघ्र ही इन्द्र ।
गहो न शिक्षा वात की, मानी अतुल खगेन्द्र ॥
आयुधशाला मँह पहुंच, बांटे रण हथियार ।
वाहनयुत सेना सजी, समर हेतु तैयार ॥

पुन द्रुत रण के बजे नगाड़े, पैदल सेना चली अगाड़े ।
चाले गय हय रथ असवारे, अस्त्र शस्त्र बहु भांति सम्हारे ॥
सामंतन का पार न दीसै, गज गर्जें अरु घोटक हींसै ।
धनुष बाण के बजे टङ्कोरा, टीड़ी दल उमड़ा चहुं ओरा ॥

दोहा—वन्दीजन बोलें विरद, चाले वीर महान ।
देवजाति के सर्व खग, द्रुत आये रण थान ॥
दोउ सैन्य आके भिड़ीं, करें युद्ध घनघोर ।
असि बरछी अरु सैल से, मार मची चहुँ ओर ॥

दुहु दल मारामार मँचाई, निज रचों लें जान पराई ।
हुआ परस्पर भारी दंगल, धूल उड़त ही ढक रवि मंडल ॥
महा अंधेरा दल मँह छाया वीरन मारामार मँचाया ।
एक गिरै झट दूजा आवै वह हू वाको मार गिरावै ॥

दोहा—राक्षस सेना कछु हटी, तब राक्षस सामन्त ।
हो सन्मुख आगे बढ़े, करने रिपु का अन्त ॥
ओंठ चबावें भ्रू चढीं, अरुण भये युग नैन ।
इनकी मारा मार सों, हटी देवगण सैन ॥

बढ़े देवगण बहु सामन्ता, करने राक्षस दल का अन्ता ।
महायुद्ध घनघोर मँचाया, राक्षसदल को मार भगाया ॥
शिथिल हुये राक्षसदल वीरा, गिरें धड़ाधड़ लगतई तीरा ।
तदपि न चित से धीरज छोड़ें, प्राणाहुति दे पुनि रण मांड़ें ॥

दोहा—यों लखि राक्षस पक्ष का, प्रश्नकीर्ति रणशूर ।
आया सन्मुख युद्ध को, मार गिराये भूर ॥
देवसैन्य के बहु बली, याने दिये पछाड़ ।
मानो केहरि मृगन को, मारै फेर दहाड़ ॥

शिथिल सैन्य को जब हरि देखा, महाबली तब याको लेखा।
आप चलन को यों ही कीन्हा, त्योंही रोक पुत्र ने लीन्हा॥
मेरे होत आप क्यों जावें, मोकों आज्ञा आप लगावें।
जाके क्षण में अरि को मारों अपना बदला शीघ्र निकारों॥
दोहा—आज्ञा पाके इन्द्र सुत, प्रश्नकीर्ति ढिग आय।
मानो दोनों केहरी मारा मार मँचाय॥
बहुत समय तक युद्ध हो, तब जयन्त रिष धार।
प्रश्नकीर्ति को शस्त्र से, दीन्हा तुरत पछार॥
महाशत्रु का क्षय कर दीन्हा, मोद जयंत चित्त मँह लीन्हा।
शिथिल हुये राक्षस दल वीरा, तब श्रीमालि बँधाई धीरा॥
माल्यवान का पुत्र प्रचण्डा, महाबली रणशूर अखण्डा।
रावण का काका कहलाया, आके मारामार मँचाया॥
दोहा—श्रीमाली ही एक ने, देवन के बहु वीर।
मार गिराये क्षणक में, पहुंचाये यम तीर॥
तभी इन्द्रसुत वेग ही, याके सन्मुख आय।
दोनों गर्जत सिंह सम, मारामार मँचाय॥
बहुत समय तक लड़ते दोई, रंचमात्र भी हटै न कोई।
याविध रण मँह सिंह दहाड़े, ताविध दोई पृथ्वी ताड़ें॥
तब श्रीमाली दै हुँकारा, रथ जयंत का तुरत विदारा।
गिरा भूमि पर मूर्छा खाई, पुन सचेत हो मार मँचाई॥

दोहा—भिंडमाल तुरतई दई, श्रीमाली को मार ।
रथ टूटा मूर्छित हुआ, पुनः सचेती धार ॥
आये युद्धस्थल दोऊ युद्ध करन को आज ॥
भिड़े परस्पर अति बली, यथा मत्त गजराज ।

बहुत समय तक जब ये दोई, भिड़े परस्पर हटै न कोई ।
तब जयंत ने गदा चलाई, रुधिर धार ता मुख से आई ॥
श्रीमाली परलोक सिधारा, लख जयंत सुख लहा अपारा ।
संखनाद झट रण मँह कीन्हा, राक्षसदल ने बहुभय लीन्हा ॥
दोहा—श्रीमाली का मरण लख, शंखानद सुन भूर ।
राक्षससैना हट गई, भइ दृढ़ता सब दूर ॥
इन्द्रजीत यों देख कर धीर बंधाई सैन ।
ओंठ डसे भृकुटी चढ़ी, अरुण भये युग नैन ॥

झट जयंत के सन्मुख धाया आके मारामार मॅचाया
बखतर तोड़रु, जर्जर कीन्हा, रुधिरधार अति बहाय दीन्हा ।
लखा इन्द्र ने अति रिपयाया, इन्द्रजीत के सन्मुख आया
रावण सारथि ने यों देखा, इन्द्रजीत ना समरथ लेखा ।
दोहा—बेग दशानन से कहा, इन्द्रजीत सुकुमार ।
इन्द्र साथ समरथ नहीं, जूझन करने वार ॥
वह आवत तसु सन्मुखें, महाकोप चित धार ।
लोकपाल संयुक्त वह, ऐरावत असवार ॥

सुनत दशानन हू रिपुघाया, पूर्व मालि सुत चिंतन लाया ।
प्रसनकीर्ति श्रीमाली सांई, अभी मरे भट मेरे दोई ॥
यों चिंतन कर अतिरिपु धारी भई भयानक आकृति सारी ।
ओंठ चबाये भृकुटि चढ़ाई सारथी से बोल खगराई ॥
दोहा—वेग चढ़ावो आपना रथ को ढील न देहु ।
देखत हों मैं इन्द्र को, इन्द्रपणा अब लेहु ॥
वृथा मूर्ख मानी मनुज, निज को इन्दर जान ।
स्वप्नों कैसी सम्पदा लहत मूर्ख सुख मान ॥
राक्षसदल के सूर महन्ता, करें निपुणको हन कर अन्ता ।
रणभू मृतभू सम दिखलाये' रवि का तेज छिपा तम छाये ।
महारुधिर का स्रोत बहाया, लख न परै तँह अपुन पराया ।
चलें खडग बरछी अरु भाले, शस्त्र अनेक परस्पर वाले ॥

दोहा—पटपट दमन किण किणहु, छम छम त्रम त्रम होय ।
चट चट खट खट फट फट, आयुध ध्वनि तँह जोय ॥
गूंजै चहुँ दिशि, में घनी, मेघ गर्जना रूप ।
लड़ें परस्पर शस्त्र ले, रण मँह खगगणभूप ॥
प्यादों से प्यादन की सेना, लड़ें परस्पर धीर धरे ना ।
गजपति से गजपति 'ह सारे, घोटक से भिड़ घोटक वारे ॥
रथपति से रथपति असवारे लड़ें परस्पर मार पछारें ।
करें परस्पर वचन प्रहारा, शस्त्रसमान भिदे तन सारा ॥

दोहा—कोउ शत्रु को मार के पुन तसु होय निपात ।
हाथी घोड़े रथ पड़े, पशु नाहीं दिखलात ॥
जो पहिले रज थी उठी, गजमद से दब जाय ।
शस्त्रज्योति से नभ विर्णे, इन्द्रधनुष दिखलाय ॥

जँह तँह रुधिरहु रुधिर वहायें, रुण्ड मुण्ड अगणित उतरायें ।
छिदन भिदन का पार न आया वीर न शेष कोउ रह पाया ॥
अतिभीषण संग्राम मचावें वर्णन करत पार न पावें ।
क्षण क्षण बढ़ै अन्त न लीन्हा, तब रावण ने विचार कीन्हा ॥

दोहा—रिप है मोकों इन्द्र पै, है दल दीन अपार ।
वृथा हनों फल कहा लहों, कीना एम विचार ॥
मात तात रजवीर्य से, उपजी नर की काय ।
तऊ आप सुर इन्द्र कह, चढ़ा शिखर इतराय ॥

मानशिखर तें नीचे डारों, क्षण मँह ताका मान विदारों ।
गरुडनाम ज्यों काक धरावे ऐसे ये भी इन्द्र कहावे ॥
लोकहास्य का भय तेहि नाहीं, फूल रहा है निज मन माहीं
कर विडम्बना लोक रिझाया, नट कैसा ये स्वांग रचाया ।

दोहा—मारों या लेहों पकड़, ऐसा चिन्त्या राव ।
कहा सारथी से तुरत, अब रथ वेग हंकाव ॥
सारथी सुन स्वामी हुकुम रथ को वेग हकाय ।
इन्द्रनृपति के साम्हने, दिया शीघ्र पहुँचाय ॥

याको लख हरिदल थर्राया, प्राण लेन अब दशमुख आया ।
यातें प्राण लेय सब भागे, अहि जिमि भागें गरुडहिंआगे ॥
ठहरा ना या सन्मुख कोई, भागे सबही सुधबुध खोई ।
दशमुख तनबल क्या बतलावें, याविध से निज तन मँह पावें ॥

दोहा—अष्टम पदवीधर पुरुष, बलधर अपरम्पार ।
एक इन्द्र पुण्यी महा, सन्मुख टिकने हार ॥
जलप्रवाह जिमि थांभने, पर्वत समरथ होय ।
जिमि रावण जिमि इन्द्र है, शैल समुन्दर दोय ॥

खगपति गण के दोनों स्वामी, दोइ प्रतिष्ठित दोनों नामी ।
अब दोनों ये सन्मुख आये, भारी मारामार मँचाये ॥
मेहसमान बाण बरसावें, बरछी सैल कृपान चलावें ।
रावण ने शरमण्डप कीन्हा, क्षण मँह याविध बनाय दीन्हा ॥

दोहा— नारद नभ तें यों लखा, मँचा घोर संग्राम ।
ज्यों बाढ़ा त्यों-त्यों नचा, हो प्रसन्न अभिराम ॥
यों स्वभाव तसु कौतुकी, आर्त रौद्र धर ध्यान ।
धर्म ध्यान को भिड़ पड़ैं, ता क्षण लखै न-आन ॥

हरि ने याको असाध्य लेखा, शस्त्रप्रहार विफल जब देखा ।
अग्निबाण को तभी चलाया, रावणदल मँह अग्नि लगाया ॥
उठै चहूं दिशि अति ही ज्वाला, दुस्सह दुखकर अति विकराला ।
रावण का दल तड़ तड़ जारै, जलतइ औरहु अग्नि प्रचारै ।

दोहा—हुआ आकुलित दल सभी, देखा दशमुख राय ।
मेहबाण छांड़ा तुरत, जल अखंड बरसाय ॥
अग्निज्वाल तत्क्षण बुझी, रहा न नाम निशान ।
मनो अग्नि थी ही नहीं, है निर्मल रणथान ॥

यों लख इन्द्र विफल शर कीन्हा हुआ अनर्थक फल ना लीन्हा ।
झट ही तामसबाण चलाया, अरि के दल मँह अतितम छाया ॥
अंध भयो कछु दिखता नाहीं, ऐसी शक्ति या शर मांहीं ।
मानो कृष्ण अमावस आई, निशि ने घोर अन्ध फैलाई ॥

दोहा—याविध दशमुख लखत ही, बाणप्रकाश चलांय ।
तमविनाश क्षण में हुआ, प्रातः रविसम पाय ॥
जिनशासन प्रगटै जभी, मिथ्यातम हो नाश ।
हो प्रकाश ठहरे न तम, ता सम हो आभास ॥

दशमुख ने अहिबाण चलाया, हरि के दल पै अतिदुख ढाया ।
अतिव्याकुलता दल ने पाई, नागभयंकरता अति छाई ॥
सारे दल में गरल उगालें, फैली यथा अग्नि की ज्वालें ।
कर्मबद्ध जिय नित दुख पाये, व्याकुल भवदधि मांहिं रुलाये ॥

दोहा—याविध देखा इन्द्र जब, गरुड़बाण तत्काल ।
दिय चलाय ताहि घड़ी, शांत हुये सब व्याल ॥
व्यालन की बाधा मिटी, सुखी हुये दलजीव ।
मिथ्या अहि नश सुखितहो, सम्यक-वंत सदीव ॥

गरुड़वाण जब हरिका आया, तब दशमुख दल अति अकुलाया ।
दल को शर या भांति उड़ावै, मानो झूला वाण झुलावै ॥
यों रावण की सेना हाली, हरिदल विपति गरुड़ ने टाली ।
शुक्लध्यान ज्यों बंध विदारै, कर्मशक्ति को विफल उतारै ॥

दोहा—सुरसेवित ये वाण हैं सुर इनके आधीन ।
रिपु ढिग मँह ये शर पहुँच, होय विक्रियालीन ॥
प्रेषक के संकल्पसम, ये कर्त्तव्य दिखाय ।
कोइ बनत हैं मेहसम, कोइ नाग बन जांय ॥

कोइ गरुड़ आकार बनावें, रिपु का अहिशर शीघ्र नशावें ।
कोइ बनत हैं तम आकारा, कोइ करें परकाश अपारा ॥
प्रथम सर्वशर सदृश लखाये, चहुतई अरिपै अतिदुख ढाये ।
क्षण मँह प्रबलशक्ति दिखलावें, जो वर्षों में नहिं हो पावें ॥

दोहा— नागवाण को लख विफल, रावण पेलो पील ।
इन्द्र पील पै आ अड़ो, त्रिलोक मंडन डील ॥
इन्द्र थकाया निज करी, लड़ें दुहू धर गर्व ।
स्वर्ण सांकलें थीं पड़ीं, देख कॅपै खग सर्व ॥

लड़ें परस्पर दोनों पीला, दोनों ही दल देखें लीला ।
करें परस्पर दन्त प्रहारा, कभी करें पद से दुहू वारा ॥
सूंड सूंड से हुई भिड़न्ता मानों इक गज हैं चौदन्ता ।
यों ऐरावत त्रिलोक मंडन, चहें परस्पर अरिविध्वंसन ॥

दोहा—तब रावण झट उछल के, इन्द्र पील पै आय ।
सारथि प्रती प्रहार किय, बांधा इन्दर राय ॥
हरि को बंधन मँह किया, सब ने जय उचार ।
विजयपताका फरहरी, हर्षित होय अपार ॥

इन्द्रजीत ने बांध जयन्ता, निजभट सोंप किया रण अंता ।
पुन यों चाहा अरिदल मारों क्षण मँह सेना तास विदारों ॥
यों लखि दशमुख निषेध कीना, ना मारो निरहराध दीना ।
इनका दोष रंच भी नांहीं, जो कछु था वह प्रभू के मांही ॥

दोहा—प्रभु आज्ञा से सेन हू, देत अपने प्रान ।
रहे प्रभू या मृत लहै, या बन्धन दुख दान ॥
ये गति प्रभू की देखकें, दल होता बेहाल ।
मारो या रक्षा करो, कठपुतली सम हाल ॥

क्षत्री इतने को नहिं मारैं, होय नपुंसक दीन उचारैं
तिया बाल वृद्ध हनता नांही, होय शस्त्र ना जाकर मांहीं
पशुगण का भी नाही हानैं, करैं उलंघन दोषी जानैं
यातें दल पै कोप निवारो, न्यायरु नीति अबाध विचारो

दोहा—बांधो प्रभू अरु सैन्य को, अभयदान ही देव ।
धान दलो चावल लहा, भूसाको जिन लेव ॥
इन्द्रजीत वापिस हुआ, सुन पितुका उपदेश ।
महापुरुष टालें नहीं, गुरुजन का आदेश ॥

बँधा इन्द्र तत्क्षण दल भागा, हुआ अधीर विलम्ब न लागा ।
कइ दशमुख के शरणों आये, बहुतक निजमुख नांहि दिखाये ॥
कइ सोचें ह्वै अनर्थ भारी, इन्द्र भारिखन यों गति धारी ।
का विश्वास अन्य का लेवें, अब प्रभु दूजा हम ना सेवें ॥

दोहा—धरें दिगंबर वेष जँह, सेवा का ना काम ।
रमहैं आतमस्वरूप मँह, मिलै मोक्ष का धाम ॥
यों विचार कइ मुनि भये, परिणामन अनुसार ।
शेष सर्व खग शरण गह, जय जय कार उचार ॥

विजय प्राप्ति के बजे नगारे, ढोल मँजीरा आदिक सारे ।
गगन मांहि फहराइ पताका, गूंज उठा यश दशदिशयोंका ॥
विजय दीप उत्सव हो भारी, मंगलगीत गावतीं नारी ।
विजयारथ के खगपति आये, सबने अपना शीश झुकाये ॥

दोहा—दलयुत पुनि प्रस्थान किय, दशमुख नृपति खगेन्द्र ।
बंधन में हरि को लये, अरु जयन्त सुत इन्द्र ॥
कर्मन गति विचित्र है, को जाने का होय ।
पल की आशा है नहीं, ना जानें है कोय ॥

पहिले इन्द्र आप को माना, अब बंदी मँह निज को जाना ।
पूर्वं सब पै आज्ञा चाली, अब गति लखली बंधनवाली ॥
पूर्वं ना लख भौहैं टेढी, अब मीची दिठि निरखै बेड़ी ।
कर्म वशी क्या क्या न दिखावै, हरि हलधर चक्रीश नचावै ॥

दोहा–सुर नर नारक खग पशू, सभी कर्म से हार ।
वीतरागी ही कर्म को, क्षण मँह देत पछार ॥
वीतरागिता धन्य है यापै चलै न जोर ।
जगको पीठ दिखायकैं, ले जाती शिव ओर ॥

ज्योंही दशमुख लंका आये वन्दनवार सबै थल पाये ।
रत्नन तोरण मुक्ता झालर, लखे चौक मणिचूर पुराकर ॥
लंका को बहुभांति संवारी, मंगल गीत गावतीं नारी ।
वंदीजन वहु विरद बखानें, चहुंदिश विजयध्वजा फहरानें ॥

दोहा–जयदशमुख जय दशवदन, जय रावण बहु नाम ।
यों जयकारा अति मँचा, नर नारिन के धाम ॥
दशमुख से सब जन मिले, नाया अपना शीश ।
गुरुजन को रावण नये पाई सुखद अशीष ॥

थी स्वाभाविक सुन्दर लंका, तँह अब बजा विजय का डंका ।
स्वर्गभूमिसम शोभा कीन्हे, पुरजन ने सुर उपमा लीन्हे ॥
इन्द्र सरीखे योधा हारे, नाम सुनत नृप कांपते सारे ।
रविसम तेज दिपै अब याका, दश दिशि मँह यश छाया जाका ॥

दोहा–ज्यों दिनकर का उदय लख, फूलैं कमलसमाज ।
शशि लख फूलैं कुमुदनि, घन मयूर सुख साज ॥
नभचारिणि नर्तन करें, क्षण महि क्षण आकाश ।
तीन खंड का लख विभव, हुये नृपति सब दास ॥

विभव विभूति इन्द्र सम धारी, क्षण मँह वह हरि बना भिखारी ।
मानभंग का अतिदुख माने, परभव की तो भगवन जाने ॥
यातें जगसुख है दुखदाता, यामें कभी रचो मत भ्राता ।
विषयकषाय महा दुखदाई, धर्म सदा ही है सुखदाई ॥
दोहा—पाप कुगति देत है पुण्य जगत सुख देत ।
ज्ञानी दोउ नशायकें, करें मोक्ष से हेत ॥
यातें नित चिद्रूप भज, कर विभव के नाश ।
तब 'नायक' शिव मग गहो, सुख अनन्त परकाश ॥

॥ इति एकविंशतितमः परिच्छेदः समाप्त ॥

इन्द्र का दीक्षाग्रहण वा निर्वाणगमन

✽ वीर छन्द ✽

हरिवियोग से दुखित हुये जब, तात ढिगै सब मिलके आय ।
ये विरक्त श्रावकव्रत धारी, तिनसें विनय करी शिर नाय ॥
स्वामी को अब वेग छुड़ावो, नृपति दशानन के ढिग जाय ।
विना आपके कौन मिटावै, दुख असह्य जो हमें सताय ॥
दोहा—यदपि तात को खेद नहिं, कहा इन्द्र पै बीति ।
पुण्य पाप फल जिय लहै, है यों जग की रीति ॥
अति आग्रह से विवश ह्वै, लंकेश्वर पै जाय ।
सूचित किय निज आगमन, पुन ताके ढिग आय ॥
हरि कै पिता ढिगै जब आये, व्रती जानकें शीश झुकाये ।
बैठाया सिंहासन ऊपर, आप विनययुत बैठा भूपर ॥
विनय दशानन ने अति कीन्ही, सज्जनताई बताय दीन्ही ।
ज्यों फल को लह तरु नर जाये, यों उपमा को दशमुख पाये ॥
दोहा—की मेरी अतिविनय अरु, उच्चासन बैठाय ।
यों लख पितु हर्षित हुये, दशमुख प्रती उचाय ॥
अहो दशानन लोकप्रिय न्यायवन्त नीतिज्ञ ।
महापुरुष तुम अवतरे, सर्ववस्तु के विज्ञ ॥

मात तात हैं धन्य तिहारे रविसम सुत उपजावन हारे ।
जग मँह तुमने तेज दिपाया, जगविजयी पद तुमने पाया ॥
अतिप्रचण्ड अतुलित बलधारी, फैली जग मँह महिमा भारी ।
सर्व नृपन के मान मिटाये, का महिमा जो इन्द्र हराये ॥

दोहा—जिमि सूरज के उदय तें, तोम तिमर नश जाय ।
तिमि तुव सन्मुख को टिकै, हरि हूं बंधन पाव ॥
न्यायरु नीति विचारकें क्षमा इन्द्र पै लाव ।
मान भंग कर छोड़ दो, यही न्याय मन लाव ॥

यों पितु की सुन अम्मृत बानी, समझा ये हैं अति श्रुतज्ञानी ।
प्रमुदित हो यों गिरा उचारी, दई आप आज्ञा शिर धारी ॥
को समरथ तुव आज्ञा टारे, विनय युक्त यों वयन उचारे ।
लोकपाल की ओर निहारा, विहँसत दशमुख वचन उचारा ॥

दोहा—पुर मँह देहु बुहारि तुम, इन्द्र सींच जल देय ।
तनक न कूड़ा कहुं रहै नातर फल दुख लेय ॥
लोक पाल सुन यों वचन, नीची दृष्टि निहार ।
मनो गाज सिर पर पड़ी, या तरु दह तुषार ॥

सुनें तात यों विहँसत बैना लोकपाल किय, नीचे नैना ।
जों लख दशमुख प्रती उचारा, सुन जगभूषण वयन हमारा ॥
न्याय नीति के तुम हो ज्ञाता तुम से ही जग शोभा पाता ।
जो आज्ञा तुम देवो जाको, निश्चय से वह पालै ताको ॥

दोहा—सुनत तात के यों वचन, दशमुख मुदित उचार।
अहा तात तुम पूज्य हो, तुम्र आज्ञा शिर धार॥
क्षमो मोय अरु आज से इन्द्र सारिखा जान।
है चौथा वह भ्रात मम, भेद न कोई मान॥
पूर्व भांति ही इन्द्र बनाऊं, आगे गौरव और बढ़ाऊं।
लाकपाल भी राखूं तैसे, सारी शोभा होगी वैसे॥
चाहे राज्य अधिक तो पावै, काहू भांति त्रुटि ना आवै।
जनक तुल्य हो आप हमारे देउ सीख जिमि इन्द्र तिहारे॥

दोहा—आप रहो रथनूपुर, या लंका के मांहि।
दोउ आपके थान हैं भेद कहूं कछु नांहि॥
हम सब बालक आपके नित प्रति शिक्षा देहु।
हम गौरव को धार हैं, भेद कछू ना लेहु।
सुनत तात यों दशमुख सेती, विनय बतावत मुख से ऐती।
प्रमुदित होके एम उचारा, धन्य दशानन प्रेम तिहारा॥
महापुरुष उपजे जग मांही, तुम बिन जग की शोभा नाही।
सब जग के तुम हो हितकारक, तुम सम दूजा ना प्रतिपालक॥

दोहा—क्षमावान दातार तुम, गर्व रहित अरु शूर।
जिन शासन वेत्ता निपुण, न्याय नीति भरपूर॥
एकछत्र तुम्र राज्य हो, फैले कीर्ति प्रताप।
सुखद चंद्र उनहार हो, रवि सम तेज प्रताप॥

यहां वास हित वचन उचारा, प्रेम प्रदर्शन धन्य तिहारा ।
मैं भी कछू भेद ना मानूं, एक भांति ही दोइ थल जानूं ॥
पै तुमको जिमि लंका प्यारी, ता सम ही है बुद्धि हमारी ।
जन्म भूमि को सबही चाहें, तोसों सुत सम धर्म निवाहें ॥

दोहा—बसो चित्त तुअ गुणन मँह, दूर रहो या पास ।
लगी रहै अब चित्त मँह, पुनः मिलन की आस ॥
है आकर्षण तो विषें, जिमि चंबुक अरु लोह ;
तेरे प्रति हो प्रेम जिमि, क्षीर नीर संदोह ॥

यों वच सुन दशमुख हरषाया, मन मँह फूला नांहि समाया ।
शीघ्र इन्द्र को पास बुलाके, सौंपा सुत को गले लगाके ॥
पिता संग हरि किया प्रयाने, दशमुख साथ चला पहुंचाने ।
नीठ नीठ से पाछे आया, पितु वियोग दुख चित मंह छाया ॥

दोहा—आय इन्द्र निज थल विषें, पूर्व विभव सब पाय ।
तउ चित मँह अब ना रुचै, प्रीत भंग हो जाय ॥
हुआ मनो चित्राम सम, गत नेत्रन टिमकार ।
परिजन पुरजन सब खड़े, तउ ये नांहि निहार ॥

कार्य कछू ना अब चित भावै, राजपाट कछु नांहि सुहावै ।
क्षण रनवास जाय क्षण आवै, क्षणक शून्य बैठा रह जावै ॥
चित मँह थिरता कहूं न पाया, मत्त भ्रमर सम सुध बिसराया ।
गीत नृत्य का प्रेम बिसारा, जल क्रीड़न उपवनहु विहारा ॥

दोहा—परिजन पुरजन गुरुजन, सबही शोकित होय।
लखि याकी याविध दशा मेट सका नहिं कोय॥
चाहें चित्त प्रसन्न हो भूल जाय अपमान।
बहु उपाय सबने किये, सब ही निष्फल आन॥

किंकर्त्तव्य विमूढ़ शरीरा, रोग नाहिं पै व्यापे पीरा।
निशिदिन चिंतै अरु पछिताये, ऊर्ध्व श्वांस क्षण मांही आये॥
तेज रहित ह्वै अब तसु गाता, जिमि तुषार से तरु जर जाता।
सर्प मणी जिमि जब छिन जाये, तबसे कछु ना ताहि सुहाये॥

दोहा—चिंत्य इन्द्र ने चित विषैं, धिक जग वैभव राज।
शरद ऋतू को पाय जिमि, नशत मेघ का राज॥
हुई स्वतन्त्रता नष्ट सब, पराधीनता पाय।
जग विजयी मैं इन्द्र अब पर का दास कहाय॥

ग्रीष्म रवि सम तेज दिपाया, राका शशि सम सौरभ सुहाया।
सर्व नृपों का मुकुट कहाके, चक्री सम सुख वैभव पाके॥
क्षीण पुण्य ह्वै विघटन आया, जग मॅह दिखै पुण्य की माया।
दोष न काहु का है यामें, आया अशुभ कार्य रस तामें॥

दोहा—मैं भूला निज रूप को, फूला कर्म वशाय।
ताफल को क्षण मॅह लहा, विघटा देर न आय॥
रावण ने उपकार किया, मम उर बोध जगाय।
नशी कर्म परतन्त्रता लख निज आत्म सहाय॥

जगत कींच ते मोय निकासा, दूर भगाई जग सुख आसा ।
होय न पूरी तृष्णा याकी, तीर्थ चक्रि सुरपति हुइ काकी ॥
जिमि इंधन लह अग्नि दहावै, तिमि जग सुख लह चाह बढ़ावै ॥
तृष्णा दाह मूल हैं याके, विषय कषाय रमें सुख ताके ॥
दोहा—जगत प्रीति दुखदायिनी, अपना ये ले प्रान ।
यातें बुद्धजन तजत हैं, जहर हलाहल जान ॥
कनक स्वर्णमँह सौगुनी मादकता अधिकाय ।
वह खाय बौराय नर, यह पाय बौराय ॥

तातें शीघ्र मुनिव्रत धारूं, अष्टकर्म क्षण मांहि विदारूं ।
अटल अखंड होउं अविनासी, मिटै भ्रमणकी जगदुख फांसी ॥
ताहि समय इक ऋषि पधारे, चार ज्ञान के धारण हारे ।
शिवसुगम ऋद्धि चारणधारी, आ दर्शन हित जिन आगारी ॥

दोहा—ऋषिको लख हरि नमन किय, पाया चित मँह चैन ।
पुलकित हो अति श्रुति करी, अश्रु झरे दुइ नैन ॥
आई लहर अपमान की, चित अति हुआ उदास ।
दुखित सुध हुई निंदा करी चित का मिट हुलास ॥

लखा ऋषि ने जब हर्ष विषादा, प्रथम धर्मरत फूला गाता ।
हो विषाद कछु दुख लिय याते, आप ज्ञानबल व्रत्त लखाने ॥
हरि प्रति पुन यों गिरा उचारी, सुनहु भव्य अब बात हमारी ।
जिय अनादि से भरमत आया, कबहुँ ठौर ना इक थल पाया ॥

दोहा—भावन वश सुख दुख लहा, भ्रमो चुरासी मांहि ।
नर नारक तिर्यंच सुर, साता पाई नांहि ॥
कभी ऊंच कभि नीच हो रहट घड़ी सम जान ।
मरा जिया निज आयुवश नांहि स्वरूप पिछान ॥

यों सुन हरि ने समता धारी पुन ऋषिप्रति यों गिरा उचारी ।
नाथ पूर्वभव मुझे बतावो, कैसे मैंने कर्म कमावो ॥
कासे मैंने सब सुख पाया, पुन वाको क्षण मांहि गमाया ।
स्वप्न समान हुई गति मेरी, विघटत वैभव लगी न देरी ॥

दोहा—यों सुन ऋषि हरि प्रश्नको, कहे सुधा सम वैन ।
सुनहु भव्य कर्मन दशा, मिले तुझे अब चैन ॥
तेरे पूरव की कथा, सुन कर अचरज होय ।
नीच लहत है ऊँच पद, पुन ऊंचा भी होय ॥

एक शिखापद नगर तहां पै, कोउ दरिद्रिनि बसै वहां पै ।
अति ही पाप कर्म की मारी, जाके व्याधी उपजी सारी ॥
मार्ग पड़ी जूंठन को खावै ज्यों त्यों अपना उदर भरावै ।
कभी न सुख को पाया तानें, अनशन महिमा सुन ली यानें ॥

दोहा—अनशन की श्रद्धा करी, मरण समय जब आय ।
इक मुहूर्त अनशन धरी, भई सुरी सुखदाय ॥
पुनश्चय नरभव पायकें, समकित श्रद्धा कीन ।
श्रावक के व्रत आदरे मरणसमाधी लीन ॥

नवमें स्वर्ग देव पद पाया, तँह तें चय लह नर पर्याया।
समय पाय पुन तप को धारा, सर्व परिग्रह भार उतारा॥
उग्र उग्र तप याने कीन्हें, जीत परीषह बाइस लीन्हें।
अन्त समाधि मरण को कीन्हा, नवमें ग्रीवक सुरपद लीन्हा॥

दोहा— अहमिंदर के सुख लहे भोग उदधि इकतीस।
तँह तें चय तूं इन्द्र हो सर्व नृपन आधीस॥
पूर्व भ्यास तें सुख चहा, भोगूं इन्द्र समान।
पुण्य उदय सब सुख लहा चढ़ा शिखर पुन मान॥

मान शिखर चढ़के तूं फूला, अपने नरभव को तूं भूला।
इन्द्र आप को तूंने माना, विषयकषायन मँह सुख जाना॥
याही भवमँह अशुभ कमाया, याही भवमँह तसु फल पाया।
कारण बिना कार्य ना होवै, काटे वैसा जैसा बोवै॥

दोहा—रावण एक निमित्त है, कर्म किया अपमान।
समय पाय मिल अशुभ रस, पूर्व किया था मान॥
कर्म कमावै आप ही, समझै ना निज भूल।
फल पावै तब दुखित हो, माने पर प्रतिकूल॥

तुझे याद ना मैं बतलाऊं, सुनहु चित्त से याद दिलाऊं।
इक खग सुता अहिल्याबाई, पिता स्वयंवर विधी रचाई॥
दोउ श्रेणि के खगपति आये, तुम भी सज कर तहां सिधाये।
आनंदमाल कुंवर इक आया, अतिगुण मंडित शोभित काया॥

दोहा—आइ अहिल्या मंडपहि, बैठे जहां कुमार ।
आनंदमाल कुँवर गले, वरमाला को डार ॥
देख सुजन हर्षित हुये हूये क्रोधी क्रूर ।
यों लख तूं भी चित्त में, रिसियाया भरपूर ॥

न्यायोचित नहिं सोचा तूंने, निज रुचि माला डारी ऊंने ।
याहि स्वयंवर विधी कहाई, वरै ताहि जापै रुचि आई ॥
तँह पै भेद रहै ना कोई, इक धनी चाहे कोउ होई ।
केवल कन्या रुचि पै निर्भर, न्यायोचित यह रीति स्वयंवर ।

दोहा—आन वान के राखने, तूं चित में भय खाय ।
लोक करेंगे हास्य मो, यातें चित दवाय ॥
प्रगट सुधासम चित किया, भीतर जहर समान ।
जिमि मंतर वश सर्प ह्वै, जहर भरा घट जान ॥

हुती अहिल्या अति ही सुन्दर, याको चाहें सब ही अन्दर ।
जब वर माला नाहीं डारी, तब सब समझे बाजी हारी ॥
सबने चित मँह क्षमता धारी, उपजी क्रोधा नल तोहि भारी ।
लोक लाज हित चित भय खाया, समर न तूंने तभी मँचया ॥

दोहा देखा आनंद माल ने, मो गल माला डार ।
चित में अति हर्पित हुआ, मिली शची उनहार ॥
अल्प काल वीते पुनः, कुंवर विरक्ति पाय ।
भोग छांड़ के योग लह, आतम ध्यान लगाय ॥

कठिन तपश्चर्या मन दीन्हा, निज स्वरूप मँह हो लवलीना ।
जीत परीषह बाइस सारी, समता सागर आत्म बिहारी ॥
इक दिन ठाड़े तट सरिता के, आत्म रूप मँह ध्यान लगाके ।
मुनि कल्याण निकट इन भाई, आगम पाठ करें मुनिराई ॥

दोहा—ताहिसमय क्रीड़न निमित, तूं सरिता तट आय ।
सरवश्री राणी सहित, फूला नाहिं समाय ॥
पड़ी दृष्टि मुनि पै तभी, परणि अहिल्या याहि ।
क्रोधानल भीतर भभक, ज्वाला निकसी बाह्य ॥

कहा कुवच जो मन में भाया, मानों अहि फुंकार मँचाया ।
आय केशरी मनो दहाड़ा, या मत्ता गज आय चिंघाड़ा ॥
मेघ गर्जना हुई भयंकर, दामिनि दमकी वयन मुखंतर ।
का उपमा से तुझे बतायें, जा विध तेरा चित रिसयायें ॥

दोहा—याविध कहि तू मुनि प्रतो, ठाड़ा ठूंठ समान ।
कहां अहिल्या का रमण, पाथर हुआ अजान ॥
दग्ध तरू सम अब हुआ, भोगन नाहिं समर्थ ।
काहे को परणी उसे, कीन्हा ताको व्यर्थ ॥

याविध मुनि की हास्य करीतूं, गर्व सहित बानी उचरी तूं ।
मुनी अवज्ञा कर अविवेका, किय न रोप मुनि तोय कहे का ॥
वे तो आतम ध्यान लगाये, पै उन भाई मुनि रिसयाये ।
बानी तोकूं एम उचारा, क्यों तूं निंदा वयन निसारा ॥

दोहा—ये निष्पृह योगी अमल, रमें आतमचिद्रूप ।
शत्रु मित्र इन एक सम, भोगें सुःख अनूप ॥
तिनकों तूं भोगी समझ कहता कुवच अनेक ।
ताका फल अपयश लहै, टारा टरै न नेक ॥

याविध दृश्य लखी तो राणी, सोच दुखदफल मन अकुलानी ।
कोपे ऋषि तो भस्में याको, का विध अभी वचाउं पियाको ॥
यों चिंतन कर शीस झुकाई, उग्र मुनी की थुती उचाई ।
क्षमो प्रभो पति मम अज्ञानी, गत विवेक ना सोचै हानी ॥

दोहा--राणी थी श्रद्धावती, देव शास्त्र गुरु भक्त ।
चित सुबोध सादर हुती पति हू पै आशक्त ॥
अतः ऋषी रिस देखकै, डरपी चित के मांहि ।
थुती उचारैं मुनिनि की, रहै कोप चित नांहिं ॥

प्रभो ! आप हो समता सागर, फैली कीरत जगत उजागर ।
ऐसी शक्ति आप के मांही, टार सकैं त्रिभुवन मँह नांहीं ॥
पै अरि मित्तर एक बराबर, करुणा दया गुणन के सागर ।
यातें पति पै करुणा धारो, वाका चित अज्ञान निवारो ॥

दोहा—यों वच सुन 'कल्याण' मुनि, हुये चित मँह शांत ।
डरपा चित मँह इन्द्र तूं, किय चित को विश्रान्त ॥
तब ही समझा भूल को, अरु समझा अपराध ।
करी अवज्ञा मुनि मतो पे निष्पृह शिव साध ॥

यों चिंतन कर शीस झुकाया, पुलकत वदन श्रुती को गाया ।
क्षमासिंधु हो समताधारी, क्रोध वासना तुरत निवारी ॥
थी कषाय जल रेख उठाना मिला गई झट तड़ित समाना ।
मेघ घटा ज्यों नभ के मांही, प्रबल वायु वश ठहरे नांही ॥

दोहा—यदि न समता आवती, होती अनरथ बात ।
अग्निपूतला निकसके, करता तुझे निपात ॥
तप प्रभाव को कह सकै, जासे लह शिव थान ।
उल्टे तपी विनाश कर, योजन द्विदश प्रमान ॥

यों मुनि शिवसंगम बतलाया, याद इन्द्र के चित मँह आया ।
सचमुच मैंने अनरथ कीन्हा, पाप बंध याविध कर लीन्हा ॥
मुनी अवज्ञा कीन्ही भारी, मान पहाड़ गिरावन हारी ।
जाविध ऋषि का मान गिराया, ताविध अपना मान घटाया ॥

दोहा—मुनि से यों वर्णन सुना, इन्द्र बहुत पछिताय ।
स्वकृत पाप का फल मिला गुरु याथार्थ बतलाय ॥
किये पाप की सुध नहीं, फल पाये पछितात ।
अज्ञानिन की यह दशा, होत सदा दिन रात ॥

हो विरक्त हरि चित के मांही, जगसुख रमण करन चित नांही ।
सुतहि बुलाये तिन्हें उचारे, राज काज सुत लाज सम्हारो ॥
मैं तप करके कर्म नशाऊं, शिव साम्राज तुरत मैं पाऊं ॥
यों सुत सुन भी इन्हें उचारे, सुनहु मोरे पिता हमारे ॥

दोहा—है विष मिश्रित अन्न सम, जग वैभव अरु राज ।
दुखदायक इसको समझ, करत आप हो त्याज ॥
या भवदधि मँह बूड़ते, निकसन तुम चित चाह ।
पुन क्यों हमें डुबावते, समझ ना आवै थाह ॥
बुरा जानके आप निवारो, हमें काह पुन कहत सम्हारो ।
हम भी जूंठन को ना खाहें, तुम सम पद को हम भी चाहें ॥
या विध सुत वहु हुये विरागी, स्वहित भावना तिन उर जागी ।
इन्द्र साथ ही तप कों धारे, कर्म काटके मोक्ष पधारे ॥
दोहा—धन्य धन्य ऐसे पिता, धन्य धन्य सुत एम ।
जग असार तज शिव लये, धन्य धन्य तिन नेम ॥
हैं विरले इस जगत मँह, जिन निज हित की चाह ।
'नायक' सम्यक तुरत ही, मेंटै जग की दाह ॥

॥ इति द्वाविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
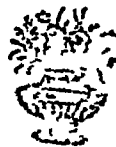
अथ श्रीअनंतवीर्य केवली का धर्मोपदेश, रावण का प्रतिज्ञा ग्रहण वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

एक समय दै मेरु वंदकें, लौटे थे रावण खगपाल।
परिजन मंत्री दलबल वाहन, सबही संगमें विभव विशाल॥
सुनी अचानक देव दुन्दभी बाजों का अतिशयी निनाद।
दशों दिशा अरुणाई लखकें, रावण सोचैं है क्या बात॥

दोहा—देवदुन्दुभी क्यों बजी क्यों अरुणाई छाय।
अतिशय यातें जंच पड़त, कछु विशेषता आय॥
मारिच मंत्री से कहा याका भेद बताव।
का कारण अति शब्द हो, दश दिशि अरुण लखाव॥

सुनकर यों मारीच उचारा, केवलिकृत ये अतिशय सारा।
देवदुन्दुभी बाजे बाजें, गंधकुटी अरुणाई छाजें॥
सुरन मुकुट रत्नन की ज्योती, याविध तिनकी फैली द्योती।
सुर नर खग मिल करते पूजा, तास शब्द को हेतु न दूजा॥

दोहा—शिर नय यों मारिच कहा, सुना दशानन राय।
अति प्रमुदित चितमँहहुआ, दर्शन को चित चाय॥
संघ सहित आया तभी, गंधकुटी के द्वार।
केवलि के दर्शन किये, हर्षित हुआ अपार॥

द्वादश सभा लखीं सुख कारी, गंधकुटो ता मध्य निहारी।
की दशमुख ने थुति अरु पूजा, प्रभो ! आप सम हितू न दूजा॥
शुद्ध स्वरूप आप दर्शावें, दूजी ठौर ताहि ना पावें।
जग जीवन के हो हितकारी, भांति भांति से थुति उचारी॥

दोहा—नर कोठा मँह बैठकें, अति सुख चित मँह पाय।
प्रश्न किया प्रभु से तभी, धर्मामृत का प्याय॥
हम अज्ञानिन को प्रभो मोक्ष मार्ग दर्शाव।
श्रद्धा सदसों आचरें, हितकर मार्ग बतलाव॥

तब ही खिरो जिनेश्वर वाणी, निज भाषा में समझें प्राणी।
सत स्वरूप छह द्रव्य सु जानो, आदि अन्त बिन अखंड मानो॥
उपजे विनशे ध्रुव सत मांही, हानि वृद्धि पट मिटती नांही।
मूल भेद द्वय जीव अजीवा, भेद अजीवहु पंच सदीवा॥

दोहा—पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल मिलाये पांच।
लहै स्वभाव विभाव जड, शेष न पावें आंच॥
कारण शुद्ध स्वरूप है, चार द्रव्य के मांहि।
परिणति स्वाभाविक कही, विभाव होता नांहि॥

वर्ण गंध रस फरस गुणाया, पुदगल जड़ मूर्तीक कहाया।
जीव शास्वता चेतन जानो, ज्ञाता दृष्टा रूप पिछानो॥
जिय पुदगल का मेल बताया भाव विभाव दोइ ने पाया।
पै निज भाव कभी न छांड़ै, निज शक्ति को दोई मांड़ैं॥

दोहा—आतम चेतन रूप तउ फँसा अनादि विभाव ।
वासी नित्य निगोद का, निकसै पावै दाव ॥
भू जल पावक वायु तरु, भ्रमा अनंती बार ।
दो ती चौ पच इन्द्रियन, त्रस पर्यायें धार ॥

पुन नर नारक सुर पर्याया, सहस दोय सागरहिं बिताया ।
इतने मँह यदि शिव ना पावै, लौट निगोद थान पुन जावै ॥
इतर निगोद नाम कहलाये एकें समय निकस पुन आये ।
सीझै जिय अभव्य कछु नांही दूरान्दूर रुलै जग मांही ॥

दोहा—निकट भव्य या दूर हो, समय पायके सीझ ।
ये दोनों ही भांति के, पुरुषारथ पै रीझ ॥
दूर भव्य जिय जगत मँह, भ्रमत चुरासी मांहिं ।
रहट घड़ी रीतैं भरै, ता सम थिरता नांहिं ॥

पांच मिथ्यात्वरु अविरत बारा, पण अरु बीस कषायें धारा ।
पंद्रह योग मिलें संतावन, ये ही आश्रव भाव उपावन ॥
इन भावन को संवर नाशै, पंच महाव्रत समिति प्रकाशै ।
तीन गुपति बाइस परीषह, बारह भावन वृष दशविध कह ॥

दोहा—ये संवर के भाव हैं, आश्रव भाव नशाय ।
डूबत नैया जीव की, तुरतहिं पार लगाय ॥
क्रम से निरजर शिव लहै, अविनासी पद पाय ।
केवलि के उपदेश का, यों संक्षेप बताय ॥

कुम्भकर्ण पुन गिरा उचारी, प्रभो ! हुई ना तृप्ति हमारी।
व्रतन नियम यम भेद बतावो, नर्क निगो न क्यों जिय जावो॥
क्यों जिय तिर्यग गतो उपावैं, कौन भाव से सुर गति पावें।
यों प्रभु सब विस्तार बतावहु, वचनामृत पयपान करावहु॥

दोहा—कुम्भकर्ण के प्रश्न पै, खिरी केवली वानि।
अशुध आत्म के भेद द्वय, पुण्य पाप पहिचानि॥
पुण्य बंध संचय करै, जब हो मंद कषाय।
पाप बंध संचय करै, वरतैं तीव्र कषाय॥

पंच भेद इमि पाप बखाना, हिंसा चोरी झूंठहु जाना।
परिग्रह अरु कुशील परिणामा, पावें नर्क निगोद ठिकाना॥
जे हैं पाप मांहि रत प्राणी निश्चय से तिन कुगति बखानी।
तँह पै दुख हो अपरम्पारा, लख भगवन या भोगनहारा॥

दोहा—जन्म मरण अठदस किये, एक श्वांस के मांहिं।
ऐसा थान निगोद मॅह, साता पाई नांहिं॥
बोरा में दाना भरै, बांध तास दुख देय।
पुन ताको मारै छुरी, तासम दुख वँह लेय॥

नर्क धरा दुख वरणौं कैसे, जा विध दुख जिय पावतऐसे।
एक लाख योजन का गोला गरम ठंड से पिघल सकोड़ा॥
जिमि लोहे की गती बखानी, उष्ण शीत तिमि भुगतें प्रानी।
भूंख प्यास दुख अधिक सतावें, अन कण नीर बूंद ना पावें॥

दोहा–दुख देने त्रय नरक तक, जाते असुर कुमार ।
उलट सुभाव भिड़ावते, करें परस्पर मार ॥
पहिले से दूजे प्रती क्रम से सप्तम जान ।
गुण अनन्त सम दुख बढ़त, को कर सकै बखान ॥
करें अविक जे मायाचारी, तिन ने त्रियगगति सम्हारी ।
लह कषाय अनंत अनुबंधी, वन ते नारक पशु सम्बन्धी ॥
या बिन नर्क पशू नहिं बांधै दुरगति को हांडी को रांधै ।
यातें मेंट मिथ्यात कषाया, नर्क पशू दुख जिया बचाया ॥
दोहा- पशु गति मँह दुख भोगवे, वध बंधन इत्यादि ।
इक वे ते चौ पञ्च मँह, भोगे दुख अनादि ॥
सबल निबल को भखत हैं करकें मायाचार ।
लहें विवेक न रंच हू, सह दुःख अपरम्पार ॥
चौ इन्द्री तक कहे असैनो पंचम मांहि असेनी सैनी ।
सैनी पशु कोउ सम्यक धारैं, वह ही अपनी गति सुधारैं ॥
एक देश पुन संयम धारी, हो सकता है आत्म विहारी ।
सकल देश की शक्ति नांहीं, यह है केव नरभव मांहीं ॥
दोहा–सुरगति मँह दश भेद हैं, सौलह स्वर्ग प्रमान ।
ऊंच नीच का भेद लह, महा दुखी तिन जान ॥
बिन पाये सम्यक्त्व के, सुरगति निष्फल होय ॥
पुण्य उदय सुख भोग सुर, भरमत जग मँह सोय ॥

अकाम निरजरा स्वर्ग देवै, पै ना निज सुख को जिय सेवै ।
विन सम्यक सुरपद भी थोथा, चाहे पढ़ लो जितने पोथा ॥
नव ग्रीवक तें ऊपर वारे, हैं सब समकित धारण हारे ।
नीचे कछू नियम हैं नांही, विन समकित या समकितमांही ॥

दोहा— भवनत्रिक तक नियम है, उपज न सम्यकवंत ।
भाव सुधारे आपना, सम्यक तहां लसंत ॥
समकित की महिमा अगम, निज स्वरूप पै दृष्टि ।
लखत द्रव्य गुण परिणमन, रचत मोक्ष की सृष्टि ॥

हो समकित जाके घट मांही, सो जिय इन मँह उपजतनांही ।
प्रथम नर्क विन छहों न जावै, चौ इन्द्री तक भव ना पावै ॥
भवनत्रिक या तिय पर्याया, पंडपणा ना ताके आया ।
ना पंचेन्द्री होय असैनी, अवश चढेगा मोक्ष नसेनी ॥

दोहा—दुर्लभ नर तन रतन यह, सुरपति हू ललचार्य ।
कब पावै हम मनुन तन, धर संयम शिव पायँ ॥
जो नर नरभव पायके, संयम रुचि ना लेय ।
सदा असंयम मँह रचै, सो दुर्गति दुख सेय ॥

प्रथम कषाय निवारै प्राणी, तिनके सम्यक रुचि वखानी ।
हों स्वरूप चर समकित मांहीं, देश सकल संयम गति नांहीं ॥
दुतिय कषाय जबै परिहारै, तभी देश संयम को धारै ।
तृतिय कषाय जबै जिय नाशै, सम्पूरण संयम परकाशै ॥

दोहा—देश सकल वृत भेद यों, पंच पापकों त्याज ।
मोह राग रुष तजत ही, दर्श ज्ञान वृत साज ॥
हो जीवन पर्यन्त तक, वह ही यम कहलाय ।
नियम काल व्यवधान रख, यासे नियम कहाय ॥

मनुज होय यदि नियम ना राखैं, नर नहिं पशु है श्रीजन भाखैं ।
पशु मानव में भेद यही है नियम सुधारैं मनुज वही है ॥
मनुज लहत यों पूर्ण विवेका, नहिं विवेक तो पशु नर एका ।
जिन पशुवन ने नियम सुधारे, क्रम से वे हू मोक्ष पधारे ॥

दोहा—पुन मनुजन की का कथा, जो यम नियम सुधार ।
सुर सुख शिव सुख वे लहैं, निश्चय चित अवधार ॥
श्रद्धैं प्रभु को आप सम, होन प्रभु वृत लेयँ ।
यम अरु नियम सु धारकें, अविनाशी पद सेयँ ॥

यातें चउ गति मँह लख भाई, मनुजगति दुर्लभ बतलाई ।
वनचर मँह वर सिंह बताया, पक्षिन मँह वर गरुड़ कहाया ॥
नर मँह नृप सुर मँह हरि जानों, तृण मँह शाली प्रमुख बखानो ।
तरु मँह चंदन श्रेष्ठ कहाया, पाषाणन मँह रत्न बताया ॥

दोहा—याविध चारों गतिन मँह, नरभव श्रेष्ठ कहाय ।
निज स्वरूप बिन आचरे, विफलपणा को पाय ॥
बिन तंदुल जिम सार नहिं, मानें भुस को कोय ।
नरतन का सार्थकपणा धार्मिक पण से होय ॥

अष्ट मूल गुण धारो भाई, मद्य मांस मधु पंच फलाई ।
पंच छीर तरु के संयोगा। बहु त्रस उपजें भखन अयोगा ॥
पीपर पाकर वड़ अजीरा, कहत कठूमर ऊमर वीरा ।
खाये हो त्रस जीव विराधन, श्री जिन वर ने ऐसा भाखन ॥

दोहा— इकविध से यें मूलगुण दूजी या विध भाव ।
सोविध हू पालो सुधी, अविनाशी पद पाव ॥
मद्य मांस मधु पंच फल, इन चारों का त्याग ।
देवदर्श जलछन दया रात्रिभुक्ति ना लाग ।

द्वयविध सेती मार्ग बताया अष्ट मूल गुण पालो भाया ।
पाक्षिक श्रावक तब कहलावो, पक्ष धर्म गह समता लावो ॥
सप्त व्यसन को झट ही त्यागो, द्यूत मांस मदिरा तज जागो ।
परतिय वेश्या नाशो चोरी, तज शिकार गमन शिव ओरी ॥
दोहा—पुन बाईस अभक्ष तज मिथ्या को परिहार ।
या विध सेती आपनी, नैया पार उतार ॥
पक्ष गहा जिन राज या आतम श्रद्धा लाव ।
यमहु नियम व्रत आचरो, अविनाशी पद पाव ॥

नैष्ठिक श्रावक द्वादश जानो मुनिवर षष्ठ महाव्रत मानो ।
द्रव्यलिंग का भाव नशावो भावलिंग गह शिव पद पावो ॥
इस विध केवलि गिरा उचारी सब जीवन को भात सुखकारी ।
शक्ति प्रमाण नियम व्रत धारो, अपनी नैया पार उतारो ॥

दोहा—केवलि की वाणी सुनी, सुखी हुये सब जीव ।
कुम्भकर्ण हू चित मँह, पाया हर्ष अतीव ॥
शक्तीयुत यम नियम लिय, धारे वृतहु अनेक ।
ताविध सबने ग्रहण किय, कोउ बचा न एक ।

धर्मामृत वर्षा सुख कारी, सुखी हुये पीकर नर नारी ।
शक्ति प्रमाण नियम सब धारे, अपनी नैना पार उतारे ॥
मुनी धर्मरथ परिषद् मांहीं लख वृत रावण लीना नांहीं ।
तिन ने याकी ओर निहारा, पुन याकों यों वचन उचारा ॥

दोहा—रत्नद्वीप से आय तुम, गहो रत्न वृत सार ।
मौन साध क्यों बैठ तुम केवल रहे निहार ॥
दुर्लभ अवसर पायकें, खोवत हैं जे मूढ़ ।
भ्रमत चुरासी के विषें, भव सागर मँह बूढ़ ॥

सुन रावण आदेश मुनीका, अतिअकुलाया लगा न नीका ।
सोचै मनमें का कह देऊं, मैं तो नियम कछु ना लेऊं ॥
नियम लेन की शक्ति नांहीं, चित भ्रमै विषयन के मांहीं ।
विषय कषाय रमूं निशि बासर, ह्वै संचित क्या धारूं नातर ॥

दोहा—दुविधा मँह रावण पड़ा, यहां कूप वँह खाइ ।
नांहिं गहूं यदि नियम कछु लाज अभी मो जाइ ॥
होय त्रिखंडी नृप ये, केवलि सभा मँझार ।
नांहिं नियम कुछ भी लिया, वचन मुनी का टार ॥

मन चंचल इन्द्री वश नांहीं, नियम लेउँ का ? या थल मांही ।
वैसे मेरा शुध आहार, शुध सामग्री सेवन हारा ॥
अभक्ष्य भक्षण करता नांहीं, पुन यो सोचा निज मन मांहीं ।
मुनिपद धारण कठिन दिखावैं, मो पै वृत ना पालो जावैं ॥

दोहा– याको देख सचित मुनि, कहे सुधा सम वैन ।
विषय तजन सम सुख नहीं, तुम क्यों होत अचैन ॥
तीर्थंकर चक्रेश कों, त्यागत लगी न देर ।
तुमको चिंता अति घनी, रहे चित्र सम हेर ॥

यों सुन दशमुख अति अकुलाकें, सोचा पुन चित समता लाकें ।
मैं हूं सुभग रूप का धारी, को मोपैं नहिं मोहै नारी ॥
यातें यही नियम कर लेऊं, जो ना चाहै तोह ना सेऊं ।
चिंतन कर यों वचन उचारा, मैंने या विध नियम सुधारा ॥

दोहा–जो नारी इच्छै नहीं, जबरन ताहि न सेउँ ।
प्राण जाय तो जाउ, मो यही नियम मैं लेउँ ॥
नियम विना धिक जीवना, कीन्हो मैंने आन ।
नियम कभी ना मेंटहों, चाहे जावें प्रान ॥

अटल नियम मों धारा यानें, हो प्रसन्न चित हुआ रमामें ।
लंका मांहि दशानन आया, पुरवासिन ने शीश झुकाया ॥
गुरुजन चरणन शिर नय येहू, बहुविध आशिष देवें वेहू ।
दल नल सब सुख नित प्रति बाढ़ें, चन्द्र कला सम नित्य उघाड़ें ॥

दोहा–याविध सेती धर्म की, फहरी ध्वजा विशेष ।
सुखी हुई बारह सभा, सुन केवलि उपदेश ॥
अटल नियम रावण लिया, ता फल सुखद महान ।
'नायक' रत्नत्रय भजें, पावें पद निरवान ॥

॥ इति त्रयोविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ अञ्जना और पवनंजय के सम्बंध का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

जाहि समय व्रत रावण लीन्हा ताहि समय व्रत लिय हनुमान ।
समकित शील शूरता मंडित, शशिसम सोम्य मूर्ति गुणखान ॥
यों सुन श्रेणिक हर्षित होके, गणधर प्रति बोले यों बैन ।
हनूमान का वृत्त बताओ, जिनसे उपजे ये सुख दैन ॥

दोहा—सुन श्रेणिक के प्रश्न को, हर्षित हो गणराज ।
कहा सुनहु श्रेणिक नृपति, तासु वृत्त सुख साज ॥
पवनंजय के तनय ये, महा पुरुष हनुमान ।
दिनकर सम दीप्ती लसै चरम शरीरी जान ॥

विजयारध के दक्षिण माहीं आदितपुर सम, दूजो नाहीं ।
नृप प्रल्हाद केतुमति रानी, तिन सुत पवनंजय गुण खानी ॥
योवनवन्त कला निपुणाई, लखो तात ने चिन्ता छाई ।
सुत अनुरूप वधू सो आवें, यों चिन्ता दिन रैन सतावैं ॥

दोहा—शिष्य वृद्धि को गुरु चहै, सो पद लेय सम्भाल ।
तामस सुत की वृद्धि चह, सो पद धारै बाल ॥
धर्म कर्म सुत साधके, मोर उतारै भार ।
मैं नैया मझधार से, शीघ्र उतारू पार ॥

याविध नृप प्रहलादहु चाहै, सुत को योग्य वधू से व्याहै ।
तेहि अवसर महेन्द्रपुर स्वामी, नृपति महेन्द्र नृपन मँह नामी ॥
अरिन्दमादिक शत सुत याके, सुता अंजना भी इक ताके ।
यौवनवती कला निपुणाई, लखी तात मन चिन्ता छाई ॥
दोहा—यौवनवती सुता हुई, ये काको परिणाउं ।
कुल गुण छवि वर योग्य हो, कब सम्बंध रचाउं ॥
यावध चिन्तातुर हुए, जेम सुलोचन तात ।
नृपति अकंपन लख सुता, चिन्तातुर हो गात ॥
नृपति महेन्द्र सचिव बुलवाये, तिनको अपना भाव बताये ।
सुता योग्य वर तुमहु बतावो, यों राजन आदेश लगावो ॥
सुनकर एक सचिव उच्चारी, सुनहु नाथ है राय हमारी ।
रावण या सुत दोनो ताके, वर हैं उत्तम योग्य सुताके ॥
दोहा—यों सुन दूजे ने कहा, यह ना मेरी राय ।
रावण की वनिता बहुत, सुता न आदर पाय ॥
दूजे वय में है अधिक, जँचै न ता सम्बंध ।
तास सुतन को दीजिये, होय कलह का धन्ध ॥
तीजे ने पुन एम उचारी, सुनहु नाथ है राय हमारी ॥
खगपहिरण्य कनकपुर स्वामी, तासुत विद्युतप्रभ है नामी ॥
यौवनवन्त कला निपुणाई, अती शूर गुण कुल छवि पाई ॥
यों अतिशय सम्पन्न सुहानो, सुता योग्य वर ताहि सु जानो ।

दोहा—यों सुन चौथे ने कहा, यह नहिं उचित सलाह ।
निकट भव्य है कनकप्रभ उचित न ता संग ब्याह ॥
वर्ष अठारैं के विषैं, जिन दीक्षा धर लेय ।
कर्म नशाकैं शिव लहै, ज्ञानी जन उचरेय ॥

बिना पती के तिया न सौहै, बिना चन्द्र के निशा न सोहै
यातें राय हमारी मानो, आदितपुर है श्रेष्ठ सुहानो ।
नृप प्रह्लाद केतुमति रानी, तिन सुत पवनंजय गुण खानी
यौवनवन्त कला निपुणाई, सर्व योग्यता तानें पाई ।

दोहा—याकी सुन सब मुदित हो, करें प्रशंसा भूर ।
ज्यों हंसा मोती चुनें, यों वर चुना सुशूर ॥
मात तात परिजन सबै, वर सुन हर्ष सुधार ।
कन्या सुन हर्षित हुई, है वर गुण भंडार ॥

समय पाय ऋतु वसंत आई, वन उपवन में शोभा छाई
तरु मँह नूतन पल्लव आये, उपजत शिशु सम शोभा पाये ।
पुष्प गंध दश दिशि मँह छाई, अलि पंकति तँह पै मड़राई
ऋतु बसंत अति परम सुहावन, सब जियको उत्तम मनभावन ।

दोहा—अब आया वर पर्व यह, अष्टाह्निक शुभ मान ।
कार्तिक फाल्गुन साढ़ के, अन्त आठ दिन जान ॥
यामें सुरपति सुरन युत, नन्दीश्वर को जायँ ।
खग भी या वर पर्व मँह, गिरि कैलाशे आयँ ॥

नृप महेन्द्र कैलाशहिं आये, थुति पूजन कर भाव बढ़ाये ।
गूंज उठा तँह पै जयकारा, खग गण उचरैं वारम्बारा ॥
खगतिय नृत्य करें गिर माहीं, क्षणमहि क्षण नभ थिरता नांहीं ।
श्री जिन के गुण खग उच्चारें, लेय द्रव्य पूजा विस्तारें ॥

दोहा—उसी समय प्रहलाद भी, आये गिरि कैलाश ।
दर्श, पूज थुति कर चहैं, भव का होय विनाश ॥
पुन प्रमुदित आये तहां, जँह पर नृपति महेन्द्र ।
मिले परस्पर प्रेम युत, मनो मिले दोइ इन्द्र ॥

तात सुना सुत प्रेम प्रचारें, प्रमुदित आपस मांहि निहारें ।
मनो भावना सफल करावें, आपस मांही प्रेम जगावें ॥
हर्षित होके फूले गाता दोनों के नहिं हर्ष समाता ।
स्वर्ण शिलापै आसन धारी, कुशल परस्पर दुहुन उचारी ॥

दोहा—सुनतइ कुशल महेन्द्र ने लीनी दीरघ सांस ।
कही कुशल की का कहैं सुता योग्य वर आस ॥
सुता सयानी हो गई, अति चिंता उर मांहि ॥
रैन दिवस ना चैन अरु, कछू सुहावै नाहि ।

वर सुयोग्य जब तक ना पाऊं, तब तक कुशल कहां से लाऊं ।
मँत्रिन से मैं मॅत्र विचारा, कोउ रावण कोउ सुतन उचारा ॥
हैं रावण की वहुतक नारी, आदर ना लह सुता हमारी ।
अधिक उमर भी हुई अब ताकी, जँचै न जोड़ी योग्य सुता की ॥

दोहा—पुत्रन को देऊं तदपि, कलह होय दिन रात ।
काको तज, देवें किसे, यों शंकों दिन रात ॥
विद्युतप्रभ वर योग्य जंच, पै वह वर्ष अठार ।
हो विरक्त दीक्षा गहै, करै कर्म का क्षार ॥

यातें निश्चय ना कछु लीन्हा, पुन तुम सुत का विचार कीन्हा ।
है वर लायक पुत्र तिहारा, मानों यदि यह 'वचन' हमारा ॥
तबही होवै कुशल हमारी, यदि उदारता होय तिहारी ।
भाग्योदय से मिलाप पाया, पूरो आश याहि चित चाया ॥

दोहा—याविध सुन प्रहलाद हू, प्रमुदित हुआ अपार ।
हृदय मांहि ज्यों चाह थी, त्यों हुइ क्षणक संस्कार ॥
यातें द्रुत इनसे कहा, है मोकों स्वीकार ।
यही मुझे चिन्ता हुती, वधू मिलै सुखकार ॥

सुत के योग्य वधू कब पाऊं, जोड़ी सुत अनुरूप मिलाऊं ।
भाग्योदय ने स्वयं मिलाई, चाह हुती त्यों आप सुनाई ॥
आप मिटाई चिन्ता मेरी, कीजे व्याह करो ना देरी ।
बुला ज्योतिषी लग्न विचारो, मेरी चिन्ता शीघ्र निवारो ॥

दोहा—तीजे दिन की लग्न शुभ, कहा ज्योतिषी शोध ।
यों सुन सब हर्षित हुये, वर वधु योग्य सुबोध ॥
मानसरोवर तट सुभग, किय मण्डप तैयार ।
परिणय उत्सव हो तहां, किय दोनों निरधार ॥

दुहू ओर से हुई तयारी, मरतट साजो मण्डप भारी ।
पवनंजय से सखा बतावो, त्रय दिन मँह तिय संगम पावो ॥
सुभग अंजना छवि बलिहारी, त्रय दिन मँह हो तिया तिहारी ।
फैली कीरत जग मँह ताकी, दूजी नांही समतर वाकी ॥

दोहा—सुनत सखा के यों वचन चित मँह उठी उमंग ।
देखूं काविध सुन्दरी, हर्ष समाय न अंग ॥
काम व्यथा पीड़ित हुये, लगे काम के बान ।
खान पान सब ही तजा, हुआ मूढ़ सम ज्ञान ॥

व्यथा मानसिक से अकुलानें, मुख कुम्हलाया गात सुखानें ।
तन मँह पीरा व्यापै भारी, सुध बुध तन की सबही छांरी ॥
बार बार ता रूप चितारै, क्षण क्षण दीरघ सांस निसारै ।
सोचे जब तक देख न पाऊँ, कैसे मन की दाह बुझाऊं ॥
दोहा—नीर बिना जिमि मीन अरु, शशि बिन यथा चकोर ।
ता सम गति हुई याहुकी, निरखै चारों ओर ॥
मनो प्रिया ही दिख रही, यों चेष्टा या कीन ।
मत्त सदृश किरिया करै, सब सुध बुध खो दीन ॥
लख प्रहस्त यों गती सखा की, समझ न आवै मित्र व्यथाकी ।
यातें याको शीघ्र उचारा, कहां दुखत है अंग तिहारा ॥
शीघ्र अभी मैं वैद्य बुलाऊं, क्षण मँह ता उपचार कराऊं
यातें मोकों शीघ्र उचारो, चित मँह ना संकोच बिचारो ॥

दोहा—क्षीर नीर सम मित्र दोउ, पुन क्यों भेद छिपाव ।
व्यथा सतावें कौन की, जल्दी मुझे बताव ॥
चैन न मोकों एक क्षण, तुमको तड़फत देख ।
कहो कहो क्यों सकुचते, वेग करो उल्लेख ॥

लज्जावश ये कहा न चाहै, बिना कहे पुन कौन निबाहै ।
पवनंजय दुविधा के मांही, कूप खाई सम निवटै नाही ॥
सोचा ये है मित्र हमारा सबविध व्यथा मिटावनहारा ।
यासे नः कह पुन कहुँ कासे याविध सोच कहा यों यासे ॥

दोहा—सुनहु मित्र तोसे कहूँ, जासें व्यथा सताय ।
लखूं न जब तक मैं प्रिया, तब तक चैन न आय ॥
आग्रह वश कहना पड़ी, काम व्यथा अति मोय ।
चैन न क्षण भर लैन दे, कहा बताऊं तोय ॥

प्रजा पीर को भूप निवारै, शिष्य पीर को गुरू निसारै ।
सरुज पीर को वैद्य मिटावै, तिया पीर को पिया हटावै ॥
मित्र पीर को मित्र नशाये, ऐसी जग मँह रीति कहाये ।
यातें पीर मिटाबो मेरी, काम व्यथा दुख देय घनेरी ॥

दोहा—सुन प्रहस्त यों मित्र दुख, चित मँह हुआ सचिंत ।
बिन परिणय कैसे मिलै, लोक रीति मँह निंद्य ॥
तीन दिवस की देर है, तो भी ये अकुलाय ।
कैसे पीर मिटाउँ मैं, कछू कहो ना जाय ॥

यों चिंत्यो पुनहू इसे उचारी, सुनहु मित्र अब बात हमारी ।
तीन दिवस की गम तुम धारहु, याअवधी तक व्यथा निवारहु ॥
पुन निज तिय से कीजो प्रीती, यही जगत की न्यायरु नीती ।
विना मेह के फलै न खेती, अवगुण बात न शोभा देती ॥

दोहा—गुण अवगुण की परखबिन, बात न शोभा देय ।
भेद हीन से ऊंच मँह, अवगुण तज गुण लेय ॥
याते' मानो बात मम, करो चित्त को शांत ।
ब्याह होत ही प्रिया प्रति, मिलो करो विश्रान्त ॥

सुन पवनंजय राय सखा की, क्षीण हुई छवि अति ही याकी ।
मानो हुआ गाज का मारा, अभी लगा था मित्र सहारा ॥
वेल उपड़ती होत निराश्रय, अब न रहा मित्र का आश्रय ।
गिरा पवनंजय महि के मांहीं, तनकी सुध बुध अब रहि नांही ॥

दोहा—देख अवस्था मित्र की अति प्रहस्त अकुलाय ।
सोचै काम विकार धिक, व्यथा सही ना जाय ॥
घाव न बाहर दिखत पै, धँधकै भीतर आग ।
अति वेदना होत जिमि, घाव छुरी के लाग ॥

किया मित्र को सचेत यानें, लागा पुन वाको समुझाने ।
देखा काहु विधै ना मानें, सोच युक्ति की प्रिया दिखानें ॥
सूर्य अस्त की वेला देखी, कार्य सिद्धि की जा घड़ि लेखी ।
कहा चलो द्रुत प्रिया दिखावें, याद रखो कोउ लखन न पावें ॥

दोहा—चले दोउ नभ मार्ग से, आ महेन्द्र के थान ।
मनो चोर जिमि छिप चलै, तनक शोर ना आन ॥
अंजनि थी सतखण्ड पै, करै सखिनि सँग केल ।
अधिक सजावट तँह हुती, महकै तेल फुलेल ॥

छिपे आनके तँह पै दोऊ, लख ना पावै जासे कोऊ ।
लखी अंजनी दिव्य शरीरी, रूपवती छवि गुण गम्भीरी ॥
वसंततिलका तत्र विहँसाई, तासे यानिव गिरा उचाई ।
अहो अंजनी खेलो बाई, तीन दिवस गत होउ पराई ॥

दोहा—अभी सखिनि संग खेलतीं, पुन हो पति से केल ।
दर्शन दुर्लभ होंय पुन, होय पती से मेल ॥
धन्य भाग्य तेरा हुआ, पवनंजय पति पाय ।
शूर शील वर गुणन युत, शोभै छवि अधिकाय ॥

कँह तक महिमा गाऊं वाकी, जोड़ी शुभ मिल पति पिया की ।
जैसा वर है वधु भी तैसी, रची विधाता जोड़ी ऐसी ॥
पुण्योदय ने बात बनाई, सखी हमारी इमि पति पाई ।
पुन भी रखियो खबर हमारी, वसंततिलका एम उचारी ॥

दोहा—यों सुन अंजनि सुख लही, नीचे कीन्हें नैन ।
पवनन्जय भी सुख लहा, सुन स्तुतिमय वैन ॥
को जग में ऐसा नहीं, थुति सुन ना हरशाय ।
निन्दा सुन कर आपनी, रोष नाहि प्रगटाय ॥

उठी उमंग पवनकें ऐसी, मिलों प्रिया सों रुकों न तैसी ।
पवनप्रवेश वेग को रोकै, होय शैल सम आड़ो होकै ॥
तिमि प्रहस्त ने याको रोका, नाहिं मित्र द्यो हमको धोका ।
प्रिया दिखाने को हो लाये, कोउ लखै ना छिपकें आये ॥

दोहा—अब विवेक तुम तजत हो, तथा लोक की लाज ।
करै न ऐसो कोइ भी, जिमि तुम चाहत आज ॥
होय न जब तक ब्याह तुव, प्रिया मिलन ना होय ।
आन न लोपें उच्च जन, नीति कहत सब कोय ॥

सुनत पवन चित मांहि विचारा, ठीक कहत है मित्र हमारा ।
ताहि समय मिसकेशि उचारी, मनो नागिनी ही फुङ्कारी ॥
वसन्तमाला से यों बोली, सुधा मांहि जिमि विषको घोली ।
काह पवन की थुती उचारी, विद्युत महिमा नांहि विचारी ॥

दोहा—कँह विद्युत कँह पवन है, कहां सिंह कँह श्याल ।
शूर शील छवि गुणन युत, विद्युत सुभग विशाल ॥
याका संगम एक क्षण, अमृत सम तू जान ।
पवन संग हो बहु समय, जानो जहर समान ॥

पवनंजय गुण नदी सरोवर, विद्युतप्रभ गुण उदधि बरोबर ।
राइ मेरु मँह अन्तर जैसा, यामें वामें कहिये तैसा ॥
भरता होवे विद्युत जाका, भाग्य सराहो उसी तिया का ।
मात पिता ने नांहि विचारी, वृथा सुता की जोड़ बिगारी ॥

दोहा—चरमशरीरी यदपि वह, तजै भोग से हेत ।
तदपि ऊंच कुल गुण विभव, क्षण भी शोभा देत ॥
संगति नीच न सोहवै, कृष्ण लोह सम जान ।
ऊंच संग अतिशय अमल, दीपै स्वर्ण समान ॥

सुनें कुवच पवनंजय जा क्षण हुआ कुपित ये अहिसम ताक्षण ।
अग्नि बढ़ै जिमि बयार लागी कुवचसुनें तिमि अतिरिस जागी ।
ओंठ डसे अरु भृकुटि चढ़ाई, नयनन मँह अरुणाई छाई ।
हुई आकृति महा भयानक, हुआ रंग में भंग अचानक ॥

दोहा—सुने कुवच मिसकेशि के, अंजनी भी अकुलाय ।
लज्जावश ना कह सकी, क्यों तू कुवच उचाय ॥
अभी कुंआरी का कहूं, पति प्रती क्यों कहि एम ।
तुझे प्रयोजन का सखी, भाखत है तू जेम ॥

पै पवनंजय अति रिस धारी, हृदय मांहि झट यहिविचारी ।
मेरी निंदा याहि सुहाई तब ही सखि वादै गुण गाई ॥
यों विचार द्रुत खेंच कटारी, दुहुण मारने गिरा उचारी ।
याक्षण विद्युत आन बचावें, यों कह ये उठने को चावें ॥

दोहा—लख प्रहस्त या दृश्य को, छीनी वेग कटार ।
कहा कहो ये करत क्या, प्रथमहि लेहु विचार ॥
चेष्टा कीनी अनधिकृत, जो इत पैं तुम आय ।
निंद्य कर्म पुन करत हो, तियवध दोष कहाय ॥

वीर हनै इतनों को नांहीं, होय शस्त्र ना जिसकर मांहीं ।
बाल वृद्ध तिय सरुज नपुंसक, होय पशू भी चाहे हिंसक ॥
हो तुम वीर रिपू को मारो, तियां अवध्यना हनन विचारो ।
चलो गोप्य ही आये जैसे लखै न कोउ आये कैसे ॥
दोहा—यों समझाकर वेग ही, चाले दोनों वीर ।
गये हुते अति हर्ष से, लौटे भारी पीर ॥
चिंतै चित मँह पवन यों, लेवै दीर्घ उसास ।
विद्युत को कन्या चहै, सुनें प्रशंसा तास ॥
तात सुहाती सखी उवेरी तब ही निन्दा सुनली मेरी ।
रुचै न वाको काह उचारै, मन मँह बारम्बार उचारै ॥
है विद्युतप्रभ प्यारा ताको, वृथा गया मैं देखन वाको ।
यदि मैं जानत वह है प्यारा, आश न करता बनाऊं दारा ॥
दोहा—धिकधिक जग जीवन दशा, क्षण मँह करता राग ।
क्षण मँह पुन ता वस्तु से, करता चित विराग ॥
यातें ज्ञानी तजत तिय, राग महा दुख देय ।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, अविनाशी पद लेय ॥

॥ इतिचतुर्विंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
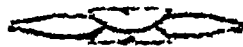
अथ अंजना और पवनंजयके विवाह का वर्णन प्रारम्भ

* वीर छन्द *

हुई अरुचि अंजनी प्रति याके, क्षण भर को भी नाहिं सुहाय ।
मनों अग्नि उर मँह प्रज्वलाई, उठती दाह चैन ना पाय ॥
बीती निशि यों प्रातहिं लखके, पवनंजय ने हुकम लगाय ।
वेग करो प्रस्थान यहां तें, वाको परस पवन इत आय ॥

दोहा—यों सुन हुकम कुमार का, सैन्य सजी तत्काल ।
कूंच किया ताही घड़ी, हुये सभी बेहाल ॥
सुना जभी यों अंजनी, कीना कूंच कुमार ।
मूर्छा खा महि पै गिरी ह्वै दुख अपरम्पार ॥

मानो हुई गाज की मारी, ह्वै सचेत पुन सांस निसारी ।
सोचै आश विफल ह्वै मोरी, मनो स्वप्न मँह आशा जोरी ॥
महापुरुष का संगम पाऊं, अपना जीवन सफल मनाऊं ।
यों सब आशा हुई निराशा, कूंच हुकम क्यों कुंवर प्रकाशा ॥

दोहा—दुष्ट मिश्रकेशी कहे, पति प्रति कुवच कठोर ।
कोई कह दिय जाय या वे आये इस ओर ॥
श्रवण पड़े कर्णन विषें, यातें कूंच कराय ।
रुष्ट भये मेरे प्रती, अब ना उन्हें सुनाय ॥

वैरिन हुई सखी ये मेरी, बात बिगड़ते लगी न देरी ।
यदि पति पांछा अब ना आवैं, जीवन मृतक समान कहावै ॥

अन्न पान का त्याग करूं मैं, जब तक आगम पुन न सुनूं मैं ।
यों कह गिरी मूर्छा खाई, मुख की कांति सब कुम्हलाई ॥

दोहा–पवनंजय आदेश से, किया सैन्य प्रस्थान ।
सब ही अति व्याकुल हुये कारण कछू न जान ॥
कहँ तो उत्सव व्याह का, होना मंगल काम ।
हुआ अमंगल कूंच यों है अचरज का धाम ॥

सबने यों चित मांहि विचारा ये पवनंजय नाम कुमारा ।
पवन समान चपलता धारैं, क्षणमँह थिर क्षण कूंच विचारैं ॥
तिय सुख ज्ञान अभी है नांहीं, याते कूंच रुचै मन माहीं ।
यों पुर मँह नर नारि बतावें, निज निज आशय सभी लगावें ॥

दोहा– झूंठी हथिनि को लखै, गज फंस वन्धन पाय ।
ये तो सुन्दर तिय तजत, उलटा वापिस जाय ॥
या अनबन का हेतु क्या, यैसे सुभट बतायँ ।
पवनंजय चढ़ अश्व पै, चलने को उमगायँ ॥

कूंच शब्द सुन महेन्द्र राया, झट प्रहलाद निकट चल आया ।
शोकित हो इम वचन उचारा काहे बाजा कूंच नगाड़ा ॥
यों सुन ये भी अति अकुलाये, कुंवर ढिगै ये दोनों आये ।
मिष्ट वचन यों दुहू उचारे; वत्स बजे क्यों कूंच नगारे ॥
दोहा– कौन भांति से त्रुटी हुई, कौन अमंगल कीन ।
कौन विरोधी वच कहा, जासें रुपता लीन ॥

यदि रिस हुइ गुरुजन प्रति, तो क्षमता को लाव ।
का विध्र कटुताई भई ताका भेद बतान ॥
गुरुजे आज्ञा नांहीं टारें, वे ही सपूतपण को धारें ।
यातें मानों बात हमारी, याविध इनसों दुहुन उचारी ॥
हुकम कूंच का वेग निवारो, गुरुजन आज्ञा चित अवधारो ।
तातरु ससुर बहुत समझाया, तब पवनंजय के चित आया ॥
दोहा—अंजनि को वर के तजों आजीवन दुख पाय ।
पुन कोई व्याहै नहीं, दुहू ओर से जाय ॥
यों विचार ये बाहुडे, हरषे सब ही जीव ।
अंजनी सुन प्रमुदित हुई, पाया हर्ष अतीव ॥
समय व्याह का जब ही आया, सब जीवो ने मोद लहाया ।
कुंवर दृष्टि अन्जनि पै आई, इन्हें ज्वाल सम लगी तताई ॥
क्षण मँह ताको संकोच लीन्ही, अरुचिबहुत निज मनमें कीन्ही ।
अन्जनि कर स्पर्श कराया, समझा झुलस गई मो काया ॥
दोहा—अन्जनि चित प्रीति घनी, वर चित रंच न प्रीति ।
क्षण मँह हुआ विरोध यों, धिक धिक-जग की रीति ॥
जग मँह कर्म प्रधान है, ताते दुविधा होय ।
'नायक' दुविधा मेंटके, निज स्वरूप नित जोय ॥

॥ इति पंचविंशतितम: परिच्छेद: समाप्त: ॥

अथ अंजनी पति वियोग शोक वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

पवनंजय ने वरी अंजनी, तजी पुनः जनु है अज्ञात ।
वरन किया स्वप्ने में याने, ना जाग्रत स्वप्ने की बात ॥
ऐसा समझ अरुचि चित राखै, चितै कुवच कहाये मोय ।
अंजनि को मैं नांहि सुहाया, तब ये नहिं है मेरी कोय ॥
दोहा—चहै समागम अंजनी, चित अरुचि पति लीन ।
कछू सुझै ना लख परै, कौन दोष में कीन ॥
क्यः रूठे का चाहते, आय कहें तब जान ।
विना प्रयोजन रूठकें, जबरन लेते प्रान ॥
रैन दिवस ये चिन्ता याको, भोजन पान रुचै ना ताको ।
सोचै का कह पति समझाऊं, काविध कैसे नाथ मनाऊं ॥
वायु परस याके ढिग आवै, वह हू याको अती सुहावै ।
प्रीतम मूर्ति सदा चित ध्याती, पुन चिंतन कर बहु अकुलाती ॥
दोहा—पति संभाषण के विना, यह तड़फै दिन रैन ।
नीर विना जिमि मीन सम, पाय न क्षण भर चैन ॥
नांहि सुहावै अब कछू, निशि निद्रा ना आय ।
अति व्याकुल चित मँह रहै, साता क्षण ना पाय ॥

रैन दिवस यह चिन्ता छाई, काया मुख दुति कुम्हलाई।
पति का चित्र बनावन चाहै, हाथ कपै किमि कार्य निवाहै ॥
कलम छूट पुन पुन गिर जाती, पुन पुन गह यह फेर बनाती।
बनै चित्र कैसे हू पूरा, ना बन पावै रहै अधूरा ॥

दोहा—और भांति निरवाह ना, यातें चाहै चित्र।
होय पूर्ती कौन विध, यह ही बात विचित्र ॥
सर्व गात्र मुरझा गया, दीरघ लेय उसास।
अशुभ कर्म को निदवै, नांहि कोय है पास ॥

मात पिता गृह सखी सहेली, अब इत तड़फै आप अकेली।
कभी आपके शोक किया ना, रंच मात्र भी दुःख लिया ना ॥
अब तो दुःख मॅह समय बितावै, समय मात्र भी सुख ना पावै।
कोय न पुन दुःख पूंछनहारा, है अब कैसा स्वास्थ्य तिहारा ॥

दोहा—करी अवज्ञा पतिहि जब, तब को आदर देय।
कैसा तेरा स्वास्थ्य है, कौन प्रश्न कर लेय ॥
पति की पूंछै वारता, को याको बतलाय।
काह भांति पति रूंठकें, ताह वियोग सुहाय ॥

विविध वस्तु सखियां ले आईं, याहि रिझावन बहुतक चाईं।
पै ये दृष्टिपात ना चाहै, स्वाद सहित पुन कैसे खाहै ॥
छिटके केश सम्हारै नांहीं, मनो तपस्विन है मन मांहीं।
कान्ति हीन हुइ सारी काया, केवल ढांचा जड़पन पाया ॥

दोहा—क्रिया शून्य हुइ अंजनी भू उपमा को पाय ।
अश्रु बहाये नित मनो वापी स्रोत बहाय ॥
हृदय दाह से अग्नि सम, चंचलता से वात ।
शून्य हृदय से गगन सम, सूखे तरु सम गात ॥

बैठी तो उठ सकती नांहीं उठै गिरै पुन भू के मांहीं ।
अपने तन को थाम सकै ना, निज मन को संबोध सकै ना ॥
अङ्गोपाङ्ग भये बल हीना, परिचित भी अब चीन्ह सकी ना ।
दिव्य कांति तन विघटी सारी, हुई अंजनी विधि की मारी ॥

दोहा—सखिजन कर में कर पकड़, गमन कराना चाय ।
तो भी याके पग डिगें, मूर्छा खा भू आय ॥
वचन बोलना चाहवै, बोल सकै ना बोल ।
दिखै चित्र लिपि ता सदृश, रह जावै मुख खोल ॥

क्रीड़ा करें हंस अरु मैना, तिनको निरखें याके नैना ।
चाहै साथ करूं मैं क्रीड़ा, काम विकलता बाढ़ै पीड़ा ॥
दुखै देह ज्यों चुभी कटारी, लगा बाण या बरछी मारी ।
पती बिना अंजनि ना सोहै, सुख सामग्री मन ना मोहै ॥

दोहा—सर की शोभा हंस से, निशि की शोभा चन्द्र ।
दिन की शोभा सूर्य है, सभा सुसज्जन वृन्द ॥
नारी की शोभा पती, पति बिन नारी शून ।
पति अवहेलित अंजनी, दिखती सदा विहून ॥

पति वियोग क्यों यानें पाया, समझ किसी के ये ना आया ।
दीखै दोष समझ में आवे, इतै उतै या कोउ बतावे ॥
अंतरङ्ग का समझ न आये, काके मनमें काह सुहागे ।
नवयौवनता दोनों पाई, का कारण से भई जुदाई ॥
दोहा–बिन कारण से है दुखी, दिवस बरस सम जाय ।
अंजनि की लखकें दशा, चिन्ता सभी लहाय ॥
पूर्वोपाजित कर्म वश, सहै दुख अति घोर ।
कब दिन ऐसा आयगा, होवै दुख का छोर ॥
कब ये प्रेम पिया से पावै, मेल परस्पर में हो जावै ।
यों अभिलाषा सबने धारी, कोइ न पावै इमि दुख भारी ॥
यानें ऐसा कर्म कमाया, पवनंजय इक निमित कहाया ।
शुभ कर्मोदय जब आ जाये, क्षण मँह विपदा सब विघटाये ॥
दोहा–कर्मन के वश जीव ह्वै, सहै घोर सन्ताप ।
मेंटै यातें कर्म को, मिटै कर्म आताप ॥
रत्नरूप ही मूल तें, क्षण में मेंटै कर्म ।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, मेटत सब विधि भर्म ॥

॥ इति षड्विंशतितमः परिच्छेद समाप्तः ॥
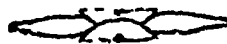
अथ रावण से वरुण का युद्ध अञ्जनी से पवनंजय का मिलाप वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

वरुण भूपती शत सुत मंडित, रावण से भय नांहीं खाय ।
यों लख रावण दूत पठाया, आय वरुण ढिग कहि इतराय ॥
अहो वरुण दी आज्ञा रावण, महाबली खगपति चक्रेश ।
तीन खंड का है वह स्वामी, दिपै मानो द्वितिय दिनेश ॥
दोहा—नमन करो आओ ढिगै, या रण साज सजाव ।
और भांति निवटै नहीं, देवो तुरत जवाब ॥
यों सुन विहँसत वरुणकहि, कहा कहै रे दूत ।
क्या दिखाय रण भय हमें, वही शूर का पूत ॥
कहँ का रावण खगपति नामी नाम धराय त्रिखंडी स्वामी ।
मैं नहिं सहसरश्मि कहलाऊं, इन्द्र वैश्रवण नांहि कहाऊं ॥
नांहि मरुत यम जाहि पछारा, मैं हूं वरुण शूरपण धारा ।
देवाधिष्ठित रत्नहिं पाके, इतरावै बल तास लहाके ॥
दोहा—आवै रण मैदान में, वाकों बल बतलाउं ।
देखों कैसा वह बली, छण में गर्व मिटाउं ॥
रिसयुत यों कह दूत को, दीना तुरत निकार ।
दूत जाय रावण निकट, यँह का वृत्त उचार ॥

वृत्त सुनत रावण रिस धारी, सैन्य सजन दलपतिहिं उचारी ।
पुन मन मांहीं एम विचारा, जलाब मांहीं वरुण उचारा ॥
देवाधिष्ठित रत्नहिं पाके, इतरावै बल ताम लहाके ।
यातें ता बिन ताहि हराऊं, बांधों मारों पकड़ मँगाऊं ॥

दोहा—यों विचार द्रुत सैन्य युत, तँह को किय प्रस्थान ।
क्षण मँह तसु थल आयकें घेर लिया ता थान ॥
सुनत वरुण शत सुतन युत, भारी सैन्य सजाय ।
आया रिपु के सन्मुखें मारामार मँचाय ॥

मँचा युद्ध अति ही घनघोरा, लड़ें परस्पर ओर न छोरा ।
वरुण महा भट अति रिसयाये, भारी मारामार मँचाये ।
हटी सैन्य रावण जब देखी ठहरन शक्ति न उनकी लेखी ॥
आप उमग के सन्मुख धाया, को लख वरुण वेग ढिग आया ॥

दोहा—महाबली दोउ सिंह सम, मारामार मँचाय ।
मनो सिंह वन तज दोउ, भिड़े परस्पर आय ॥
शक्ति न कमती दुहुन की गर्जें रण मँह भूर ।
सेल बाण बरछी गदा, दुहु चलायँ भरपूर ॥

वरुण पुत्र शत अति बल वीरा, अरि दल पैं बरसाये तीरा ।
लख खरदूषण अति रिसयाया, वरुण सुतन पैं द्रुत ही आया ॥
महा बली खरदूषण एका, भिड़ा युद्ध में अरी अनेका ।
ऐसी मारामार मँचाया, क्षण मँह अरि को मार भगाया ॥

दोहा—वरुण सुतन ने वेग ही कीन्ह युद्ध घमसान ।
सेल बाण बरछी गदा मारे शास्त्र अमान ॥
खरदूषण को बांध के, कीन्हा शंख निनाद ।
देख सुतन की वीरता, सूखे अरि के गात ॥

रावण ने यों वृत्त लखाया, बंधन मँह खरदूषण पाया ।
द्रुत मन मँह या भांति विचारा हो अनहोनी चित्त चितारा ॥
है दलपति यह अरु बहनोई, या बिन काज सरै ना कोई ।
यदि अब कछु भी जोर दिखाऊं तदि तापै अति विपदा लाऊं ॥

दोहा—बिन दलपति के या समय, हुई सैन्य बेहाल ।
यों विवेक मन लायके, रण वर्ज्या तत्काल ॥
पुन मन्त्रिन सूं मंत्र कर, बुलाए नृप आधीन ।
वेग आव मो ढिग विषैं, यों आज्ञा द्रुत दीन ॥

नृप प्रहलाद ढिगै भी आया, जो रावण ने दूत पठाया ।
दूत नृपति को पाती दीन्ही नृप ने माथे चढ़ाय लीन्ही ॥
खोल पत्रिका बांची ताको, याविध अंकित तामें याको ।
सुनहु नृपति पहलाद सुवीरा गुणगण मंडित ज्ञान गहीरा ॥

दोहा—राक्षस वंश शिरोमणी रवि सम तेज दिपन्त ।
वशी किये सारे नृपति, खगकुल श्रेष्ठ महन्त ॥
विमुख वरुण नृपति हुआ, जो पतालपुर स्वामि ।
विद्याबल गर्वित तनुज शत गुणयुत अभिरामि ॥

तापै हमने कीन चढ़ाई, वाहू आकर रार मँचाई।
वाके सुत हैं अति वलवण्डा पकड़ा खरदूषण रणचण्डा।
रण वर्जित मन्त्रिन ने कीन्हें, हो अनहोनी शंका लीन्हें
यातें ढील करो मत वीरा, आवो वेग हमारे तीरा।

दोहा—बन्धन मुक्त करावना, खरदूषण दल स्वामि।
वरुण जीत आधीन कर नाका शीस नमामि॥
यह सब निर्भर आप पै, वेग ढिगैं मम आव।
तेज पुञ्ज यद्यपि रवी अरुण सारथी चाव॥

पत्र पढ़त प्रल्हाद महन्ता बुलाय सुत को नृपति तुरन्ता
आया सुत सब वृत्त वताया राज भार ल्यो ताहि सुनाया
सुन पवनंजय गिरा उचारी, सुनहु तात ये विनय हमारी
हमरे होत आप क्यों जावें, धिक सुत जा पितु कष्ट उठावें

दोहा—यों सुन पितु हर्षित हुये, कहा सुनहु सुत वात।
अभी न रण के योग्य तुम, है लघु वय लघु गात॥
तीच्ण शस्त्र रण मँह चले, कठिन झेलनों जान।
याते अभी न भेजहों, पुन कीजो प्रस्थान॥
सुन पवनंजय कह शिर नाके, अरि विध्वंसों रण मँह जाके

लघुता तात कहा उच्चारी, मो मन संशय कीन्हा भारी
केहरि सुत गज मत्त पछारैं, अग्नि फुलिंगा वन को जारैं
इन्द्र न समरथ जीतन मोकूं, रण उत्साह कौन विध रोकूं

दोहा–सुनत पुत्र के यों वचन, फूला नांहि समाय ।
कहा धन्य कुल दीप तूं, कँह तक महिमा गाय ॥
वीर वंश का तूँ तिलक, सोहै सूर्य समान ।
नादो विरदो जगत में, कीरत होय महान ॥
यों कह सुत को गले लगाया दीन्हीं आशिष अति सुख पाया ।
पुन जननी के ढिग ये आके, मांगी विदा शीस को नाके ॥
सुनत माय उर हर्ष लहाई वीर प्रसवनी माय कहाई ।
सुत मुख चूम आशिषा दीन्ही, विजयआशको चितमंहलीन्ही ॥
दोहा–पवनंजय मिल भेंट कर; श्री जिन मन्दिर जाय ।
दर्शे प्रभु थुति पूज कर, फूला नांहि समाय ॥
वीरन को उत्साह हो, चलें जभी रण हेत ।
मंगल युत सज सैन्य को, गवने हर्ष समेत ॥
फड़का दक्षिण भुज तब याका, मनो जतावै विजय पताका ।
यों हो हर्षित चलन विचारे, लखी अंजनी थंभ सहारे ॥
खड़ी मना पाथर की मूरत, अचल निमेष द्यावनी सूरत ।
प्रभा रहित तन दुख की मारी, यों पवनंजय प्रिया निहारी ॥
दोहा–लख पवनंजय कुपित हो, मनो नागिनी दीख ।
जहर उगलती दृष्टि सों, या सम लागी सीख ॥
तज अनिष्ट सम रुपित ह्वै, बोले वचन कठोर ।
मनहु तोप गोला तजो, दाहन को चहुं ओर ॥

खड़ी हुई क्यों सन्मुख आके, विद्युतसम निजअसर दिखाके।
कँह से इतनी पाइ ढिठाई, महावँश की सुता कहाई॥
मनें किये भी सन्मुख आती करत अवज्ञा नांहि लजाती।
याविध याको अति दुतकारी, गाज गिरी जनु चुभी कटारी॥

दोहा—तऊ अंजनी चित विषें, समझी अमृत पीय।
वचन पियाके अमिय सम, स्वागत कर ले लीय॥
इमि सुख भासो उर विषें, मानो चन्द्र चकोर।
छवि निरखी मैं पीय की या सम सुख न और॥

हाथ जोड़ अंजनि शिर नाके, बोली मिष्ट वयन सुख पाके।
सुनहु नाथ इक विनती मोरी विनय करत हों दुइ कर जोरी॥
आप विराजे गृह मँह जानो, हुई वियोगिन तउ सुख मानो।
समझी कबहुं कृपा हो जैहै, कबहुं तो पति सुध मो लैहै॥

दोहा—निबलपणा तें वच करै, अरु पद डिगडिग जाय।
नीठ नीठ वच नीसरें, थर थर कम्पै काय॥
पति हेरे बोले तऊ, चित मँह लिय संतोप।
अपनो अशुभ विचारवै, पती पूर्ण निरदोप॥

पुन विनवत या विधै उचारी, सुनहु नाथ अतिविनय हमारी।
आद गमन की सुन मैं आई वचनामृत पिउ आश लगाई॥
आप सबहिं को धीर बँधाये, पशु पक्षिन पै दया दिखाये।
मोकों आशिश देके तोषो, वृथा काह से मोपै रोषो॥

दोहा—करहु दया मोपै प्रभो शरणागत प्रतिपाल ।
क्षमिये मेरे दोष को, हुई बहुत बेहाल ॥
जियूं कौनविधि तुम बिना, मन नहिं धैर्य धराय ।
जीवन से मरणा भला, पति बिन कौन सहाय ॥

याविध सति ने थुती उचारी, विनय दीनता कह दइ सारी ।
तउ पवनंजय नांहि पसीजे, इतने पै भी नांही रीझे ॥
कुपित होय इमि गिरा उचारी; मरो जियो नहिं हानि हमारी ।
यों सुन अंजनि मूर्छा खाई, गिरती लता न आश्रय पाई ॥

दोहा—पवनंजय लखि यों दशा, तउ न पिघले आप ।
निरदयता ही छा रही, उल्टा हो आताप ॥
मनो जहर की बेल को छुये जहर चढ़ जाय ।
तजी प्रिया अति रुष्ट हो, गवने दल युत धाय ॥

मान भंग का अति दुःख छाये, याने सखी से कुवच कहाये ।
चिन्तन होत तीर सब भेदै, सारे तन को द्रुत ही छेदै ॥
धिक धिक ऐसी मान कषाया, लखत दशा यों दया न लाया ।
मरण समान वेदना धारै, पुन पुन दीरघ सांस निसारै ॥

दोहा—गजारूढ़ द्रुत हो कुँवर, मित्र सैन्य ले लार ।
मनो इन्द्र ही निकसवै, सुरयुत स्वर्ग मँझार ॥
गमन करत आये जबै, मानसरोवर तीर ।
डेरा डाला सैन्य का, रचा भवन गम्भीर ॥

आप मित्रयुत भवन विराजे, सूर्य अस्त की वेला छाजे।
शीतल मंद सुगंध समीरा, वहती मानसरोवर तीरा॥
निर्मल नीर फटिक सम देखा, जलचर क्रीड़त लख सुखलेख॥
इक चकवी तो तहां लखाई, भ्रमत फिरत अतिही अकुलाई॥
दोहा—चकवी चकवा के बिना तड़फै इत उत धाय।
आकुलता छाई घनी, दुस्सह दुःख वताय॥
पति वियोग ना सह सकै, क्षण हू वर्ष समान।
क्षण में नभ मँह जा उड़ै, पुन महि पै द्रुत आन॥
जल मँह निज प्रतिबिम्ब लखाई, समझी पति को अब मैं पाई।
हो अति आतुर ताहि बुलावै, ढिग प्रतिबिम्ब कहां से आवै॥
घनी किलपति याको देखी, पतिविरह दुख असह सुलेखी।
पवनंजय चित छाइ उदासी, बड़ी भूल अब निजकी,भासी॥
दोहा—बिना प्रयोजन दुःख दियो, तिय का ना अपराध।
कुवच कहे सखिने मुझे, उपजा व्यर्थ विवाद॥
पति वियोग दुस्सह दिखत, सह न सकै तिर्यंच।
तो नारी किम सह सकै, जाका दोष न रंच॥
बाइस वर्ष बिताई कैसी, तड़फी होगी चकवी जैसी।
चकवी को पति पुन मिल जावै, रैन कटै पै मिलन लहावै॥
दिवस रैन तिहिं इकसम जाई, कबहु मिलन की घड़ी न आई।
मैं निर्दय ने कीन निरादर, गमन समयभी किया न आदर॥

दोहा–कितनी विनय सुदीनता, गमन समय दिखलाय ।
मूर्छा खाके गिर पड़ी, तउ चित दया न आय ॥
पाथर से भी है कड़ो, मेरो हृदय मलीन ।
अब उपाय काविध करूं, प्रिया मिलन लवलीन ॥

कैसे प्रिया मिलन अब पाऊं, जियत मुई किम सुरत लखाऊं ।
वा बिन जीवन अब हो कैसे, जियत न मीन नीर बिन जैसे ॥
कासे कहूं मिलाव प्रिया से, मुख मुरझाया चिन्तत यासे ।
लखी मित्र गति याविध याकी, कहा कहो है चिन्ता काकी ॥

दोहा–वीर न भय रणसे लहत, ना चिन्तें क्या होय ।
होनहार सो अमिट है, मेंट सकै ना कोय ॥
क्षत्री कुल के वीर नर, लह रण का उत्साह ।
धिक जीवन उनका कहा, लहैं हृदय मँह दाह ॥

या कछु और व्यथा तन छाई, मुख की कली सहज मुरझाई ।
मन मँह हो सो शीघ्र बतावो, छाया सम तुम मुझे लखावो ॥
लखो भेद ना कछु भी मोमें, भेद न समझूं मैं भी तोसें ।
व्यापी चिन्ता वेग बतावहु, मेरे हिय की शल्य मिटावहु ॥

दोहा–सुनत वचन यों मित्र के, कुँवर सकुच हिय मांहि ।
कहा कहूं कैसे कहूं, समझ परै कछु नाहिं ॥
गृह नहिं पूजी नागिनी, बामी पूजन जावँ ।
यही कहावत मो भई, कहत बहुत लजावँ ॥

इतने दिन तक प्रिया न चाही त्यागी ताहि तुरत की ब्याही ।
गमन समय ताको ठुकराई, विकल गिरी महि मूर्छा खाई ॥
विदा लेय जब रण को चाले, व्यथा तिया की हिरदय साले ।
यों चिन्तत पुन चुपकी लीन्हें, कछु न उत्तर वाको दीन्हें ॥

दोहा—मित्र लखी चिन्ता घनी, उर से लियो लगाय ।
आश्वासन दीनो घनो, कहहु चित्त की चाय ॥
सुख दुख साथी मित्र हो, मोसों मती छिपाव ।
प्राण जायँ तउ पूरहों, तुम मत चिन्ता लाव ॥

तप्तलोह पै जल की बूंदें, प्रगट नहोवें जिमि दिठि मूंदें ।
यों हमसे तुम हिरदय कहा का, लख ना परै अन्य को वाका ॥
कौन भांति तुम को समझाऊँ, बिन जाने का यत्न रचाऊं ।
जासों व्यथा तिहारी नाशै, रण उत्साह हृदय परकाशै ॥

दोहा—यों पवनंजय सुनत ही, नीठ नीठ बतलाय ।
सुनहु मित्र मेरी व्यथा, मोपै कही न जाय ॥
महा अधमपन मैं किया, ऐसा करै न कोय ।
बिना दोप तिय कों तजी, व्याप रहा दुख सोय ॥

रंच न दोप हुआ था वाका, समझ लिया मैं व्यर्थ प्रियाका ।
कुवच कहे सखि ने मनभाने, ये भोरी का मोकूँ जाने ॥
मैने वृथा दोप मढ़ दीन्हा, इसविधि ताहि दुखी अति कीन्हा ।
अब मैं वाका संगम चाहूं; चाह दाह किस भांति निबाहूं ॥

दोहा—जो न होय प्रिय मिलन तो प्राण तजूं प्रण ठान ।
झूठ न यामें जानियों, सुनहु मित्र सुखदान ॥
और भांति निबहै नहीं, कोटक करो उपाय ।
तुम पूंछी मैं कह दई अपने हिय की चाय ॥

सुन प्रहस्त मन मांहि विचारी, रण के हेत करी तैयारी ।
लौट जायँ तो लज्जा आवै, बिना विजय किम गृह को जावै ॥
दूजे अब तक तजी प्रियाको, किम बुलायँ अब लायँ यहां वो ।
कुल की लाज जाएगी यातें, अन्य उपाय करूं अब तातें ॥

दोहा—यों विचार संध्या लखी, सिद्ध होन के काज ।
गोप्य चलन सूझी तबै, मिलन कराद्यूं आज ॥
दलपति वेग बुलायकें, वाको आज्ञा दीन्ह ।
मेरु वन्दिवे जात हैं, तुम सुपुर्द दल कीन्ह ॥

यों वह गोप्य चले यहां तें, पहुंचे अंजनि गेह तहां तें ।
जब अंजनि कछु आहट पाई, सभय हृदय सखि तुरत जगाई ।
कही लखहु को अंदर आवै, सखि जाग कर अस्त्र उठावै ।
कुपित सिंहनी सम हो ठाड़ी, कही कौन इम वचन दहाड़ी ॥

दोहा—लख प्रहस्त अचरज लियो, विहँसत याहि बताय ।
सुनहु सखी संगै कुँअर, विना वुलाए आय ॥
सुनत अंजनी सकुचकें, कहे वचन अति दीन ।
कहा हास्य मेरी करत, निरपराध तज दीन ॥

कीन अवज्ञा पिय ने मेरी, यासे हिम्मत यों हुइ तेरी ।
अशुभोदय से मिली असाता, अन्य कोय ना दुःख का दाता
स्वप्न मांहि भी पति ना पाई, सुख की घड़ी कबहुँ ना आई ।
यातें हास्य करन को आया, सुन प्रहस्त यों भटमुस्कयाया ॥

दोहा—कहा अशुभ अब दूर ह्वै, शुभ की घड़ी लखाय ।
यातें पिय अब प्रेम वश, पास तिहारे आय ॥
कृष्ण विपक्ष वितीत हो, शुक्र सपक्षो होत ।

दिवस गये निशि आगमन निशि गत दिवस उदोत ॥
सुनत अंजनी हिय हुलसाई, घड़ी स्वप्न या सांचो आई ।
विहँस सखी यों वयन उचारी, पुण्योदय जल बरसा भारी ॥
खेती पकै सुःख सब पावै, अशुभ नशै पुण्योदय आवै ।
प्राणनाथ अब महल पधारे, करें प्रेम हों मंगल सारे ॥
दोहा—यों कह सखि अरु मित्रदोउ, बाहर महल सिधाय ।
तबहिं कुंवर आनंद युत, अन्जनि के ढिग आय ॥
बाइस वर्ष वितीत ह्वै, कबहुं न यों सुख होय ।
जैसो लख अब दम्पती, कहवे सक ना कोय ॥
पांव पलोटी सति ने याकी, धन्य घडी यह मिलन पिया की ।
पवनंजय मृदु वयन उचारे, क्षमो सभी अपराध हमारे ॥
करी अवज्ञा मैंने भारी, अति निठुरता हिय मँह धारी ।
यातें पायँ पड़त मैं तेरे, क्षमो दोष सब जो ह्वै मेरे ॥

दोहा—यों कह ज्योंही झुके ये, त्यों ही सति शिर थाम ।
कहि अनुचित क्योंकरत यों, मैं दासी तुम स्वामि ॥
अशुभ कर्म मेरा हुतो, विछोह तानें कीन्ह ।
शुभ आयो तब नियम से, तुम मिलाप कर दीन्ह ॥

चरणन की रज जानो मोकों, अनुचित विनय करन को रोकों ।
भूले प्रात सांझ घर आये, तो भूले प्रभु नांहि कहाये ॥
यातें विसरो सब गत बातें यों अंजनि ने कही पिया तें ।
मिल पति पत्नी लहि सुखसाता, सुख से फूले दम्पति गाता ॥

दोहा—याविध हुओ मिलाप शुभ, पुण्योदय जब आय ।
हो वियोग नहिं मिल सकै, प्रबल पाप रस पाय ॥
यों शुद्धातम का मिलन, भव्य जीव के होय ।
'नायक' शुद्धातम भजत, शिवपददायक सोय ॥

॥ इतिअष्टविंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

❀ अथ पवनंजय की अंजनी से विदाई वर्णन ❀

❀ वीर छन्द ❀

हुआ प्रभात निशातम नाशा, उठी अंजनी तज कर सेज ।
पिया चरण युत परसन लागी, कुलवंतिनि की रीति सहेज ॥
भूली व्यथा वियोग काल की, ह्वै प्रसन्न चित पुलकित गात ।
पाकर अतुलित निधि जीवन की, हुई आज यह पूर्ण सनाथ ॥

दोहा—अभिलाषा पूरी हुई, पा अवसर अनुकूल ।
पवनंजय निद्रित हुये, सारी चिन्ता भूल ॥
सुख समय ना लख परै, कहां निशा गइ बीत ।
पवनंजय को सुध नहीं, लखै स्वप्न तिय प्रीत ॥

रजनी गई उदित अरुणाई, चिन्ता प्रहसत मनहि समाई ।
कुँअर आगमन यदि कोउ जानें, सबही इनको निन्दा ठानें ॥
गृहे रहे गृहिणी न सुहाई, जब गृह तजो रुचि तसु आई ।
लोक लाज हू इनने लोपी, न्याय नीति इन सकल विलोपी ॥

दोहा—यों विचार सखि से कहा, कुँवर जगावो जाय ।
कहो लौट पुन कीजियो, स्वागत प्रिय अपनाय ॥
यों कह सखि भेजी ढिगै, आपहु कीन्ह प्रवेश ।
लखा कुँवर को सेज पै, पौढ़े मनो सुरेश ॥

विहँसत प्रहसत बोले बानी, जगहु कुँवर अब निशा सिरानी ।
सुनत वचन पवनंजय जागे, तिय की ओर निहारन लागे ॥
अर्धोन्मीलित नयन जँभाई, अंग मांहि उठती अलस्याई ।
रात्रि जागरण चिह्न प्रकासे, अभी कुँवर को दिन ना भासै ॥
दोहा--विहँसत मित्तर सों कहा, शीघ्र बीत गई रैन ।
निद्रा पूरी ना हुई यातें तन बेचैन ॥
चलहु शीघ्र मैं आउँगो, करहौं नांहि बिलम्ब ।
यों कह वाद्य पठाय अरु, सखिय सोय अविलम्ब ॥
मुलकत तिय की ओर निहारा, मनहु प्रेम चिर उमड़ा सारा ।
कहा प्रिये सुन प्राण प्यारी, हृदय बसी अब छवी तिहारी ॥
अब ना भूलों कबहूं तोको, रण मँह गमन अभी ना रोको ।
विजय पताका फहरे ज्योंही, तुरत लौट ढिग आऊं त्योंही ॥
दोहा--रणोत्साह पियका लखत, चितमँह हुई निराश ।
किन्तु प्रेम पिय का निरख, मनमँह बांधी आश ॥
सुन पीतम के मधु वच, मन ही मन हरषाय ।
विदा करन उद्यत हुई, बोली चित सकुचाय ॥
नाथ खुशी से रण को जावो, रिपुहिं जीत द्रुत घर पर आओ ।
किन्तु विनय मेरी चित दीजै, मात पिता से अब मिल लीजे ॥
निजागमन का वृत्त बताकें, दै संतोषो उन्हें जताकें ।
यों कह अंजनि शीस झुकाई, पिय चरणन में दृष्टि जमाई ॥

दोहा–प्रिया समस्या को कुंवर, समझे द्रुत मन मांहि ।
गर्भस्थिति की कल्पना, अन्य बात कछु नाहिं ॥
यों प्रसन्नमन प्रिया को, कड़े मुद्रिका देय ।
रखो निशानी कर विषें, कोय न शंका लेय ॥

यों कह तिय को गले लगाई, मनहु पर्ण चिर आश बुझाई ।
अरुण कपोल सुदेख सजीले, नयन झुके भू ओर लजीले ॥
फरकत अधर ना निकसें वैना, उठ पुनि गिरत बावरे नैना ।
अंग चपलता पुनि पुनि देखी अन्तर हृदय सुहावन लेखी ॥

दोहा–मित्र देख रवि अरुणता, क्षण क्षण बढ़ती जाय ।
कुँवर न निकसै तउ अबै, चित मँह अति अकुलाय ॥
उच्चस्वर कर शब्द किय, सुनहु कुँवर मम बात ।
समय चूक पछताव पुन होय हृदय आघात ॥

रावण देखै बाट तिहारी, वाको आशा तुमपै भारी ।
भृत्यों से पुन पुनहु उचारे, कँह पवनंजय डेरा डारे ॥
कब तक आगम होगा वाका, यातें देखहु साज वहां का ।
पाके विजय लौट द्रुत लीजे, स्वागत खूब प्रिया का कीजे ॥

दोहा–सुनत कुँवर विहँसे तबै, दृष्टि तिया पै कीन ।
चलने को उद्यत हुये, शीस नाय तिय दीन ॥
अखि माला पहिराय पुन, जय जयकार उचार ।
चिरजीवो फूलो फलो, सब जीवन सुखकार ॥

युग लोचन प्रेमाश्रु ढारे, हिय की प्यास बुझावन हारे ।
श्रद्धांजलि दै परिचय दीन्हा, सबविध मंगल चित मंह लीन्हा ॥
आनन कलियां सब विकसाईं ; ब्याह समय से थीं मुरझाईं ।
मिटो दुखद अब संकट सारो, यों अंजनि मन मांहि विचारो ॥
दोहा—कँह पवनंजय अंजनी, बाइस वर्ष विछोह ।
मिले छणक मँह दंपती, अति उपजाया मोह ॥
हे जगवासो मत फंसो, जग माया के बीच ।
'नायक' रमो स्वरूप मँह, जहां न माया कीच ॥

॥ इति एकोनत्रिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
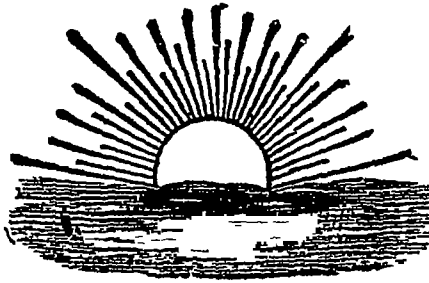
अथ अंजनी का गर्भ प्रगट होने पर सासू के द्वारा गृह तें निकासन वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

समय वितीतो सुखमय तबही, गर्भ अंजनी उर प्रगटेय ।
पान्डुरता अति मुख पै छाई, बैठत उठत जंभाई लेय ॥
गर्भवृत्त जब सुना सासु ने, काली नागिन सी गति धार ।
वधु ढिग आय कुपित ह्वै बोली, फण उठाय मनु जहर निसार ॥

दोहा—डायन कुलटा पापिनी, सेया अधम विकार ।
दोई कुल की लाज तूं, डुबा दई मँझधार ॥
किय अनिष्ट दुष्कृत दुखद, कहा कहूं अब तोय ।
कहत लाज दुख ऊपजै, अति दाहै हिय मोय ॥

सुन निष्ठुर वच सास कही जो, मनो कटारी हिय धँसी हो ।
या ज्यों वाघिनि वन से आई, भृकुटि चढ़ाय नयन अरुणाई ॥
वदन भयानक पुच्छ उठाके, कीन्ही जिह्वा लपलप आके ।
तासम सूरत देखी याकी, सुध आयी या समय पिया की ॥

दोहा—कही पिया मानी नहीं, जिमि चिन्ती तिमि होय ।
हे भगवन ! अब का करूं, दुखदाई ह्वै मोय ॥
बाइस वर्ष विछुड़ कर, पुन संगम पति कीन्ह ।
यों संगम के वृत्त का नांहि जतावो दीन्ह ॥

अति आकुलता हिय महँ धारी, नीठ नीठ यें वयन निसारी ।
सुनहु सासु जी वयन हमारे' आये मो ढिग पुत्र तिहारे ॥
मैंने बहुतक विनय बतावा' मात पिता से देव जतावा ।
पै उन कड़े मुद्रिका दीन्हें' आश्वासन दे तोषित कीन्हें ॥

दोहा—लखो निशानी पुत्र की, संतोषो चित मांहि ।
मती उचारो कुवच यों, शंकास्पद थल नांहि ॥
यों कह दुहु कर जोड़ पुन, सासु चरण गह लीन्ह ।
विनय करत यों अंजनी' सासु धमाका दीन्ह ॥

मुझे सिखावन कुलटा आई, सुत आगम ना कहत लजाई ।
जा दिन से तें दिहरी नाकी, ता दिनसे ना मिलन पियाकी ॥
सुत समझाके मैं बहु हारी' कबहुं न मानी बात हमारी ।
स्वप्न मांहि न तोको चावें' वह पुन तो ढिग कैसे आवे ॥

दोहा—कड़े मुद्रिका काहु विध' पाय रचत यह जाल ।
और न मोकों जानियें, छिपे न मोसे चाल ॥
तूं कल की है छोकरी' मुझे सिखाना देत ।
मिष्ट जहर तूं उगलती' पाप छिपावन हेत ॥

विसंवाद लख सखी उचारी' सुनहु माय अब विनय हमारी ।
मानसरोवर तटते आये, रैन समय प्रभु यहां विताये ॥
यामें शंका माय न मानों' दई निशानी सो पहिचानों ।
कड़े मुद्रिका अहैं उन्हीं के' छुये चरण पुन सासू जी के ॥

दोहा—विधिवश दुहुन विछोह हो, विधिवश हुवो मिलाप ॥
शंको ना चित के विषें, याविध सखि आलाप ।
बहु संतोषी माय को, तउ न गहा विश्वास ।
वधू ढिगै रहती सदा, ताकी दासी खास ॥

कुलटा दूती एक कहावै इन व्यभिचारहिं को लख पावै ।
कितनउ सांचे वचन उचारें, तउ न दोष निज कबहुँ निसारें ॥
का विश्वास इनों पै लाऊं, गयो पुत्र कह रण को जाऊं ।
कैसे लौट तिया ढिग आवै, सखि हू याकी बात बनावै ॥
दोहा—यों चिन्तत भ्रकुटि चढ़ी, नयन छाई अरुणाइ ।
मनहु प्रलय उमड़ो अबै, दशों दिशा कम्पाइ ॥
याका सारा तन कपै फरकें अधर विशाल ।
यों आकृति याकी भई, डसन चहत जनु काल ॥
अंजनि सासु नयनन बहाय आंसू, तदपि न पिघली दुष्टा सासू ।
यों विचार कीन्ह मन मांही, अब गृह मांहि रखं वधु नांही ॥
कुल कलंक मैं नांहि लगाऊं, सखिय सहित पीहर भिजवाऊं ।
रहे वधू ना तब को जानें, नशो बांस बांसुरि किम आनें ॥
दोहा—निशि के व्यापै तिमिरहो बिन निश तिमिर न छाय ।
दाग लगन का चिन्ह हो, तबहिं दाग लग जाय ॥
यातें दुहुन निकास द्यूं, को जाने या बात ।
ऐसो निश्चय ठान हिय, वेग करन आघात ॥

इम चिन्त्यात किंकर बुलवाया, ताको निज मनतव्य सुनाया।
सखिय सहित वधु लैके जावो, पीहर पुर ढिग तजके आवो ॥
दोउन को रथ में बैठारो, शीघ्र भृत्य ने रथहिं हकारो।
अंजनी हुई गाज की मारी, रँच न मुख तें वयन उचारी ॥
दोहा—यथा विध कासे कहूं, जो सुन लेय पुकार।
हुती आश तो सासु तक, सोई दीन्ह निकार ॥
विलख बदन निस्तेज हो, मनु पुतली है चित्र।
सोचै जो का हो गयो, कर्मन दशा विचित्र ॥
पीहरपुर ढिग भृत्य उतारो, अस्त होत अब सूर्य निहारो।
पीहर पैसन बेला नाहीं, याविध सोचो निज मन मांही ॥
शून्य हुई कछु नांहि उचारें, कर्मन दशा विचित्र विचारें।
बीती सांझ निशा अंधियारी, फैली चहुं दिशि बनी मँझारी ॥
दोहा—कौन कहै कर्मन दशा, कैसी का पै होय।
क्षण मँह सुख आभास हो, क्षणमँह अति दुख जोय ॥
यातें कर्म नशाव द्रुत, अविनाशी पद पाव।
"नायक" रमत स्वरूप मँह, जहँ न कर्म का दाव ॥

॥ इति त्रिशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ अंजनी का माता पिता कहां से निराश्रय होने का वर्णन प्रारम्भ

❀ वीर छन्द ❀

रजनी काली चादर ओढे, निज प्रभाववश तम फैलाय।
जुगनू चहुंदिश मांही चमके, कहुं कहुं कछु परकाश दिखाय॥
दादुर गुड़गुड़ इत उत बोलें, झींगुर रव बज रहा सितार।
शब्द भयंकर घू घू बोले, चमगीदड़ का नृत्य अपार॥
दोहा—शय्या पल्लव पुष्प की, सखि ने दई सजाय।
तापै पौढ़ी अंजनी, नयनन नींद न आय॥
चिन्तै यह का हो गयो, किस विधि पीतम प्रेम।
उपजा उनके हृदय में, करन महान अक्षेम॥
नियत नियम ने बात बनाई, ना पिय दोष कर्म कटुताई।
में पूरबभव अशुभ कमाया, उनने दुख रस यों दिखलाया॥
हाय हाय! किम रैन विताऊं, अपना सङ्कट काहि सुनाऊं।
भखै न कोऊ वनचर आकें, फटत हृदय नहिं हूक समाकें॥
दोहा—इस विधि चिन्त्य विलखती अंसुवन का ना पार।
जैसे घन गरजे विना, बरसै मूसलधार॥
लखें बिलपती या विधै, पशु पक्षी अकुलायँ।
बोल बोल निज वाणि वे, समवेदना जनायँ॥

तब सखि कोमल वचन सुनाये, विपदा विदारन हृदय सुहाये।
तजहु शोक आरहु संतोषा, कर्मविपाक हर्ष अरु रोषा॥
सासू दोष लगाय निकारी, हूं संग सेवा हेत तिहारी।
मेरे होत न आप विसूरो, कर्म वेदना निजवश चूरो॥

दोहा—साथ रहूंगी उसी विधि, ज्यों छाया तरु साथ।
सास सुसर त्यागा तुम्हें, मात पिता दें हाथ॥
सुख दुख की अनुभूति को, मानों नांहि विशेष।
श्रीजिन चरण चितारिये, जब तक कटे ना क्लेश।

बहुविध धीरज सखी बंधाई, जैसे शिशुहिं प्रबोधा भाई
या रोगी को वैद्य उचारै, या निर्धन को धनी उबारै॥
जग दुख को जिम धर्म निवारै, अमिय पानसम सुख विस्तारै
त्यों अंजनी को सखि संतोषै, चैन मिले याविध से तोषै॥

दोहा—त्यों त्यों कर रजनी कटी, अंजनि साता पाय।
स्वप्न में कोउ कहै, मां पितु हों सुखदाय॥
श्रीजिन भगवान को सुमिर, शीस नाय हरषाय।
कीन्ही मंगल कामना, श्री जिनराज सहाय॥

चली अंजनी हिय सकुचाती, मार्ग वेदना सही न जाती।
तउ ढाढ़सवश आगे चाली, होत वेदना दृष्टि न डाली॥
राजमहल में पैसन चाई, लख सेवक ने रोक लगाई।
कोतुम काहे पैसन चावो, अपना आशय मुझे बतावो॥

दोहा—यों सुन सखि वासों कही, राजा के ढ़िग जाव ।
कहो आगमन सुता का, भीतर वेग बुलाव ॥
सास ससुर काढ़ी इसे, गर्भी दोष लगाय ।
मातु पिता के नेह वश, दुःखिनि इन चर्मि आय ॥
हूं सखि सेवा को इस संगै, यों कह धारी हिये उमंगै ।
द्वारपाल सुन कर सब वातें, अन्य मेल्ह तब चला यहां तें ॥
आय नृपति ढ़िग शीस झुकाया, सुता आगमन वृत्त बताया ।
सुनत नृपति उर हर्ष अपारा, वेग पुत्र से वचन उचारा ॥
दोहा—साज सजाकें जाव द्रुत, आदरयुत ले आव ।
पांछे मैं भी आउंगा, तुम ना विलम लगाव ॥
हर्षित नृपको लख तवहि, विनय कियो दरबान ।
सुनहु प्रभो केवल सुता, सखिय संग मँह आन ॥
गर्भदोष तें ताहि निकारी, सास ससुर ने पुर ढिग छारी ।
यों सुन नृप ने लीन्ह उसासी, वेग वदन पर छाई उदासी ॥
क्रोधत ह्वै इमि वचन उचारा, अव नहि होवे मिलन हमारा ।
काढ देव द्रुत पुर से वाको, मुख ना देखूं अब मैं ताको ॥
दोहा—कर्ण वधिर नृप के हुए, सुनत वारता याहि ।
हुई कलंकित ना लखों, वेग निकासो ताहि ॥
दुहु कुलन की लाज को, डुबा दई मँझधार ।
शीलरत्न खोया सुखद, सेया अधम विकार ॥

महोत्साह सामंत उचारी, सुनहु प्रभो इक विनय हमारी ।
बिन निर्णय किम आप उचारो, सख्त हुकम दै सुता निसारो ॥
है वह अपनी सुता दुलारी, आई शरण विपति की मारी ।
सखि से पूछ ठीक कर लेवो, पांछे चाहै हुकम जो देवो ॥

दोहा—जानत थे सब पहिले से, साध्रु क्रूर स्वभाव ।
शील शिरोमणि अंजनो, कर ना सकै कुभाव ॥
विना दोष दोषित कियो, मोको जँचता येहु ।
यातें बिन निर्णय किये, यों आज्ञा ना देहु ॥

वाको केवल शरण तिहारो, बताव वाको कहां सहारो ।
काके शरणों अब वह जावै, जासे अपनी विपति सुनावै ॥
माता पिता ना आश्रय देवै, तो पुन काको शरणा लेवै ।
द्वारपाल ने वाको टोकी, गृह मँह पैसन जबरन रोकी ॥

दोहा—मरण वेदना सम लही, कह न सकत दुःख कोय ।
कै जानें भगवन सही, के जाके हिय होय ॥
वैसे ही हिरदय दुखी, और गर्भ का भार ।
तदपि काढ़ते हे प्रभो, पटकत प्रबल कुठार ॥

इतने पै यदि नाहिं पसीजे, मनो बधिर हैं नांहि सुनीजे ।
तप्त लोह पै ठहर न नीरा, रंच न भासी वाकी पीरा ॥
सखि की साख न जँच में आई, छायासम तसु संग गहाई ।
यातें कैसे सांच बतावै, काविध मुझे प्रतीती आवै ॥

दोहा—मोकूं स्वतः प्रतीति नहिं पर को कैसे होय ।
कुयश फैल जल तेल सम हास्य करौ सब कोय ॥
बड़े कुलन की बालिका पालें शील महान ।
वे ही स्तुति योग्य हैं भाखे श्री भगवान ॥

जानें अपना शील गमाया, जियत मुई सम वाकी काया ।
शील महातम मुनि ने गाये याकी महिमा शास्त्र बताये ॥
अति ही अतिशय फैले ताको, गाढ़ शीलवृत पालैं वाको ।
सुर नर करें तास की सेवा, पावैं अंतिम शिवपुर मेवा ॥

दोहा—यों अतिशय हों शील के, अग्नि नीर हो जाय ।
सर्प माल सम परिणावै, जहर अमिय सम पाय ॥
सर्व विघ्न तत्त्वण नशें, यों लख शील प्रभाव ।
नर नारी तिरयंच हू, धरैं शील दृढ भाव ॥

व्याह हुवो नवसे पति रूठो, गर्भ रहै किम प्रश्न अनूठो ।
यानें निश्चय कुशील सेया, सासु निकासी समझी हेया ॥
यातें मैं भी रखों न याको, जो राखे मैं दंडों ताको ।
यों आज्ञा नृप वेग सुनाई, सुन सबने निज शीश चढ़ाई ॥

दोहा—द्वारपाल ने जाय द्रुत, नृप आज्ञा दर्शाव ।
दुर्लभ पैसन नृप भवन, वेग नगर से जाव ॥
सुन अंजनि मूर्छा लई, मां पितु हुये कठोर ।
पुन सचेत होके गई परिजन पुरजन ओर ॥

यह विचार करि बन्द किवारे, मनहुँ नांहि कोउ वस्तीवारे ।
काहू ठोर न आश्रय पाई, सब पुर मँह निर्दयता छाई ॥
मातु पिता आश्रय ना देवे, कौन बलाय आप शिर लेवे ।
यह विचार ढिग आय न कोई, प्राण नशैं मर्यादा खोई ॥

दोहा—अंजनि ने हू देख सब, सत्य यथारथ हाल ।
नृप ना आश्रय देय किम, प्रजा बुलावें काल ॥
यातें वन चलबो उचित, अन्य न दूजो ठाव ।
यों चिन्ती कह सखिय सों, यहां न ठहरन दांव ॥

चलहु सखि अब वेग यहां तें, हाय हाययँह आइ कहां तें ।
मा विष देय तौ पितु ढिग जावै, पिता तजै तो माय बचावै ॥
सबहि हनें तौ कँह को दोरैं, केवल नेह विपन सों जोरैं ।
अशुभ कमायो हमने जैसो, देवै वह रस निश्चय तैसो ॥

दोहा—यों कह किलपी अति घनी, जनु घन गरजै मेह ।
लोचन तें अश्रू भरें, कुम्हलाई सब देह ॥
अब तक यों दुख ना भयो, वज्र समान दिखाय ।
किसे सुनाऊं को सुनै, को अब होय सहाय ॥

यों लखि सखि बहु धीर बँधाई, सुख से भोगो अशुभ कमाई ।
वे न रहे जेहू ना रहेंगे, तरु छाया सम दूर भगेंगे ॥
यों कह ढाढस दीनों याको, कर गह वेग उठाया वाको ।
चलहु स्वामिन मैंहू संगै, पीय मिलन की धरो उमंगै ॥

दोहा—पहिलेविछुडे पुन मिलगये, पुन विछुड़े मिल जाय ।
धीरज धारहु चित मँह, सबहु नशै अकुलाय ॥
जानहु कर्म त्रिडंबना, सुख दुख जग का पाश ।
'नायक' नाशो कर्म को, प्रगटै निज सुख राश ॥

॥ इति एकत्रिंशतितम' परिच्छेदः समाप्त ॥

अथ अंजनीका दासी सहित वनविषें प्रवेश वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

दिखै ना कोई शरण सहाई, सखि सह वनमंह कीन्ह प्रवेश।
दुहू ठौर अपमानित होकें, दग्ध हृदय ह्वै अती कलेश॥
अति रुदनें लहि विह्वलताई, कम्पै हिय अरु सारो गात।
गर्भ भार की अती वेदना, इक पग यासे चलो न जात॥

दोहा—अजन सम हुई अंजनी, सूख गया तन चाम।
मुख आभा कुमलाइ सब, दिखै ढांच सब श्याम॥
सोचै पुन, पुन पुन कहै, कँह तक धीरज लावँ।
महा अशुभ आया उदय, काके शरणैं जावँ॥

महा विपति से कौन बचावे, जाणै भार रखो अब जावे।
जा दिन से कहलाई ब्याही, तादिन से पियने ना चाही॥
बाइस वर्ष बिछोहो मोकों, तादुख याद कौन विध रोकों।
जस तस कर पुन संगम पाई, अशुभ उदय की बेला आई॥

दोहा—गर्भ रहो ताही समय, मैं शंकी चित मांहि।
बहुत पिया सों हठ करी, जताव चूको नांहि॥
अपनी लाज छिपाय वे, नांहि जतावा कीन।
ता फल मैं यों भुगत जिम, जल बिन तड़फै मीन॥

मो पर स्वामि दया ना धारी, दियो दिलासा केवल भारी।
गर्भ प्रगट से पहले आऊं, विजय पाय ना विलम लगाऊं॥
कडे मुद्रिका देय निशानी, शकहि निवारन सिर्फ विरानी।
याविध तोपी वहुतक मोकों, मैंनी काविध दुख को रोकों॥

दोहा—यदि पिय हू यों जानते, लहै न कोउ विश्वास।
तो निश्चय से पूरते मेरे मन की आस॥
सासू क्रूर स्वभाविनी, ना विवेक कछु कीन।
बिन निर्णय कैसे तजूं, ये अवला अाते दीन॥

पै न दोष यों कीना वाने, आन वान को राखा तानें।
अवतक वधुमुख सुत ना देखा, गर्भ रहै किम चित भय लेखा॥
वाइस वरस विछोही जाकें कैसे संगम कोन्हा आकें।
या निर्णय किमचित मंह आवै, सखि की साख न मनमंह भावै॥

दोहा—दूजे स अनविज्ञ हैं कौन प्रतीती देय।
कड़े मुद्रिका वस्तु जड़, काविध साख कहेय॥
सचमुच हमको दे गयो, यातें गह संतोष।
याको दोष न रंच हू, यापै करहु न रोष॥

ना अपराध कीन्ह यों सासू, रंच न रोष लहूँ मैं वासु।
निज कर्त्तव्य कीन्ह जव वानें, पितु के शरण पठायो तानें॥
निज कुल लाज रक्षणों हेतू, समझे पितु आच्छादन केतू।
रंच न पैसन पुर मँह दीन्हा, अति ही कोप हृदय मंह लीन्हा॥

दोहा—अतिशय निरदयता करी, अति क्रोधातुर होय ।
सब ही को आज्ञा दई, राख सकै न कोय ॥
नहिं जनक अपराध कछु, है सब मेरा दोष ।
मेरे तीव्र विपाक से, सबने कीन्हा रोष ॥

यों चिन्तत हिय धैर्य समाया, भोगूं अपना अशुभ कमाया ।
होवै कोई रक्षक कैसे, कर्म विपाक उदय जब यैसे ॥
यदि ओ सबको मनहिं सुहानों, अशुभ उदय रस कहा कहानों ।
इष्ट अनिष्ट सुयोग वियोगा, पुण्य पाप फल योग कुयोगा ॥

दोहा—अशुभ समय अनुकूलता, सबकें दुःख सताय ।
सोई मोकों दुख भयो, अशुभहि अशुभ दिखाय ॥
गर्भ रहा अपवाद हो, सभी हुए प्रतिकूल ।
कोय न रक्षक अब दिखै, विधिहु नहिं अनुकूल ॥

मृग शिशुको ज्यों वधिक सतावै, चहूं ओर दव अग्निदझावै ।
जल अगाध लहरत लख आगे, प्राण बचावन कँह को भागे ॥
याविध हुई अवस्था मेरी, अशरण असह विपतिने घेरी ।
मतंग मालिनि अटवी माही, देवै शरण दिखै कोउ नाहीं ॥

दोहा—यों चिन्तत मूर्छित हुई, गिरि भूमि पै आय ।
दासी ने अति दुखित हो, याका शीश उठाय ॥
शीतल पवन झकोरसें, कछु सचेती कीन ।
दासी मृदु वच बोलिके, धैर्य याहि अति दीन्ह ॥

निज जंघा पै शिर रख याको, अति ही धीरज दीन्हा वाको ।
मातु समान ताह पुचकारै, वार वार वच मंजु उचारै ॥
सेवा को हूं संग तिहारे, रंच न दुख हो संग हमारे ।
स्वयं आप चित समता धारो, निज करनी फल भोग विचारो ॥

दोहा—होनहार होकर रहत इन्द्र चक्रिकें होय ।
तावश दुख वेहु सहत, मेंट सकत नहिं कोय ॥
याते अब धीरज धरहु, नांहि कीन्ह अपराध ।
अशुभ नशै शुभ प्रगट हो, मिटै सकल अपवाद ॥

यों धीरज दै उठाय ताको, निज कर आश्रय चलाय वाको ।
समय प्रसूती आय नियराई, चलो न जात हुई गरुवाई ॥
सूर्य ढको अँधियारी फैली, तृण अच्छादित दिखै न गैली ।
डाभ अणी तें दोउ पग फाटे, रुधिर वहै पुन चुभते कांटे ॥

दोहा—विचरें सिंह मतंग तहां, अजगर करत फुङ्कार ।
देवन को हू वन अगम, खजन गको भयकार ॥
महा सघन तरु तँह लसें लतिका मण्डप छाय ।
दुर्गम वनी भयावनी, अंजनि हिय कँप जाय ॥

रतन भवन में निवास कीन्हा, गृह तें वाहर पग ना दीन्हा ।
आइ अचानक विपदा भारी, कांटन उरभी सुरभी सारी ॥
थके पांव अतिशय दुख भासे, बैठी रुदन करत अब यासे ।
हाय हाय ! कह रुदन मचाई, वनचारिन हिय हिलकी आई ॥

दोहा–रोवैं घन के जीव तँह, समवेदन प्रगटाय ।
धीर बँधावैं प्रिय सखी, सुनहु स्वामिनी माय ॥
निकट गुफामँह तिष्ठकें, प्रसव समय निपटाय ।
विनय करत हूं मान लो, यों कह ताहि उठाय ॥

स्वामिन मानहु बात हमारी, श्री जिन भगवन हैं दुखहारी ।
जाहि समय पै जस हो होनी, धीरज से तस कटती बोनी ॥
महत पुरुष भी बचें न यासे, दुख ना छूटैं कह पुन कासे ।
गुफा माँहि द्रुत यातें चालहु, आई विपदा भार उतारहु ॥

दोहा–यों सखि धीरज देय कर जस तस पहुंची दोय ।
भययुत तिष्ठीं द्वार पर, जन्तु न भीतर होय ॥
भय नाशक निज रूप है, प्रगटै जा चित माँहि ।
'नायक' रमत स्वरूप नित, शिव लह संशय नांहि ॥

॥ इति द्वयत्रिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ गुफा विषें, चारण मुनि के दर्शन का लाभ, पुन मुनि के द्वारा पुत्र के और अपने पूरब भव श्रवण वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

कछुक समय विश्राम लेय दोउ, भय निवार पुन कीन्ह प्रवेश।
गुफा बिना अब शरणा नांहीं, संकटहारी सर्व कलेश॥
यों चिन्तें पुन तंह पर देखें, बैठे श्री गुरु जगदाधार।
ध्यान लगायें आसन मांड़े, विमल चन्द्र सम दुती विस्तार॥

दोहा—तेज दिवाकर सम दिपै, नाशादृष्टि लगाय।
शान्त छवी अमलान लख, मानो थम्भ सुहाय॥
गुण गहराई सिन्धु सम, पवन समान अलिप्त।
निर्मल हैं आकाश सम, गुण उचरे संक्षिप्त॥

सम्यक तीन रत्न के धारी, गुणगण संयुत आत्म विहारी।
श्री मुनिवर को अंजनि देखो, नशो अशुभ तत्र मनमँह लेखो॥
हाथ जोड़ तब शीस नमाई, मन मँह फूली नांहि समाई।
कहै धन्य है भाग्य हमारो, आवत या थल ऋषिहिं निहारो॥

दोहा—करुणासागर अचल धन, रमो सदा चिद्रूप।
आत्मविहारी सुगुणगण, सोहै मूर्ति अनूप॥

कँह तक गुण वर्णन करूं, मोमें शक्ती नाहि ।
यों कह दीन्ह प्रदक्षिणा, दोउ हरखी मन मांहि ॥
चरणन मांहि दृष्टि जमाई, पुन अंजनि यों वयन उचाई ।
यद्यपि हो प्रभु आत्मविहारी तद्यपि पूछें कुशल तिहारी ॥
लोकाचार कहावे ऐसो, विनय करें यों हमहू तैसो ।
यातें नाथ सुधा वच प्यावो, अज्ञानिन की तृषा बुझावो ॥
दोहा—तीन ज्ञान धारी मुनी, जिन वच सुधा समान ।
अवधिज्ञान बल सब लखो, को ये काहे आन ॥
पुन बोले बेटी सुनहु, श्री जिन चरण प्रसाद ।
सदा रहै हमरी कुशल, चितमँह अति आल्हाद ॥
भ्रमत सदा से सुख नहि पाया, मोहमद्य ने जगत भ्रमाया ।
पुण्य योग नरदेही पाई, तामँह पुन रुचि संयम आई ॥
सोई कुशल हमारी जानो, विन संयम धृग जीवन मानो ।
चाहे पढ़ल्यो जितने पोथा, बिन संयम है नरभव थोथा ॥
दोहा—विना आत्मरस स्वाद के निजानंद ना होय ।
विषय कषायन में रमें, सुख पावै ना कोय ॥
यातें सम्यक्त्रय भजहु, कर्म स्वतः नश जाय ।
गुण अनंत प्रगटें अमल, अविनाशी पद पाय ॥
तूं महेन्द्र की सुता दुलारी, पवनंजय की है तूं नारी ।
पूर्व कर्म कमायो जैसो, ता फल तूंने पायो तैसो ॥

अशुभ बंध बांधो अति गाढ़ो, पति वियोग दुख दायक आडो ।
पुन शुभ विधि पति मे लाय दीन्हो पुनः अशुभ सुख विछोह कीन्हो॥

दोहा–जो कुछ हुआ निमित्तवश, ना काहू का दोष ।
परका ना अपराध कोउ, करो जास पै रोष ॥
यातें अब गह तोष को, भजहु धर्म बलवान ।
दुखभंजन सुख करन गह देव शास्त्र गुरु आन ॥

सुन ऋषिवच मनु सुधा पिवाये, माता चितमँह अति उपजाये ।
ऋषि से सखि यों गिरा उचारी, स्वामिन क्यों दुख पाया भारी ॥
पति विछोह हो कारण कैसो, हुआ समागम पति से जैसो ।
गर्भ मांहि जिय कँह तें आया, जानें यों अपवाद मँचाया ॥

दोहा–गर्भ मांहि ना आवतो, काहे सासु निकास ।
काहे पीहर जायकें होती तहाँ निरास ॥
सब मँह कर्म प्रधानता, दुख सुख रस दिखलाय ।
अंतरयामी हो प्रभू, आप हमें दर्शाय ॥

यों सुन ऋषि ने वयन उचारो, उत्तर सुन जो प्रश्न तिहारो ।
प्रथम पुत्र के भव दर्शाऊं, पीछे याका भव बतलाऊं ॥
क्यों अपराध पुत्र पै दीन्हा, नांहीं लखो जो तुमने कीन्हा ।
पुत्र होयगा चरम शरीरी, वाके भव की हुई अखीरी ॥

दोहा–जम्बूद्वीपहिं भरत मँह, मन्दिर नामा ग्राम ।
प्रियनंदैक ग्रहस्थ के, जाया नामा बाम ॥

तासु पुत्र दमयन्त इक, दया क्षमा गुणवन्त ।
दर्शनीय ताकी छवि ह्वै जब यौवनवंत ॥

इक समय दमयन्त विचारी आई वसंत ऋतु सुखकारी ।
केलि करूं मैं वनमँह जाके, सबही अपने सखा बुलाके ॥
साज सजाय विपन मँह आया, तहां मुनिन के दर्शन पाया ।
वंदे भाव सहित थुति कीन्हें, मुनिमुख धर्म श्रवणकर लीन्हें ॥

दोहा—उपजी श्रद्धा धर्म में, श्रावकव्रत गह लीन्ह ।
प्रमुदित मन गृह आयकें, दान मुनिन को दीन्ह ॥
अन्त समाधि धारकें, स्वर्ग मांहि सुर होय ।
तंहतें चय नृपगृह उपज, भोगन अरुची जोय ॥

मरण समाधि अँत मंह कीन्हा, ताफल जाय देव पद लीन्हा ।
तॅह तें चय नृप के गृह मांही, उपजे भोग रचैं मन मांही ।
समय पायके मुनिपद धारे तपै घोर तप द्वादश सारे ।
मरण समाधि अंत मँह कीन्हो लान्तव स्वर्ग देव पद लीन्हो ॥

दोहा—तॅहतें चय आये यहां अंजनि उदर मँझार ।
महा पुरुष थे अवतरै, करैं कर्म रज क्षार ॥
धन्य पुत्र माता पिता, याविध ह्वै सम्बन्ध ।
आप तरैं पर तार है, काट कर्म का बन्ध ॥

यों कह ऋषिहु आनन्द धारो महापुरुष का कथन उचारो ।
अब कहि मां का पूर्व बताऊं, खोटा बंध कथन दर्शाऊं ॥

थी इक नृप की तू पटरानी, पाई सकल वस्तु सुखदानी ।
इक दिन कीन्ही सौत लड़ाई, मन्दिर पर से हुइ अधिकाई ॥

दोहा—कुपित होय पटरानि ने, मन्दिर मांही जाय ।
प्रतिमा काढी बाहरें, की अविनय अधिकाय ॥
आई थीं इक आर्यिका, आहारन के काज ।
यों अविनय को देख किय, अशन पान का त्याज ॥

पुन या विध मन मांहि विचारी, या भोरी निज गती बिगारी ।
समझाऊं ना मैं यदि याको, अतिही अशुभ बंधैगा ताको ॥
दोष प्रमाद बचाऊं यातें बोली मधुर वचन तब तातें ।
सुन भोरी ये क्या तूं कीन्हों, महा अशुभ तूं कमाय लीन्हो ॥

दोहा—नरक निगोदन मँह रुली, भोगे दुःख अनादि ।
पुन भोगन वा दुःख को महा अशुभ तूं लाद ॥
देव शास्त्र गुरु अविनयी, जीव रुलैं जग मांहि ।
ताका वर्णन को करै, कोउ कहवे सक नांहि ॥

पुण्योदय तें हुई पटरानी, मानोदयतें अविनय ठानी ।
आंखन होते। अन्ध भई तू, श्री जिन बिम्ब निसा दई तू॥
फल ना सोची चितमँह याको, अब तू शरणा गह है काको ।
दुख मेंटन को वृष आराधैं, दुख अपार लह धर्म गिराधैं ॥

दोहा—क्षण भंगुर पर्याय मँह, कीन्हा तूने मान ।
कीन्ही धर्म विराधना, वृथा गमाये प्रान ॥

नर्क धरा मँह जाय जिय, दुख ही दुख को पाय ।
धर्म नशाई कौन अब, लेवै तुझे बचाय ॥
यदि मैं तोकों ना समझाऊं, दोष प्रमाद थकी मैं पाऊं ।
यातें मैंने सब समझाया, कारण कार्य सभी बतलाया ॥
इकली आई इकली जावै, भोगै सुख दुख आप कमावै ।
यातें गर्व तजो सुन मोरी, जँह की तँह रख मत बन भोरी ॥
दोहा—याविध सुन पटरानि जब, अति डरपी मन मांहि ।
प्रतिमाजी को शीघ्र ही, जँह की तॅह पधरांहि ॥
दर्शन पूजन थुति करी, कीन्हा पश्चाताप ।
धर्म भावना विस्तरी, मिटै नर्क आताप ॥
अशुभ कमायो मेंटो यानें, धर्म भावना कीन्ही तानें ।
पुण्यबंध हू बंधन कीन्हे, मरणसमाधि अंत मॅह लीन्हे ॥
स्वर्गन मांहि सुरी पद पाई, तँहतें चय अंजनी कहाई ।
पुण्योदय वर उत्तम पाया, पापोदय वियोग सरसाया ॥
दोहा—प्रतिमा को पधराय दिय, नर्क दुःख बच जाय ।
पुन अविनय के दोष तें, पति वियोग दुखदाय ॥
बाइस वर्ष विछोह हो, कीन्ह रंच परमाद ।
जे नित ही अविनय करें, महापाप ते लाद ॥
अविनय मेटी यों फल पाई, पति संगम हो गर्भ लहाई ।
पुनहू पति का संगम पावै, समय पाय बिगरी बन जावै ॥

तरु छाया सम दुख सुख जानो, घटैं बढ़ैं क्षण मांही मानो।
यातें उर मंह धीरज धारो, अपने चित से शोक निवारो॥
दोह–अंजनि यों उपदेश सुन, लीन्हा हर्ष विषाद।
फल भोगत मैं आपना, पूरब कर्म विवाद॥
भक्ति भाव से थुति करी, श्री ऋषि दीनदयाल।
दया करी हम पै प्रभो, सभी बताये हाल॥
धन्य भाग्य मिल दर्श तिहारे, नशे सभी विध अशुभ हमारे।
मुनि आशिष दे विहार कीन्हा, गगन मार्ग से द्रुतचल दीन्हा॥
अब तिष्ठीं दोउ निरभय होके चिन्तें धर्म सतत सुख जोके।
समझी सुख दुख कोय न दाता, भोगें जिय जो आप कमाता॥
दोहा–याविध कर्म विडंबना, मुख से कही न जाय।
क्षणक माँहि दुख सुख लसैं, क्षण मंह घट बढ़ पाय॥
याते मेंटहु कर्म को, सेवो आतम स्वरूप।
"नायक" रमत स्वरूप मॅह, जो बनाय शिव भूप॥

❀ इति त्रयविंशतितम• परिच्छेद• समाप्त ❀

अथ अंजनी को सिंह का उपसर्ग होने पर देवद्वारा निवारण वर्णन

॥ वीर छन्द ॥

गुफा मांहि अब रहै अंजनी, करै पखी सेवा अभिराम ।
अशन पान सामग्री लावै, सब विध देय इसे आराम ॥
अंजनि भी श्री जिन को ध्यावै, सामायिक मँह ध्यान लगाय ।
विद्यावल सखि सबसुख पूरै, काहू भांति कमी ना पाय ॥
दोहा—एक दिवस सूर्यास्त से, छाया तम चहुं ओर ।
आई निशा भयावनी, काली चादर ओढ़ ॥
तऊ अंजनी सखि सहित, करती वचनालाप ।
ध्यान धरै भगवान का, कबहुं न दुख आलाप ॥
ऋषि वचको हिय मांहि चितारै, सुखयुतअपनीविपति निवारैं ।
समय पाय पुन पति को पावें, चरमशरीरी सुत उपजावें ॥
जैसा बोवै तैसा पावै, बोय बबूल न दाखें खावै ।
यातें धीर धरै हिय मांही, रंच कबहुं अकुलावै नांही ॥
दोहा-इस विध समय बितावती, चित मंह धीरज धार ।
सखिहू याको हर समय, मातु सदश पुचकार ॥
सुनी अचानक गर्जना, मनो प्रलय ही आय ।
ऐसो सिंह भयावनो, काल सरूप दिखाय ॥

लपलपात जिह्वाचल जाकी, अरुणनयन चढि भ्रकुटाबांकी।
पुच्छ उठाये इतपै आवै, क्षणभरमँह दोउनको खावै॥
यों लख अंजनि ध्यान लगाके, जपै पंचपद थिरता लाके।
तन अडोल पद्मासनधारी, अनशनधर यह विपनिविहारी॥

दोहा—मनो आर्यिका ही इतै, आके ध्यान लगाय।
सखि चर्या को साथ में, दूजो नांहि सहाय॥
यों दृढ़ता ह्वै आत्म में, मनो जुदी है देह।
निश्चल आसन मांडके, सांस रोक त्व लेय॥

सखि आंखिन अँधियारी छाई, कहा करूं चिन्तत अकुलाई।
याको लेय गगन उड़ जाऊं, गर्भपात को भय अति खाऊँ॥
प्राणनाथिनी बचावैं कैसे, यह उपसर्ग निवारूं जैसे।
आय सिंह द्रुत पँजा मारै, एकहि क्षण में प्राण विदारे॥

दोहा—दुविधा माहीं पड़ रही, यहां कूप वँह खाय।
रक्षूं कैसे स्वामिनी, सूझै नांहि उपाय॥
जस तस कर वन मंह रही, विपति निवारन काज।
विपदा आई साम्हने, सिंह भखत है आज॥

पति वियोग दुख पूर्वे पाये, दुखही दुख मँह काल वितायो।
जस तस कर पुनि संगम पाई, रहो गर्भ सासू निकसाई॥
हुआ निरादर पीहर मांही, दूजो कोउ सहायक नांही।
वनमँह आके समय वितावै, तोहू सिंह भखन को आवै॥

दोपा–कहां ऋषीवर का वचन, हो तेजस्वी वाल ।
पती समागम होयगो, कहां ? भखै यह काल ॥
कहां जावँ कैसा करूं, यों कह रुदन मँचाय ।
कुररि सदृश विलपत सखी, रुदन करै अकुलाय ॥

करो सहाय कोय भी मेरी, हे वनदेव शरण हूं तेरी ।
हे भगवान द्रुत करुणा धारो, सिंह विपति को वेग निवारो ॥
हे तारागण ज्योतिष देवो, तुमहु वचाय विपति से लेवो ।
यों पुकारती नभ लौं जावै, पुन पुकारती महि पर आवै ॥

दोहा–ताहि समय मणिचूलसुर, आया क्रीड़न काज ।
रहि तसु संग सुरांगना, लखि यों भय का साज ॥
कही सुरी ने सुर प्रती, विपति निवारहु नाथ ।
अवला कीन्ह पुकार अति, यों कह नायो माथ ॥

ये अवला है भय की मारी, सिंह भखन को आया भारी ।
वेग जायके विपति निवारो उनको दूजो नांहि सहारो ॥
तुम समरथ हो सव विध स्वामी देवन के हो ईश्वर नामी ।
सुन यों सुरहू ताहि उचारें, कहन तिहारी नांही टारें ॥
दोहा–अष्टापद का रूप धर, आया सुर द्रुत चाल ।
पंजा मारा सिंह को, भगा सिंह तत्काल ॥
मानो नाशो सघन घन, प्रवल वायु झकझोर ।
या दावानल नाशनै, वरसा जल घन घोर ॥

यों लख सखिने दी किलकारी सुख युत नाची दै दै तारी ।
पुन प्रमुदित स्वामिनि पहँ आई, विपति टली सो कथा सुनाई ॥
हे स्वामिनि हे पुण्य तिहारो, ऋषि सचमुचवच सत्यउचारो ।
क्षण मँह संकट वेग पलाया, पुण्योदय अष्टापद लाया ॥

दोहा—दूर हुआ उपसर्ग सुन, अंजनि खोला ध्यान ।
मन वच काय त्रियोग से, कीन्ह नमन भगवान ॥
विहँस सखी से कहा तब, तूं सब सत्य बताय ।
पुण्योदय पर परभाव से, कीन्हा देव सहाय ॥

सिंह भखन कोउ सन्मुख आयो, पुन अष्टापद ताहि भगायो ।
धर्म प्रसाद कोउ सुर आके, टाला संकट सिंह भगाके ॥
हमको ऋषि ने सत्य उचारो, तबको हमको मारनहारो ।
धर्म माहिं श्रद्धा दृढ़ कीन्ही, गत सब बातें बिसार दीन्ही ॥

दोहा—अर्ध निशा बीती जबै, कीन्हा सुर ने गान ।
भगवन गुण गाये मधुर, नृत्य सुरी तहँ ठान ॥
बीन मंजीरा बांसुरी, मधुर मधुर ध्वनि होय ।
मनो रती नर्तन करै, नर्त सकै ना कोय ॥

सप्त स्वरन युत सुरने गाया, मन मँह फूला नाहिं समाया ।
द्वय अबलन के प्राण बचाये, निधि अमूल्य ये प्राण कहाये ॥
सुरी प्रती यों गिरा उचारी, तुम उपकार कीन्ह अति भारी ।
मैं तो वन मँह क्रीड़न आयो, दया धार तुम हमें बचायो ॥

दोहा—उनका पुण्य प्रधान है, तिन निमित्त वन आय ।
हो न आयु अबलान तो, नांहि दृष्टि उत जाय ॥
यातें जिय जस कर्म किय, तस फल ताको होय ।
होय शुभाशुभ परिणमन, मेंट सकै ना कोय ॥

यातें निज परिणाम सुधारो, तबही सुर शिव धाम पधारो ।
नातर नर्क पशू गति पावो, भोगो अपना आप कमावो ॥
इकला बांधै, इकलो भोगै, इष्टानिष्टहिं योग वियोगै ।
विधि रस मँह पर नाहिं संघाती, होवै तिय सुत चाहै नाती ॥

दोहा—याविध गति संसार की, ज्ञानी करै न राग ।
सम्यकश्रद्धा कर सहित, धरै ज्ञान वैराग ॥
शिवमारग नित प्रति बढ़ै, साध्य अवस्था होय ।
'नायक' पावै साध्यशिव, मेंट सकै ना कोय ॥

॥ इति चतुत्रिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
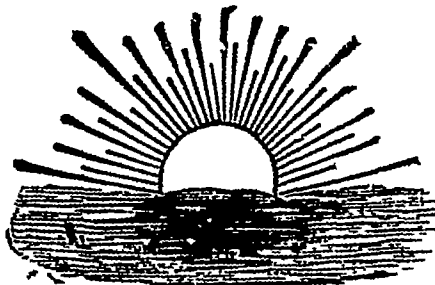
अथ अंजनो को पुत्ररत्न की प्राप्ति पुन मामा से मिलाप वर्णन

❀ वीर छन्द ❀

अनुपम सेवा सखि नितकरती सुखसे अंजनि काल विताय ।
रक्षक सुरभी रचौ याको, कोई जन्तू ना खा जाय ॥
गत दुख बातें भूली अंजनि, निजकुटुम्ब सखि कूं ही जान ।
मात-पिता अरु सास ससुर तें, बढ़कर यासखि ही कूं मान ॥
दोहा—आया समय प्रसूति का, सखि तब धैर्य बंधाय ।
पुष्पन की शय्या रचो, तापै दी पौढ़ाय ॥
सूर्य सदृश शिशु जन्म लिय, कीन्हा निज उद्योत ।
शुभ लक्षण शशि कांतिसम, फैल रही तसु ज्योत ॥
मनहुं अंजनि पूर्व दिशा हो, यातें रविसम पुत्र जना हो ।
गुफा मांहि से द्रुत तम भागा, तेज सूर्य सम चमकन लागा ॥
अंजनि ने यों पुत्र निहारो, मुखसे या विध वयन निसारो ।
उपजा हाय पुत्र वन मांही, उत्सव करन चोत्र ये नांहा ॥
दोहा—बाबा नाना के गृहै, यदि होता उत्पन्न ।
उत्सव होत अपार तब, बड़ी कहाती धन्य ॥
मंदभागिनी मं हुती, जनौं विपन मँह आय ।
उत्सब सामग्री रहित कैसे धूम मँचाय ॥

दीन वयन सुन सखो उचारी, काहे यों दुख करती भारी ।
पुत्र हुआ चिरजीवी तेरा, त्यग मँह करहै सुख घनेरा ॥
विपन मांहि का कमी लखाई, दीन वचन तूं क्यों उचराई ।
नृत्यत तरु के पल्लव देखो, भँवर गुंजारैं उत्सव लेखो ॥

दोहा—समय समय पैं सोहनो, कल्पै है यह जीव ।
अन्दर होत आनन्द जब भासै सुःख सदीव ॥
जाके अन्दर दुख नित, तिहिं दुख ही दुख भास ।
कारण कार्य सुहावनो, हो वसन्त आभास ॥

कोयल कूंकैं मोर हुकारैं, मनो मधुर ध्वनि गान सम्हारैं ।
पक्षिन कलरव हू मन मोहै दशों दिशा सब निर्मल सोहै ॥
नृत्य करत मनु गुफा तिहारी, सुत का उत्सव होवै भारी ।
चिर जीवै दें आशीष ऐसा, तूं अब चाहत उत्सब कैसा ॥

दोहा—याविध सखो विनोद किय, प्रेम बंधाई देय ।
हिय हुलसो तसु पार नहिं, तीन लोक निधि लेय ॥
अंजनि हू सुन चित्त मँह, लिय सुख अपरम्पार ।
शुभलक्षणयुत पुत्र हो, तेज सूर्य उनहार ॥

शब्द अचानक नभ मँह छाये, लखा विमान गगन तें आये ।
यो लखि सखि अतिही अकुलाई, अंजनि चित व्याकुलता छाई ॥
कौन विमान यहां पै लावै, अरी होय तो पुनः सतावै ।
श्री जिनकों तत्काल पुकारो, गूंज उठो नभ मंडल सारो ॥

दोहा—धर्म सकल सुख देत नित, दुख को देत अधर्म ।
यातें वृष शरणा गहें, यह सुखदायक पर्म ॥
यों चिन्तें किलपें दुहू, हा हा वचन निकास ।
का भविष्य वश होय अब, चिन्तीं हुई उदास ॥

नभ मँह महा घोर रव छाया. सुन विमानपति तेह पै आया ।
पुष्टगात मुख द्युति छिटकाई, चाल ढाल में थी सरलाई ॥
यों लख हिय मँह धीरज लाके, तिष्ठीं दोऊ विनय दिखाके ।
गुफा मांहि विमान पति पैसा, मनहु भ्रात ही आया जैसा ॥

दोहा—आगन्तुक के संग में, थी रानी सुखदाय ।
अन्य स्वजन आदिक बहुत, आये अचरज पाय ॥
यथा योग्य आसन विषें, सखि ने लिये बिठार ।
उचित विनय कीन्ही सखी, हरषी हिये मँझार ॥

तब विमान पति गिरा उचारी, मनहु सुधा वरषाया भारी ।
कहहु काह तें वन मॅह आके, जना पुत्र इत हिय हुलसाके ॥
काकी बेटी किन परिणाई, का कारण से भई जुदाई ।
विधि विछोह दुख दीन्हो भारी, विमान पति गिरा उचारी ॥

दोहा—सुन सखि यों मीठे वचन, उमड़ा दुख अधिकाय ।
प्रेमाश्रु नयनन भरे, कंठ रुद्ध हो जाय ॥
नीठ नीठ वच उच्चरी, सुनहु कथा नरनाथ ।
आप वचन तें जँच पड़े, अब हम हुई सनाथ ॥

वचन शुद्ध पहिचान करावै, सज्जन दुर्जन जानो जावै।
सुवच प्रतिष्ठा जग मँह लेवै, कुवच प्रतिष्ठा गमाय देवै ॥
यातें हमें प्रतीती आई, आये आप महा नरराई।
अब संक्षेप बताऊं याका, पुत्र जन्म क्यों? हुआ यहां का ॥

दोहा—नृप महेन्द्र की ये सुता, नाम अञ्जनी जान।
ब्याही पवनंजय इसे, तजी रुष्ठता ठान ॥
बाइस वर्ष विछोह किय, पुन आये सुख मान।
किय संगम तब गर्भ रह, पुन कीन्हा प्रस्थान ॥

रावण ढिगे जान को तत्पर, संगम कीन्हा आके अत्पर।
मात पिता को नांहि जताये, संगम कीन्हा थे हम आये ॥
कड़े मुद्रिका देय निशानी, कोय न शंकै याविध जानी।
तिया जात अबलापन पावै, तजा ग्रहा पति हठ ना लावै ॥

दोहा—पति रूठे परसन्न हो, पुन अब को समरथ्थ।
करे अवज्ञा गर्भ की, परिणय हो जिन हथ्थ ॥
गवने पति रण को गये, प्रगटो गर्भ न आय।
सासू लख यों गर्भ को, कुपित हुई अधिकाय ॥

बहुतक कही दिखाय निशानी, पै सासू ने एक न मानी।
बुलाय सासू निज रथ वाला, वधू विठाय मुझे भी टाला ॥
मैं पीहर की हूं इन दासी, यातें इनयुत मुझे निकासी।
पीहर पुर के निकट पठाई, मोयुत वनमँह निशा बिताई ॥

दोहा—हुआ प्रात तब भृत्य को, तात पास पठवाय ।
गर्भ वृत्त सन्देश कह, सब विध से समझाय ॥
सुनत तात कोपित हुये, तुरतहि आज्ञा दीन ।
मुख ना देखूं तासु को, याने अनर्थ कीन्ह ॥
पुरवासिन को हुकम लगाया, आश्रय देय दन्ड वह पाया ।
कीन्ह अवज्ञा जबहि पिता ने, वन में निवसू सोचा याने ॥
गुफा मांहि मुनि दर्शन पाये, सुत युत पूरब भव दरशाये ।
कहा होय सुत चरम शरीरी, यह भव जनों तासु अखीरी ॥
दोहा—गुफा मांहि उपसर्ग ह्वै, सिह अचानक आय ।
पुण्योदय तें तुरत ही, देव विपन में आय ॥
मो विलाप सुनकर तुरत, रच अष्टापद रूप ।
मारा पंजा सिंह को, भगा सिह विडरूप ॥
सुखयुत वनमँह समय बिताया, आजहि यानें सुत उपजाया ।
इतने मँह विमान रव छाये, हम दोऊ रव सुन अकुलाये ॥
भय युत किलपे अति ही भारी, सुनकर दया आपने धारी ।
यों संक्षेप बताया याका, पुत्र जन्म यों हुवा यहां का ॥

दोहा—याविध कहतन कह गई, पुन लिय दीरघ श्वांस ।
मुख से याविध पुन कीह, सुत रक्षण की आस ॥
जस तस अभी वितीत किय, अब किम होय वितीत ।
यह विपदा कैसे हटे, कटे ईत अरु भीत ॥

सुन विमानपति याहि उचारे, अब तुमहू सुन वयन हमारे।
अपना मैं वृत्तांत बताऊं, हनरुहद्वीप स्वामि कहलाऊं॥
प्रतिसूरज है नाम हमारा, निर्मल चन्द्रवत धारा।
लगत भानजी अञ्जनी मेरी, घनें दिनन मंह याको हेरी॥

दोहा—नांहि पिछानी याहि से, अब दर्शाऊं तोय।
बाल अवस्था याहि की, छिपी न कछु हु मोय॥
जन्म काल से याहि का, सुन ल्यो आद्योपांत।
सब वर्णन नृप ने किया जैसा हुता वृत्तांत॥

हुती लाडली बचपन मांही, सबकूं इकही दूजी नांही।
अशुभ कमायो यानें ऐसो, तातें दुख रस पायो तैसो॥
यों कह लोचन नीर बहाये, हृदय उमड़ अति ही अकुलाये।
सबही को अति व्यापी पीरा, लोचन से सब बहायें नीरा॥

दोहा—अञ्जनि उठकर तुरत ही, गले माम के लाग।
वेलयी कुरसे सदृश अरु, पुन निन्दै निज भाग॥
मंदभागिनी मैं हुती, सबने त्यागी मोय।
मां पितु सास ससुर सबहि, ना अपनाया कोय॥

तबहि गुफाहू अती गुंजारी, मनु समवेदन करत पुकारी।
पर्वत झरना शब्द मंचाये, मानो दुखतें अश्रु बहाये॥
वनचर जिय भी इकमन होकें, समवेदन प्रगटावें रोकें।
रोदन रव सब वन में छाया, नभ मण्डल तक गूंज मंचाया॥

दोहा—अंजनि दुःख गाथा सुनत, काको दुख ना होय।
व्याही तब से है दुखी, मेंट सका ना कोय॥
पाथर पिघलैं सुनत ही कहा अन्य की वात।
ऐसो अञ्जनि ऊपरै, किय दुख ने आघात॥

उमड़ दुःख का सागर आया, तब नृप धीरज ताहि बंधाया।
नृपने पुन दै धीरजताई, दैके समाधानकर विपति भगाई॥
गत दुख वातें सबहिं विसारो यों आश्वासन दै पुचकारो।
सुख सम्भाषण हिलमिल कीन्हें हृदय परस्पर मिले नचीने॥

दोहा—तबहिं अञ्जनी ने कही, सुनहु पूज्य मम बात।
जन्मकुन्डली को रचहु, बीती आधी रात॥
गृह नक्षत्र शुभ अशुभसब, अब ही लेव विचार।
धीरज पावै हृदय मम, यों उत्कंठा धार॥

सुनत नृपति हू हिय सुख धारा, ज्योतिषि को तब तुरत पुकारा।
थापो लग्न शुभाशुभ देखो, सुतका जन्म अर्ध निशि लेखो॥
यों भूपति ने आज्ञा दीन्ही, लग्न ज्योतिषी थापन कीन्ही।
पूर्ण विवेक लगाय विचारो, विहँस नृपति से इम उचारो॥

दोहा—पड़े उच्च के ग्रह सबै, निश्चय ये बतलायँ।
जगसुख तज शिव सुख गहै, उच्च भाव दरशायँ॥
यों सुन नृप मन हर्ष लिय, दीन्हा बहुविधि दान।
सबको सुखहरपित हृदय, निधि बरसी जनु आन॥

सबने बालक ओर निहारा, मुलकत किलकत बारम्बारा ।
यों लख अतिशयवंत पिछानो, महापुरुष अवतार प्रमानो ॥
यातें हियमँह आनंद धारे, सब मिल जय जय शब्द उचारे ।
अंजनि फूली नांहि समाई, शशि वारिधि सम लहर बढ़ाई ॥
दोहा—गुफा मांहि सुत उपजो, नभ का नृपति विमान ।
प्रबल भाग्य ने खेंच के, लाय रक्खा सुत थान ॥
जग मँह पुण्य प्रधान है, शिव मँह आतम प्रधान ।
'नायक' रमत स्वरूप मँह, गुण अनंत की खान ॥

॥ इति पंचत्रिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ विमान से जाते समय अंजनि के गोदसे बालक गिर जाने पर पर्वतके सैंकड़ों खड होनेका वर्णन प्रारंभ

वीरछंद-विहंस नृपति बोले मृदुवानी, चलहु अंजनि हनुरुहद्वीप ।
सुत जन्मोत्सव तहां मनावें, याविध कह प्रतिसूर्य महीप ॥
सुनत अंजनि हर्षित होकें, श्रीजिनवर को शीश नवाय ।
गुफा निवासी देव प्रती भो, क्षमा याचना की अधिकाय ।

दोहा—लेकैं शिशु को गोद मँह, वैठी जाय विमान ।
क्षुद्र घंटिका वज रहीं, शोभा लखी महान ॥
रत्नन की झालर बँधी, सुख सामग्री भूर ।
स्वर्ग समान विभूती लख, हिय हरषी भरपूर ॥

मानो दुःख हुआ ही नांही, ये अस हरषो यों हिय मांही ।
सुतहू मुलकै किलकै भारी, तोरण पकड़न भुजा पसारी ॥
गोद मांहि से उचका ज्यों ही, अंजनि करसे छुटका त्योंही ।
गिरा तहां तें पड़ा शिला पे, हुआ धड़ाका को आलापे ॥

दोहा—खंड खंड ह्वै सैंकड़ों, पडो वज्र गिरि आय ।
शिला चोट ना सह सकी, यों शिशु बल अधिकाय ॥
वज्रवृषभनाराचयुत. हाड़हु वज्र समान ।
चरम—शरीरी वहुवली, गिरा शैल पै आन ॥

लखा गिरत मां किलपी भारी, सबही रोय उठे नर नारी ।
क्षण मँह दृश्य भयानक होवै, सब ही हाय हाय कह रोवै ॥
अंजनि ने शिशु विरद बखानो, रत्न आय कर कहां विलानो ।
अतिशय अधिक सूर्य से तेरा, हाय दैव यों सुत हर मेरा ॥

दोहा–सुन अंजनि के दुखद वच, दुखी हुए सब कोय ।
धैर्य बँधाया नृपति ने, काहे व्याकुल होय ॥
चर्म शरीरी पुत्र तुव, प्राप्त होय तत्काल ।
अभी ज्योतिषी ने कहा खाय सके ना काल ॥

यह कह नृपतो गिरि ऊपर आया, मुलकत किलकत शिशु कोपाय ।
शिला फटी ता दशा निहारी, मनो वज्र ना चोटें मारी ॥
हुये सैकड़ों खंड शिला के को समरथ सरकाय हिलाके ।
पै शिशु झेलन समरथ नांहीं, योंबल सबलख शिशुतन मांही ॥
दोहा–लखा सबहि ने शिशु जभी, तभी हिये हरषायँ ।
सुना न देखा आज तक, जा विध अबै लखायँ ॥
अचरजकारी दृश्य लख, जय जयकार उचार ।
चरमशरीरी है शिशू, करै कर्म का क्षार ॥
यों लख जबही शिशु को मांने तब ही वेग उठाया ताने ।
शिर चूमो हिय हरषी भारी, सबही सुखी हुये नर नारी ॥
सब मिल त्रय प्रदक्षिणा दीन्ही, शीस नाय निश्चयता लीन्ही ।
अभी प्रचंड बली है ऐतो, लहै वृद्धि बल होवै केतों ॥

दोहा—एक नाम श्रीशैल रख, अरु दूजो हनुमान ।
हनरुद्वीप प्रवेश किय, उत्सव हुवा महान ॥
याविध शिशुने वृद्धि लह, ऋद्धि सिद्धि नित वाढ़ ।
हो मोहित नर नारि सव करें प्रेम अति गाढ़ ॥

या अजरज की वात निहारो, हुता अमर को मारनहारो ।
शैल उदधि अरिथानकमाही, सुकृत रक्षक दूजो नांही ॥
उपादानमॅह अतिवल आवै, निमित निवलपण सहजहि पावै ।
उपादानमॅह हो निवलाई, तव हो निमित मांहि सवलाई ॥

दोहा—यातें वलसम्यक्‌ गहो, उपादान वलवान ।
सहज अखंड स्वरूप निधि, करे कर्म की हान ॥
विन पाये सम्यक्त्व के, उपादान कमजोर ।
'नायक' रमत स्वरूप मॅह, होय गमन शिव ओर ॥

❀ इति त्रयविंशतितम परिच्छेदः समाप्तः ❀

❀ अथ पवनंजय और अंजनी का मिलाप वर्णन ❀

॥ वीर छन्द ॥

अंजनि ढिग तें विदा होय पुन, रावण ढिग पवनंजय आय
अति स्वागत रावण ने कीन्हा, मानो विजयध्वजा फहराय ॥
पवनंजय यों, स्वायत लखके, मनमँह फूला नांहि समाय ।
रणउत्साह हिये मँह उमड़ा, मनो विजय लीन्ही सुखदाय ॥

दोहा—युद्ध हेत संकेत हो, भिड़ी सैन्य दोउ आय ।
मनो मेह ही उमड़ तिमि, शर धारा बरसाय ॥
सेल खड्ग बरछी गदा, करें परस्पर वार ।
जूझ जूझ महि पै गिरें, बही रुधिर की धार ॥

आय वरुण सन्मुख ललकारा, पवनंजय के जोष अपारा ।
द्रुतही वरुण सन्मुखें आके, हरषा मारा मार मँचाके ॥
ऐसी मारामार मँचाई, दी अरि की सुध बुध बिसराई ।
वरुण वेग बंधन मँह कीन्हा, रावण ढिगै लाय धर दीन्हा ॥

दोहा—वरुण सुतन की ना चली, पवनंजय बलवीर ।
विकट मार यानें करी घाल तीर पर तीर ॥
वे सब गत पौरुष हुये, पड़े बंध मँह जाय ।
पवनंजय के हाथ से, विजय ध्वजा फहराय ॥

खरदूषण को वेग छुड़ाया, रावण ढिगै ताहीको ल्याया ।
देख पराक्रम रावण याका, अति ही स्वागत कीन्हा ताका ॥
कहि पवनंजय हो बलवीरा, अखंड पौरुष धरें शरीरा ।
कँहतक तेरे गुणको गाऊं, निज दलपति मैं तुझे बनाऊं ॥

दोहा—रावण से सन्मान लह, पवनंजय हरषाय ।
प्रेम सहित मिल भेंट कर, विदा यहां से पाय ॥
चिन्ता उपजी अति घनी, कबै तिया को पावें ।
वेग कीन्ह प्रस्थान अब, आये अपने ठावें ॥

पुरवासिन ने नगर सजाया, पाके विजय कुँवर घर आया ।
धवलकीर्ति इन दशदिशि छाई, मनो चन्द्रनें द्युति प्रसराई ॥
पिता समीप पवनंजय आये, परसेचरण शीस निज नाये ।
तात पुत्र को हृदय लगाके, आशिष दीन्ही हिय हरषाके ॥

दोहा पितु समीप तें वेग ही, माता के ढिग आय ।
चरण वन्द आशिष लई, पुन रनवासहिं जाय ॥
संग में प्रहस्त मित्र हू, प्रिया मिलन की चाह ।
क्षण क्षण उठत उमंग हिय, पल पल बढ़ उत्साह ॥

मोकों महल शून्य सो भासे, इमि प्रहस्त यों वचन निकासे ।
बिना प्रिया दिख जिम उद्याना, या गृह नभसम शून्य कहाना ॥
याते मित्र काहु से पूंछो, कहां गई करि मोकों छूंछो ।
चैन पड़त ना क्षण भर मोकों, यातें वेग कहत मैं तोकों ॥

दोहा—जा प्रहस्त तब वेग ही, जाना सारा वृत्त।
बढ़ो गर्भ सासे लखी, खोटा जान चरित्त॥
यातें काढ़ा वेग ही, पीहर दई पठाय।
पवनंजय ढिग आयकें, ज्यों का त्यों बतलाय॥

सुन पवनंजय छाड़ उदासी, केवल संग गई इक दासी।
विना कहे ही इततें चाले, ससुर नगर ये आय उताले॥
सुना ससुर पवनँजय आये, कर अगवानी गृहमँह लाये।
ससुर सास तें हिल मिल भैंटे, पै क्षण भर ना उन ढिग बैठे।

दोहा—लगी आस तियमिलन की द्रुत महलनमह आय।
समझे होय मिलाप अब, यातें हिय हरषाय॥
याहू थल सूनो लखो, कह सुन जान बखान।
आई पै राखी नहीं, दुश्चरित्र तिहि मान॥

सुनत हृदयमँह चुभी कटारी मानो घाव हृदय ह्वै भारी॥
तप्त तेल कर्णन मँह डारो, शून्य बदन अब हूवो सारो।
वेग चले अब ढूढ़न वाको, पता न पाये पूछें जाको॥
अति विकलप मनमँह उपजाये, भखो सिंह जलमँह बह जाये।

दोहा—या गह लिय व्रत आर्यिका, यों विकलप उपजाय।
पवन समान इतै उतै, ढूँढो सब थल जाय॥
लखैं मित्र विह्वल दशा, बहु समझाया याहि।
खेदखिन्न ना, होव तुम, ढूंढ़ लेंयगे वाहि॥

यह पृथ्वी है केती फैली, ढूंढें ताको गैली गैली।
चितमँह समाधानता लावो, समय पाय पुन ताको पावो ॥
यों धीरज दै बहु समझाया, पवनंजय चित धैर्य न आया।
पवनंजय ने याहि उचारो, जाय बताव गृहै यों सारो ॥

दोहा-प्रिया मिलन जो होय तौ, जीवन मेरा जान।
यदि प्राप्त हो अंजनी, मैं भी नाशों प्रान ॥
या में संशय ना रखां, ऐसा निश्चय कीन्ह।
जाव कहो पितु मात से, याविध आज्ञा दीन्ह ॥

योंकह वेग पठाया ताको, आप ढूढवे चला प्रिया को।
गज पर बैठ सभी थल हेरा, प्रिय अंजनी कहकर टेरो ॥
सरित वापिका सबहिं निहारी, लखे सरोवर जो थे भारी।
काहू ठौर तिया ना पाई, याविध तभी चित मँह छाई ॥

दोहा-वृथा दोष आरोप कर, परणी तजदी ताह।
जस तस पुन संगम किया, विषय स्वाद अवगाह ॥
रमणी ने संकेत किय, मां पितु ढिगै जताव।
गर्भ रहै शंका उठै, निराकरण कर जाव ॥

मैं लज्जावश नांहि जताया, ताफल अतिदुख तानें पाया।
यद्यपि मैंने दई निशानी, तउ दुश्चरित्रा मांने मानी ॥
कुपित होय पीहर पठवाई, उनहु चितमँह दया न आई।
दुखयुत आश्रित आय हमारी, है ये मेरी सुता दुलारी ॥

दोहा—लीन्हा वन का शरण वह, कोय ना आश्रय देय ।
भूल भई मेरी घनी, अबतक सुध ना लेय ॥
जियत मुई नाहर भखी, गिरि कूप मँह जाय ।
यों कल्पै ढूंढ़त फिरत, भूतरमण वन जाय ॥

तरुहिं शैल से प्रश्न उठावैं, बताव तिय को ? कौन बतावै ॥
सब विध कर उपाय हिय हारा, तब उदास ह्वै बखतर डारा ॥
तनके आयुध भूपर डारे, अरु गज से यों वचन उचारे ।
हे गज विचारो जँह मन चावै, हथनिन का इत यूथ दिखावै ।

दोहा—यह सुन गज निश्चल खड़ा, स्वामिभक्ति लवलीन ।
रंच न विचरन चित्त किय, रच्छण को तल्लीन ॥
चिरकृतज्ञता सुमरि कर, सम्वेदन प्रगटाय ।
स्वामीदुखसे ह्वै दुखी, भ्राता मनो सहाय ॥

विपत्ति पड़ै पर होय सहाई, वही कहाय सहोदर भाई ।
चाहें सुर खग नर पशु होवै आई विपत्ति को तत्च्छण खोवै ॥
भ्राता होय, बिपत्ति बढ़ावै, भ्रातृपणा को कैसे पावै ।
भ्राता पै अरिसम दुखदाता, देय कबहुं ना सुख अरु साता ॥

दोहा—बिरले ही यों भ्रात हैं, भ्रातापणा निभायँ ।
प्राणन से हूँ भ्रात के दुख को तुरत नशायँ ॥
सब मँह कर्म प्रधानता, पुण्य पाप का ठाठ ।
वैरिबन्धु हो पुण्य से, पाप उदय अरि भ्रात ॥

नाँहि मिलै तिय निश्चय जानीं, प्राणहनन निज मनमँह ठानी ।
अटल प्रतिज्ञा धारी यानें, चिगों न यासूं ऐसी ठानें ॥
यों निश्चय कर ध्यान लगाया, मनो प्रिया मँह आप समाया ।
चार पहर की निशा बिताई, तनकी सुध बुध कुंवर गमाई ॥

दोहा—आप मित्र पितु मात ढिग, सुत वृत्तांत बताय ।
यदी तिया मिलहै नहीं, सुतहु प्राण गमाय ।
यों सुन सब शोकित हुये, मनो वज्र आघात ॥
माता चिन्तत चित्त में, मैं विचरो उत्पात ॥

यों चिन्तत उर अपना कूटै, मनो तोप से गोला छूटै ।
कियतविलाप जनु कुररि पुकारैं, आप स्वयं को दै धिक्कारैं ॥
बिना विचारे क्यों किय ऐसा, किय जैसा फल पाया तैसा ।
रंच विवेक हिये ना धारी, कुपित होय द्रुत वधू निकारी ॥

दोहा—धिक धिक मेरे कोपको, जो यों किया बिगार ।
वधू गई सुतहू गया, प्राणन संशय डार ॥
अब किस विध कैसा करूं, को मिलाय वधू देय ।
पुत्र आय गृह के विषें, सब जिय साता लेय ॥

यों कह याने मूर्छा खाई, प्राण निकसने बाजी आई ।
सब मिल कीन्हा सचेत याको, समझाया बहुविध से ताको ॥
वधू मिलै सुतहू गृह आवै, धीरज से पुन सबही जावै ।
तब कछु चित मंह धीरज धारी, यों प्रहस्त से वचन उचारी ॥

दोहा- कहां पुत्र मेरो तजो, जल्दी देव बताव ।
तूं भी वाको छांडके, काहे इतपै आव ॥
प्रहसत ने उत्तर दिया, वृत्त कहन को आवँ ।
हठधर मुझे पठाय अब, वेग कुंवर ढिग जावँ ॥

लौट कुंवर को अत्र कँह पावो, ता थानक को वेग बतावो ।
याविध मांने याहि उचारी, कहहु पुरै सुत आश हमारी ॥
सुन प्रहसत ने इसे उचारा, हेरें तिय को पुत्र तिहारा ।
मिली होयगी तिय भी वाको, मैं भी जाके ढूँढ़ों ताको ॥
दोहा-सुन माता याको कही, कहां वधू मिल जाय ।
वेग बताओ ता थलैं, हमहू वेग सिधाय ॥
सुन प्रहस्त उत्तर दिया, मैं का जानूं थान ।
बिन विचार अनरथ कियो, होनहार बलवान ॥

यों कह प्रहसत शिर को नाया, सुनसब शोकितहो दुख पाया ।
तबहिं तात ने सर्व खगों पै, दूत पठाये वेग नृपों पै ॥
वृत्त सुनत सब ढिग मँह आकें, चले ढूंढ़ने हिय दुख पाकें ।
नभमँह सारे खग मडराये, पर्वत वन उद्यान लखाये ॥
दोहा- प्रति सूरज के भी ढिगै, आय दूत कह वृत्त ।
सुन प्रतिसूरज दुख लियो, होनी हो अनचित्त ॥
इतै अंजनी तिष्टवै, कितै कुँवर अब जाय ।
एक मिटै दूजी उठै, अति चिन्ता दुखदाय ॥

आके अंजनि ढिगै उचारा, जो कछु वृत्त सुना था सारा ।
सुनत अंजनी विलाप कीन्हा, मोबिन प्रीतम ने दुख लीन्हा ॥
ढ़ाढ़स बांध इतैं मैं तिष्ठी, आय बतायॅ प्रेम की दृष्टि ।
पिय दर्शन को तरसत नैना, जल बिन मीन पाय ना चैना ॥

दोहा—यों किलपत याकों लखी, सखि तब धैर्य बँधाय ।
चिन्तो श्री मुनि के वचन, पिया मिलेंगे आय ॥
दई दिलासा माम ने, वेग कुँवर को लाय ।
धीरज धारो चित्त मॅह, बिना लिये ना आवैं ॥

यों कह सूरज चाले, प्रहलादहि पैं आए उताले ।
ढूंढत भूतरमण वन आये, तॅह पै इनका पील लखाये ॥
लखकर पील हर्ष सब लीन्हा, मनो कुॅवर का दर्शन कीन्हा ।
कारण यह गज कुॅवर सवारी, मिलैं कुॅवर निश्चयता धारी ॥

दोहा—सबने देखो कुॅवर को, तिष्ठे ध्यानारूढ़ ।
रक्षा को गज ढिग खड़ो, स्वामि भक्ति आरूढ ॥
हुता निरकुंश गज प्रबल, सबही खग भय खायॅ ।
यदि गज करैं प्रहार तो, चिन्त्य ढिगै न आयॅ ॥

महा शब्द सुन गज रिस धारा, ये अरि आये करन प्रहारा ।
यातें क्षुभित हुआ गज भारी, सूंड मांहि असि यानें धारा ।
वेग सबों पै असी घुमाई, फिरी खगन पे पील दुहाई ।
सबही भागे भय के मारे, काई सम मव दल को फारे ॥

दोहा—कुंवर ढिगै पहुंचन कठिन, गज ना आने देय ।
हथिनी लाये गज ढिगै, तासे वश कर लेय ॥
वशी करण जे मंत्र हैं, तिम मँह तिया प्रधान ।
सुर नर पशु हारे सभी, जगमँह जे बलवान ॥

कुँवर समीप मातु पितु आये, देखे बैठे ध्यान लगाये ।
दारु उपल की मूरत मानो, हलै डुलै ना गत चित जानो ॥
मात पिता सब विध से हारे, ना बोलै ना नयन उघारे ।
तब उन हृदय शोक अति छाये, विमल विलोचन नीर बहाये ॥

दोहा—प्रतिसूरज आके निकट, कहे कुंवर प्रति बैन ।
सुनहु कुंवर अब वृत्त सब, जासे होवै चैन ॥
केवलि दर्शन कर पुनः, गृहै लौट के जायँ ।
वन मँह ध्वनि सुन रुदन की, मन में अचरज पायँ ॥

वेग विमान गुफा ढिग लाया, तहां अंजनि को मैं पाया ।
केवल सखी साथ में बाकी, पूंछी कथा सखी से ताकी ॥
वानें वृत्त सभी बतलाया, को है पितु को पती कहाया ।
पति रूठे पुन आये कैसे, गर्भ रहा पुन काढ़ी जैसे ॥

दोहा—पीहर आश्रय ना मिलो, यातें वनमँह आय ।
रविसम सुत को तँह जनी, प्राची दिशा कहाय ॥
महा पुरुष लक्षण सहित, कान्ति चंद्र उनहार ।
मुलकत किलकत में लखा, तिष्ठा गुफा मँझार ॥

सुनयों कुँवर अती सुख पाके, पूंछो कुशल हिये हरषाके ।
सुनत कुँवर की यों मृदुवानी, हरषे सभी हिये सुखमानी ॥
तव प्रतिसूरज वचन उचारा, सुनहु वृत्त आगे का सारा ।
मैंने अपना वृत्त वताया, हिलमिल सबने अतिसुख पाया ॥
दोहा—हो हर्षित चाले सबै, बैठे सुखद विमान ।
तहँ रत्नन झालर बँधी, छुद्र घंटिका जान ॥
गोदी से उचका शिशू, पकड़न को उमगाय ।
गिरा सुना ज्यों ही कुँवर, मुख से निकसी हाय ॥
मुरझा गया गात पुन सारा, मानो हुआ वज्र का मारा ।
तव प्रतिसूरज पुनः उचारा सुनहु वृत्त आगे का सारा ॥
मैं यों लख द्रुत नीचे आया, तहां शिशु को मुलकत पाया ।
शिला-दशा या भांति निहारी, मनो वज्र की चोटैं मारी ॥
दोहा—लख शिशु को निरवाधयों, चित मँह अचरज पाय ।
वल अखंड धारी समझ, सव ही शीस झुकाय ॥
दीन्ही तीन प्रदक्षिणा, नाम रखा श्री शैल ।
हनुरुहपुर लाये तभी, ह्वै उत्सव यश फैलाय ॥
पुन दूजा यों नाम उचारा, हनूमान जन्मोत्सव धारा ।
केलि करत अव मम गृह मांही, अव शंका का थल है नांही ॥
यों सुन कुँवर अति सुखपाके, चाले वेग हिये हरषाके ।
तवही खगगण इत आये, हनुरुहपुर में वजे वधाये ॥

दोहा–अति सुखयुत मिल दंपती, मनो अमिय रस पीय ।
ऐसे हिल-मिल कर रहें, मनु दो तन इक जीय ॥
पुण्योदय जगसुख मिलत, पापोदय तें हान ।
'नायक' रमत स्वरूप महँ, लहै अचल सुख थान ॥

॥ इति सप्तत्रिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ॥
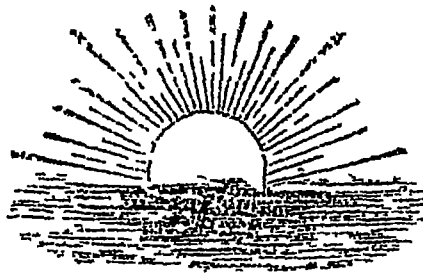
अथ हनूमान को वरुण से युद्ध मंह विजय, खरदूषण और सुग्रीव को पुत्रो से पाणिग्रहण वर्णन

※ वीरछंद ※

तीन खण्ड का स्वामी रावण, तासे वरुण विमुखता लीन ।
तब रावण ने पत्र पठाये, जो थे नृप इनके आधीन ॥
प्रतिसूरज अरु पवनंजय ढिग, आय दूत ने पाती दीन ।
ये दोउ आज्ञा पालन कारण, गमन हेतु द्रुत उद्यम कीन ॥

दोहा—ढिग बुलाय हनुमन्त को, करन चहा अभिषेक ।
प्रजा रक्षणे हेतु चित, कीन्हा दुहुन विवेक ॥
लखत साज अभिषेक का, विहँस कहत हनुमन्त ।
काहे यों उत्सव रचत, कहहु पूज्य श्रीमन्त ॥

सुन प्रतिसूरज वृत्त बताया, रावण हम पै पत्र पठाया ।
वह रावण त्रिखंडपति स्वामी, वीरनमंह अग्रेश्वर नामी ॥
तासे वरुण विमुखतो लीन्हो, याते हमको आज्ञा दीन्ही ।
ताकी आज्ञा पालन जावें, तातें तुम अभिषेक रचावें ॥

दोहा—यों सुनतइ हनुमन्त ने, विनय करी कर जोर ।
आप हमारे पूज्य हो तुम, आज्ञा शिर मोर ॥
मोय अछत किम जाहु तुम, जँचै उचित ना मोय ।
लख बालक आज्ञा करहु, तब ही शोभा होय ॥

हर्षे दोऊ सुनयों याकी, भुजा फड़कती थी अब ताकी ।
येंलख तोभी याहि उचारा, रुको अभी ना समय तिहारा ॥
शिशु हो किम भेजें रण मांही, भेलन शस्त्र गम्य तुम नांही ।
अबतक रण थल तुम ना देखो, याते गमन सहज ना लेखो ॥

दोहा—सुन याविध हनुमन्त ने, दीन्हा तुरत जवाब ।
काह पूज्य तुम कहत हो, समझ मेरे न आव ॥
मत्त मतंगज दल दलैं, केहरि का लघु बाल ।
लघु मुनिहू कर्मन हनत, खाय सकै ना काल ॥

विधिवश भ्रमता जीव अनादी, नशत कर्म को लह शिव गादी ।
तैसे हमहू बाल कहावें, अरि विध्वंशें रण थल जावें ॥
जीव शक्ति ज्यों लखौ न थोरी, त्योंही शक्ती जानहु मोरी ।
सुन प्रतिसूरज पवनकुमारा, मुलके उर लिय हर्ष अपारा ॥

दोहा—उर लगाय शिर चूम पुन, चिन्तन यों कर लेय ।
जन्मत ही या शिशुहु ने, शैल चूर्ण कर देय ॥
याहीतें ये ना रुकै, यों निश्चय कर लीन्ह ।
यातें हर्षित होयकें याको आज्ञा दीन्ह ।

सुन रण आज्ञा हर्षित होकें, की जिन पूजा द्रव्य सँजोके ।
पंच परम पद सुमरण कीन्हा, मां पितु वन्दे आशिष लीन्हा ॥
यथा योग्य मिल दल लै चाले, लंका को द्रुत चले उताले ।
मानों सुरपति कीन्ह विहारा, संग सैन्य सुर स्वर्ग मँझारा ॥

दोहा–सिन्धु उलंघो हर्ष युत, पहुँचे लंका जाय ।
लखी सैन्य लंकेश की, वेहू याहि लखाय ॥
आपस मँह वतलावते, यह कहाय श्री शैल ।
पर्वत चूरो जन्मत सत्र, जगमँह यों यश फैल ॥

यों निज विरद् सुन कर हनुमंता, पहुंचा खगपति पास महंता ।
उठकर रावण गले लगाया, याको अपने पास बिठाया ॥
मिले परस्पर कुशलहि पूंछे, आपस मांहि हर्ष युत सूंचे ।
रावण ने यश वरणा याका, महाबली यह एक यहां का ॥

दोहा–गिरत जन्मतहि शैल के, खंड खंड कर देय ।
समरभूमि मँह विजय ध्वज, निश्चय से ये लेय ॥
किय पवनंजय हित घनो, याको हम पैं भेज ।
सूरज भी फीको जंचत, ऐसो याको तेज ॥

रावण ने यों विरद उचारा, सुन यानें भू ओर निहारा ।
पुलकत हृदय हर्ष हो यैसे, विधि लख वारिधि उमगे जैसे ॥
हर्षित रावण कीन्ह पयाना, संग लिये दल उदधि समाना ।
मनु सुभूमि ने कीन्ह चढ़ाई, परशुराम से रार मँचाई ॥

दोहा–सुना वरुण ने जा समय, दलयुत रावण आय ।
निकस नगर तें वेग ही, असुर समान दिखाय ॥
शत सुत याके अति बली, आये रण के थान ।
मारामार मँचायके, कीन्ह युद्ध घमसान ॥

दल व्याकुलता रावण देखी, सैन्य न ठहरन समरथ लेखी।
तत्क्षण अरि के सन्मुख आया, भारी मारामार मँचाया ॥
एक दशानन, आप अकेला, वरुण पुत्र थे शत इकमेला।
सैल खड्ग बरछी अरु तीरा, चलें परस्पर, मारें वीरा ॥
दोहा–वरुण, सुतन की मदद पै, आवन कीन्ह विचार।
कुम्भकरण ने तुरत ही, यापै, छेंकों डार ॥
दोउ बलि मनु केहरी, गर्जें रणमँह भूर।
इनके शस्त्र प्रहार तें, सैन्य हुई चकचूर ॥
इन्द्रजीत हू बढ़के आया, भारी मारामार मँचाया।
तासि समय शत सुत वरुणा के, घेरा रावण सब मिल आके ॥
रावण वेष्टित भिदा शरीरा, बहा रुधिर तउ घालें तीरा।
यों लखतइ, हनुमन्त विचारा, यानें आदर कीन्ह हमारा ॥
दोहा–आय घिरा चहुं ओर से, नांहि मदद पै कोय।
यों विचार, उद्यत हुआ, हृदय कुपित अति होय ॥
निज बल, तेज प्रताप तें, अरि सब दिये कँपाय।
ले त्रशूल निज हाथ में, मारामार मंचाय ॥
वज्रदंड भी, लै हनुमन्ता, कीन्हा द्रुत अरि दल का अंता।
अरि की सेना तत्क्षण भागी, याको लखतहिं, देर न लागी ॥
रवि के उदय तिमिर नाशै, केहरि बाल मतंग विनाशैं।
ये रण थलमंह याविध पैसा, ज्यों वन ढाहै आरण भैसा ॥

दोहा– इकले ही हनुमन्त ने, कीन्ही रणमँह केल।
जिम मतंग के प्रविशते, गिरै वृत्त से वेल ॥
इक क्षणहमें शत सुतन को, बांध याहि ने लीन्ह।
मदमर्दन कर अरिन का, केलि युद्ध मँह कीन्ह ॥

लखा वरुण ने ये अति वीरा, बँधे पड़े सुत याके तीरा।
कोय न समरथ याके आगे, सबही भय खा यातें भागे ॥
यों चिन्तन कर कोपित होके, चाला त्योंही रावण रोके।
मेघ गर्जना सम ललकारे, कहां भगत अब मोय अगारे ॥

दोहा–यों कह तीक्षण शस्त्र से, कीन्ही मारामार।
सुध बुध भूली वरुण की, झेल सका न वार ॥
रावण ने तत्क्षण इसे, बंधनमंह कर लीन्ह।
विजय पताका फरहरी, अन्त युद्ध का कीन्ह ॥

कुम्भकरण ने अति रिस धारी, नष्ट करन पुर मनहिं विचारी।
ज्यों हो तत्पर करने वैसो, रोका रावण करो न यैसो ॥
ये अपराध प्रजा का नांहीं, है नृप का सोचो मनमांही।
कर अनीति दुरगति दुख पावो, नृपन नीति क्यों रीति मिटावो ॥

दोहा–तोषा रावण भ्रात को, बैठे आसन मांहि।
मनहु स्वर्ग दरबार लग, यासम कोऊ नांहि ॥
अधो दृष्टि निरखन अवनि, वरुण जहां चल आय।
मानभंग का दुख अधिक, मनहु नर्क दुखदाय ॥

मानभंगसम दुख कोउ नांही, जानै वह भोगै जग मांही।
यों लख रावण याहि उचारा, तुम हो क्षत्री वीर अपारा॥
रणमंह गति तो दोय बखानी, बंधै, बांध या प्राणन हानी।
वीर, न, रण से मुखको मोड़े, अपना विरद कबहुँ ना छोड़ें॥
दोहा–यातें शोक निवार अब, सुखयुत थानक जाव।
करहु राज्य, सुखसे रहो, मोपै क्षमा लखाव॥
मित्र बांधवन से मिलो, अधिक राज चह, पाव।
यों रावण कह विनय युत, बचन अमिय रसप्याव॥
सुनत वरुण यों, चित हरषाके, कहत अमिय वच, निज शिरनाके।
पूर्वे, मोकों शिक्षा दीन्हो, गर्व आपसे, तउ मैं कीन्हो॥
प्रतिपालकता आप लहाई, जगमँह न्यायरु नीति चलाई।
पुण्य प्रबल, यों अतिशय पाया, हनूमंत के शरणें आया॥
दोहा–जाके पौरुष साम्हने; महाबली थर्राय।
यानें मेरे पुत्र शत, बांधे क्षणमँह आय॥
केलि करै ये युद्धमँह, जन्मत, चूरो शैल।
कँहतक यश वर्णन करु धवल सुयशजग, फैल॥
काहू की ये वसुधा नांही, होय शूर भोगै जगमांही।
देव अधिष्ठित रत्नहि रोके, सहज शस्त्र से, बांधा मोके॥
महापुरुष अवतार तिहारा, क्षमो सभी अपराध हमारा।
हो निदेश पुत्री परणाऊं, अपना जीवन, सफल मनाऊं॥

दोहा– यों सुन रावण मुदितह्वै, परिणय आज्ञा दीन्ह।
तभी वरुण ने हर्ष युत, परिणाया, सुख लीन्ह॥
आनंद उत्सव ह्वै घना, कॅह तक वरणा जाय।
वरुण सुता सी वधु मिली, वरैं त्रिखंडीराय॥

हनूमानयुत रावण चाले, निज थानक मॅंह आय उताले।
चन्द्रनखा की सुता अनंगा, थी मानो वह निर्मल गंगा॥
सिन्धु मनो हनुमन्ता राई, सिन्धु समागम गंगा पाई।
परिणय उत्सव ह्वै अतिभारी, हुती भानजी दशमुख प्यारी॥

दोहा– कर्णकुंड का राज दिय, दीन्ही वस्तु अनेक।
कॅह तक वरणों दायजो, दै, कीन्हा अभिषेक॥
अन्य खगन ने निज सुता, एक सहस परिणाय।
हमानन्‌ यों परणि के, गुफा उपरैं आय॥

जंहपर जन्म लियाथा, याने, अति उत्सव तॅह कीन्हा, वाने।
स्वयं जयन्ती आप मनाई, संग हुता दल, वह खगराई॥
पुन सबने ता थान निहारा, चूर्ण पड़ा था पर्वत सारा।
चिन्तो पूरव, अचरज पाये, हनूमन्त पुन निज पुर आये॥

दोहा–किहकन्धा नगरी विषें, नृप सुग्रीव कहाय।
पद्मराग पुत्री हुती, रूप, गुणनि अधिकाय॥
कोय न याकों वर रुचैं, चित्र अनेक दिखाय।
लखा चित्र हनुमन्त का, काम बाण विध जाय॥

सखियां चित्र दिखा हारी, कोय चित्र पै दृष्टि न डारी।
ज्योंही याका चित्र लखाई, त्यों ही अति विह्वलता पाई॥
सखी तात ढिग, जाय उचारी, सुनत तात हू हरषा भारी।
चित्र, सुता को तभी रचाकें, हनुमत ढिग पहुंचाया जाके॥

दोहा—हनूमन्त ज्योंही लखा, पदमराग का चित्र।
त्योंही अति मोहित हुआ समझा रूप विचित्र॥
सोचै मैं इतनी वरी यासम जंचे न एक।
यह अति अनुपम सुन्दरी वैसे हुतीं अनेक॥

यों चिंतन कर झट ही चाला, सुग्रीवहिं पुर आय उताला।
सुन सुग्रीवहु किय अगवानी, लाय कीन्ह अतिही मिजमानी॥
हर्षित होय सुता परिणाई, मनो इंद्र अरु शची कहाई।
हनुमत ,निज पुरमँह आये, सुखयुत अपना काल विताये॥

दोहा—जगमँह पुण्य प्रधान हे,शिवमँह आत्म प्रधान।
जँह पर ईत न भीत है, गुण अनन्त की खान॥
अविचल आत्म स्वरूप दुख मैंट सकै ना कोय।
''नायक'' रमत स्वरूप मँह,सुख अविनाशी होय॥

❀ इति अष्ट त्रिंशतितमः परिच्छेद ❀

अचानक वज्रवाहु कँवर को वैराग्य उत्पन्न होने का अनुपम दृश्य वर्णन

—वीर छंद—

नृप उपजे इच्वाकुवंशमँह, मुनिसुव्रत तक परम्पराय।
ते असंख्य, निज परिणामन वश अधो, ऊर्ध्व शिव थानक जाय॥
पुरी अयोध्या सुन्दर सोहत, यासम पुरी न दूजी कोय।
विजय नरेश सुगुण गुण मन्डित, न्यायरु नीति धुरन्धर सोय॥

दोहा—सुत सुरेन्द्र याका हुआ शशि समवृद्धि लहाय।
यौवनमँह परिणय किया, क्रमशः सुत उपजाय॥
वज्रवाहु अग्रज भया, यद्भ्रात पुरन्दर जांन।
वज्रवाहु परिणय किया, तिय थी रती समान॥

लुब्ध भँवरसम, ये मड़राया, क्षण, तिय तजन, न समरथ पाया।
निश वासर ही लिया निहारै, मनहु चित्र, सुध बुधह बिसारै॥
जवहिं भ्रात लैने को आया, नाम उदय सुन्दर कहलाया।
आप स्वयं ससुरालै चाले, सज पै बैठ तिया अरु साले॥

दोहा—ऋतू वसंत सुहावनी, चले बनी के मांहि।
दृष्टि अचानक लख मुनी, रागद्वेप जिन नांहि॥
मुद्राशांत सुखद लखो, भासैं थंम समान।
तन से खाज खुजावते, मृगगण उपलहि जान॥

खड्गासन, दुइ भुजा लुँबाये, अहि से वेष्टित मनहु लखाये ।
वक्षस्थल मनु मेरू जानो, जंघा को, गज बन्धन मानो ॥
तपकर, क्षीण भई है काया, रविसम अपना तेज छिपाया
हैं रत्नत्रय निधि के स्वामी, सर्वश्रेष्ठ, मुनिगणमँह नामी
दोहा—ऐसे मुनि को लखत ही, कुँवर अनंदित होय ।
चिन्तै, धनि, यैसे मुनी, शत्रु मित्र सम दोय ॥
सकल उपाधी तज दई, जग की छांडी आश ।
राचे, आत्मस्वरूप रम, धर शिव की अभिलाष ॥
आप तरें, पर तारनहारे, भवदधि पार उतारनहारे ।
मनुज जनम का फल इन पाया, विषयन मांही नांहि गमाया ॥
विषय कषाय महा दुख देवैं, भ्रमै चुरासी पार न लेतै ।
यातें द्रुत ही इनको त्यागूं, निज उद्धार मांहि अब लागूं ॥
दोहा— कुँवर चित्त एकाग्र लख, साले ने की हास ।
यों निरखत मुनि ओर हो, मनु धारन की आस ॥
वज्रबाहु यों सुन कही, हम मन की लख लीन ।
तुमहु कहो मन आपने, का विचार अब कीन ॥
साले ने मन मांहि विचारा, हास्य मांहि ये वचन उचारा ।
दीक्षा धरन सहज है नांही, ये अति रागी है तिय मांही ॥
यासे विहँसत वयन उचारा, जो विचार तुम्र सोय हमारा ।
मुझे परीक्षामँह कम जानो, तुम से कम ना बढ़कर मानो ॥

दोहा—"नायक" बोल अमोल है, जो कोई जानै बोल ।
मन कांटे पै तौलकैं, मुख के बाहर खोल ॥
वचनन हाथी पाइये, वचनन हाथी पांव ।
वचन अमर कर देत है, वचन मृत्यु का दांव ॥
वज्रबाहुसुन साले बैना, हरषा चितमँह फड़के नैना ।
गजतें उतर मुनी ढिग आया, वस्त्राभूषण तज शिर नाया ॥
लुँचे केशहि उपधि उपारे, बाह्याभ्यंतर तज दिय सारे ।
वज्रबाहु ने वचन निबाहा, तन से धारा जो था चाहा ॥
दोहा—मन चिन्तै वचतें कहै, सोई तन से धार ।
वही कहाय महात्मा, करै कर्म का छार ॥
देखा किया साले ने, निकसा बन्धन तोड़ ।
हँसी माँहि सांची भई, वृथा लगाई होड़ ॥
पश्चाताप कीन्ह मन मांही' ये मुनि वेष पलटता नांहीं ।
यातें मनमँह अतिहि विसूरा, ह्वै दुख मनहु वज्र ने चूरा ॥
बिलखत वदन वयन यों बोला, अमिय मांहि तुम क्यों विष घोला।
हमतो विहँसत वचन उचारा, तुम कृत मनहु सत्य व्रत धारा ॥
दोहा—वज्रबाहु मुनि ने कहा, सुनहु भव्य मम बात ।
नांहि हास्य हो धर्म मँह, धर्म अमिय की जात ॥
हास्य मांहि भी कोउ पिये, ताहि अमर कर देय ।
ताहि भांति तुअ हास्य तें, हमहु अमिय पी लेय ॥

हास्य मांहि कोउ औषधि पीवै, रोग नशै निश्चय तें जीवै।
हास्य मांहि सत ज्ञान विकाशै, ज्ञानी होय मर्म को नाशै॥
हास्य मांहि यदि मन्तर साधै, जहर सर्प का तुरत विराधै।
यातें हास्य महा उपकारी, जानें मेरी गती सुधारी॥
दोहा—मुझे हास्य तें सुख हुआ, तुमहू निज दुख खोव।
आप रूपमँह रमण कर, सुख अविनाशी जोव॥
यों कह ये निश्चिन्त हो, साले का पट खोल।
यातें निश्चय प्रानि का, जानहु बोल अमोल॥
साले ने भी दीक्षा लीन्ही, हिय से ममता सब तज दीन्ही।
वचन इसी ने कीन्हा पूरा, जगमँह येही भारी शूरा॥
हास्य घड़ी यह धन्य कहाई, हास्य करी कर सांच दिखाई।
ऐसी हास्य सबहिं की होवै, सत्य लहाय कर्म को खोवै॥
दोहा—सजल नयन तिय ने लखो, ली दीक्षा पति, भाय।
लखत स्वप्न या जग रही, अद्भुत दृश्य लखाय॥
क्षणमरमँह जो का भयो, राग विराग विरोध।
महाराग यह पलटकें, हुआ विराग सुबोध॥
पीहर या ससुरालै जावूं, अपना जीवन जहां वितावूं।
मुझ निमित्त से पिय था रागी, अब तज कर वह बना विरागी॥
मम भ्राता ने हांसी कीन्ही, पै पिय ने वह सांची लीन्ही।
हास्य मांहि जब सांच दिखाया, तिन अपना कर्त्तव्य निभाया॥

दोहा—मैं इत उत की ना रही, दोनों धरा विराग।
तिय का पिय जब लग रहै, तब लग रहै सुहाग॥
पिय ने सयम ग्रहण किय, तब तिय का क्या धर्म ?
राग मांहि संगम करै, (क्या) संयम मांहि विधर्म ?

ऐसा कबहुं होन न पावै, चाहे प्रान भले ही जावै।
धर संयभ कर्त्तव्य निवाहूँ, बनूं संयमन धर्म सराहू॥
यों विचार द्रुत दीक्षा धारी, पहिरी श्वेत मात्र इक सारी।
हुई आर्यिका हर्षित होके, सब विकार निज चित से खोके॥

दोहा— राग मांहि थी कल्पना, पिय, तिय राग विकल्प।
जब विराग धारण किया, पिय, तियगत निर्कल्प॥
समभावन महिमा अगम, मुख से कही ना जाय।
जे धारें ते नित लखें, या जिनदेव लखाय॥

इन के संग सुभट जे आये, उनने दुहु थल जाय सुनाये।
सुनत कुटुम्बी विलखे होकें, आये सबही अति हिय शोकें॥
पुन धीरज धर हुवे विरागी, दीक्षा धरन सुमति तिन जागी।
ताहि समय छह बीस कुमारा, परिग्रह तजकें मुनि पद धारा॥

दोहा— हुई अनेकन आर्यिका, हुआ धर्म उद्योत।
वज्रबाहु के निमित तें, वहा धर्म का स्रोत॥
निमित निमित की जगह पर, उपादान हैं आप।
उपादान सुलटे नही, सहै जगत अताप॥

उपादान की महिमा भारी, शुद्धाशुद्ध अवस्था धारी।
होय अशुद्ध, अशुधता सेवै, पाप पुण्य सामगी वेवै ॥
जाही समय शुद्धता धारै, पाप पुण्य दोउ हेतु निवारे।
यातें द्रव्य दृष्टि जिय धारो; पूर्ण अखण्ड स्वभाव विचारो ॥
दोहा—त्रय कालन मँह द्रव्यसम, हो विशेष पर्याय।
भव्य लखै दोईन को, तव भव वंश नशाय ॥
क्षण भंगुर पर्याय है, द्रव्य दृष्टि थिर होय।
"नायक" रमत स्वरूप मंह, पद अविनाशी जोय ॥

॥ इति एकोन चत्वारिंशततमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

अथ कीर्तिधर स्वामी के वैराग्य का वर्णन

वीरछन्द—

वज्रवाहु लघु भ्रात पुरन्दर, करै राज्य अवधापुर मांहि।
पाके समय विराग उपाया, भोगन रुची रहो अब नांहि॥
कीरतधर को निज पद दीन्हा, दीक्षा लीन्ही गुरू ढिग जात।
कीन्ह उग्र तप बाह्याभ्यन्तर, पद अविनाशी की हिय चाय॥
दोहा– नृप कीरतधर सूर्यसम, अपना तेज दिखाय।
न्याय नीति नित विस्तरे, जनता को अपनाय॥
दिवस अमावस के समय, लख फीकी रवि ज्योति।
मनो केतु ने ग्रस लिया, याते मलिन उद्योत॥
चिन्तै नृपति, सूर्य तम नासै' अजु तो ढका, तिमिर सम, भासै।
केतु बली से, चली ना याकी, तब शरणाई, गह लहि ताकी॥
यातें वस्तु कबहुँ थिर नांहि, उपजै विनशै क्षण के मांही।
मैं भी काल ग्रास हो जाऊं, संयम भाव यदि ना लाऊं॥

दोहा–यो विचार कर चित्त मँह, लीन्हें सभी बुलाय।
मंत्री परिजन पुरजनहु, सकल सभा मँह आय॥
कहा, सुनहु अब सकलजन, ज्यों रवि तेज नशाय।
त्यों इक दिन मैं भी नशूं, रहै न थिर यह काय॥

यातें आत्म हितै में लागूं, सबहिं परिग्रह चित से त्यागूं।
धर्म कर्म सब मिलकर कीजो, ना चित्त से अब विसार दीजो ॥
सुनत सकल भू ओर निहारे, मानो हूये गाज के मारे।
कंठ रुंधे शोकें हिय मांही, मनहु चित्र हैं, चेतन नांही ॥
दोहा—लखा दृश्य यों भूप ने, बोले वयन मनोग।
हर्ष बात मँह या समय, तुम सब करते सोग ॥
जाहि मोह के नाशनें, राज पाट सब देवँ।
ताहि मोह सन्मुख रखत, काविध अब गह लेवँ ॥
होय भावना जाकी जैसी, फलै नियम से ताको तैसी।
जिहिं हियमँह निज आतम भासै, वही बिभाव मोह को नासै ॥
संयम रुचि, अब हियमँह छाई, पर सम्बन्ध रुचै ना भाई।
तुम सब हो मेरे हितकारी, सम्मति देय बनो उपकारी ॥
दोहा—सुन याविध के वयन, हुइ, सब ही दुखी समाज।
मनो वज्र हिय पै पड़ा, कठिन समस्या आज ॥
विनवत सब विनती करें, सुनहु हमारी नाथ।
आप स्वयं निर्णय करहु, मती बनाव अनाथ ॥
हम सब हैं नरनाथ भरोसें, आप तजो पुन काविध तोषे।
विन नरराय प्रजा को रच्चै, राखै अंकुश कोबुध दच्चै ॥
दुष्टन दण्डै सुष्टन पालै, या चिन्ता ही हियमाँह सालै।
दूजै यौवन वयस तिहारी, नांहि अभी उत्तर अधिकारी ॥

दोहा– उत्तर अधिकारी बिना, को जनता को पाल ।
आप जाव निज हित करन, हमें विपति मँह डाल ॥
दुहुन बात सोचो प्रभू, नयन दुहुन से देख ।
इक नय ही ना देखिये, प्रजा पुत्र सम लेख ॥

योंसुन नृप ने पुनः उचारी, काल गती विकराल अपारी ।
सब को रचै, अपुन विगारै, कौन सुधी या भांति उचारैं ॥
काल अनन्ते जगमँह बीते, कबहुं ना चेते, ना जग जीते ।
यातें मोह अवश्य विदारों, निश्चय संयम भाव सम्हारों ॥

दोहा–हो मेरी रविसम दशा, बूड़त लगै न देर ।
काल अचानक ही ग्रसत, यामँह कछू न फेर ॥
पुन ना संयम धर सकों, यातें भययुत आज ।
निश्चय व्रत धारण करूं, सुनलो सकल समाज ॥

सुनत सचिव ने उपाय कीन्हें, लाय कोयले ढिग रख दीन्हें ।
कोयलन मध्य रखा इक हीरा, चमके वे सब ताके तीरा ॥
पुन हीरा को उठाय लीन्हों, ना चमकें, तो बताय दीन्हों ।
लखा मध्य नृप, जनता सारी, न्याय नीति गह अंकुश भारी ॥

दोहा– त्यों नृप को हीरा लखहु, हम सब कोयला जात ।
बिन नृप के ना रह सकैं, बिन नृप बनें न बात ॥
धर्म कर्म नशहै प्रभो, नृप जनता इक पच्छ ।
पिता पुत्र सम व्यवहरें, समझो हे गुणदच्छ ॥

जस राजा तस प्रजा कहाई, नृप आदर्श प्रजा अनुयाई।
पुन्यवन्त होवै यदि राजा, जनता करै पुण्य के काजा
पाप करै यदि अवनि नरेशा, प्रजा करै तिम, पुण्य न लेशा।
मन वच तन कृतकारित मोदन, पुण्य पाप विधि का ह्वै सोधन॥
दोहा—चली छाय परपाटियों, सुतको दैके राज।
आप गये संयम धरन, साधन शिव सम्राज॥
सचिव सहित सब यों कहा, मानहु हे नरनाथ।
विनय करत हैं हम सभी, मती वनाव अनाथ॥
यों दृष्टान्त लखा नृप त्योंही, उठा विचार मनहिं मन त्योंहि।
सचिव बताय ठीक दर्शाई, बिन नृप प्रजा अनाथ कहाइ॥
यातें जबही सुतमुख देखूं, संयम धरन घड़ी सब लेखूं।
यों निश्चय कर वयन उचारा, माना हमने वयन तिहारा॥
दोहा— पै निश्चय अब जानल्यो, जास समय सुत होय।
मुख देखत संयम धरों, रोक सकै ना कोय॥
याविध कह निश्चिन्त हो, राज काज चित देय।
पै चिन्तै संयम घड़ी, कौन समय सुत होय॥
समय पाय तिय गर्भ लहाई, पै गोपै, ना जानें राई।
नव महिने ना भांति वितीते, पुत्र हुआ मनु रवि को जीते॥
तहखानामँह सुतको जाई, केवल दासि भेद यह पाई।
चीर मलिन धोवै बन मांहीं, कोउ भेद या जानें नांहीं॥

दोहा—जाय गोप वनसर विषें, चीर स्वच्छ कर लात।
एक समय स्वच्छत समय, विप्र तहां पै आय॥
द्विज पहिचाना दासि को, अचरज मनमॅह सेय।
वस्त्र स्वच्छ ने काह यह, वनशर शरणा लेय॥

वेगहिं याते गिरा उचारी, क्यों स्वच्छन को इहां सिधारी।
मालुम होत रानि सुत जाया, ताइ गोपनें कार्य रचाया॥
सुनत दासि ही अति अकुलाई, मनहु गाज माथे पै आई।
कौन छिपाय सकै जिम हाथी, नांहि छिपै वहु वात वनाती॥

दोहा—गोपन समरथ ना हुई, तव ये डांट वताय।
तऊ विप्र विहस रहो, यासे भय न खाय॥
साम दाम से ना चली, प्रिय रहस लख लीन।
खास दासि यह रानिकी, सुत जन्मनता कीन॥

सव विध से अव दासी हारी, गोप्य रखन तव विनय उचारी
विहंसत विप्र वचन दे दीन्हा, निज-निजमार्ग दुहुन ने लीन्हा॥
विप्र लालची मन मॅह सोचै, पुरस्कार लहुँ नृप सुन रोचै।
यों चिन्तनका नृप ढिग गाके, कहा विनत युत याविध आके॥

दोहा— चिरजीवै नृप का तनुज, धर्मवन्त भूपाल।
नादै विरदै जगत मॅह, रविसम उपजा वाल॥
सुन नृप, सवही चकित ह्वै, कहा कहै द्विज आय।
बिना गर्भ किम सुत हुओ, नशा मांहि वतलाय॥

कोउ सोचव कोउ हरषाये, कोऊ मनमँह अचरज पाये।
तरु बिन फलकी बात कहीये, किम निश्चय हो, बात सही ये ॥
याविध सोचें सब दरबारी, तभी नृपति ने गिरा उचारी।
कहहु विप्र तुम जानो कैसे, उपजा पुत्र लखा हम ऐसे ॥
दोहा—यथा तथा द्विज ने कहा, जो कुछ हूआ प्रसंग।
गया अचानक वनसरहिं, हुआ दासि से संग ॥
वस्त्र पखालत तांहि लख, मनमँह अचरज लीन।
कीन्ह प्रश्न तब दासि से, सुत का निर्णय कीन ॥
गोप्य रखन बहु बात बनाई, रुषित तुषित बहु डांट बताई।
पै मैं विहँसत निर्णय कीन्हा, नृपति गृहै सुत जन्मन लीन्हा ॥
मैं लालचबश तुम्हें जताया, याविध कहके शिर को नाया।
योंसुन राजन हर्षित होके, बहुधन देय विप्र को तोषे ॥
दोहा—आये नृप रनवास अरु, तहखानामँह जाय।
लखा पुत्र रविसम उदित, तिलक कीन्ह द्रुत राय ॥
आप जाय मुनिपद गहा, रंच न कीन्ह विलम्ब।
"नायक" रमत स्वरूपमँह, मिलै मोक्ष अविलम्ब ॥

इति चत्वारिंशततमः परिच्छेदः समाप्तः

अथ सुकौशलस्वामी को अंतकृत केवली होने का वर्णन

वीरछन्द—

आतमहित तप तपें कीर्तिधर, मोह अरी किय चकनाचूर ।
सहें परीषह बाइस सारी, आत्मज्ञान जाना भरपूर ॥
ये गजेन्द्रसम सबथल विचरें, ईर्यासमिती पालनहार ।
धारें अनशन बेला तेला, आए अयोध्या लैन अहार ॥

दोहा—तास समय अवधाविषें, तसु तुत यौवनवन्त ।
नाम सुकोशल कुशल बुध, करै राज गुणवन्त ॥
न्याय नीति सम्पन्न नृप, जनता को अपनाय ।
बैठे थे छत पै तभी, हुती माय अरु धाय ॥

थी सहदेवी याकी माता, ताहि मुनीपद नांहि सुहाता ।
कारण पति तज, ह्वै वृतधारी, शिशु की दया न रंच विचारी ॥
यातें रोषे मुनिपद मांही, दर्शन की हू रुचि रहि नांही ।
कदे दृष्टिमँह कोउ मुनि आवै, रोपै तत्त्वण ताहि भगावै ।

दोहा—दें आज्ञा निज सेवकन; पुर पैसन मत देव ।
यदि प्रमादवश आयकोउ, भगाय तत्त्वण लेव ॥
शंकै, लख लेवे शिशू, वशी होत वृतधार ।
यातें सेवक सभय चित्त, मुनि को देंय निकार ॥

मुनि को प्रविशत सेवक देख, तिन रोकन ना समरथ लेखा ।
काविध सें अब इनको रोकें, पुर मत पैसो निर्भय होकें ॥
मुद्रा शांति लखें वे ठाड़े, रोकन को ना बढ़े अगाड़े ।
विस्मित चित्त छत्री ही देखें, धन्य भाग्य अपना सब लेखें ॥
दोहा—या समये विस्मृत हुई, थी आज्ञा रजद्वार ।

यदि लख काहू मुनिवृती, तत्क्षण देव निकार ॥

पै प्रभु लख रोका नहीं, वे पैसे पुर मांहि ।

आहारन को विधि सहित, चितमँह शंकें नांहि ॥

पुरै भ्रमहुँ रजद्वारे आये, सह देवी के नयन लखाये ।
लखतइ चितमँह अति रिसयाई, तबहि शीघ्र भृत्यन ढिग आई ॥
रुषित होय अति आतुर बोली, मनों तोप से छूटी गोली ।
हो सब अन्धे नांहि दिखावै, देखहु वह भिखमंगा आवै ॥
दोहा—देह मलिन, तनवस्त्र नहिं, धरा पाखंडी वेष ।

घर खोवा जानो इसे, धरै दया ना लेश ॥

केवल नग्न शरीर किय, राज पाटतज नारि ।

सुतहू जन्मत तज दिय, निरदयता को फारि ॥

यातें वेग नगर तें काढ़ो, ना निकसै तो मार पछाड़ो ।
याविध आज्ञा दै ललकारी, मनो नाहरी आन दहाडी ॥
कृष्णनागिनी सम फुनकारी, बाहर थैली जहर निसारी ।
आरत रौद्र हिये अति ध्याई, आयु बन्ध की वेला आई ॥

दोहा–आयु बँधी तिर्यंच की, था वह समय त्रिभाग।
आयु बंध भुगते विना, कटै न आयु विभाग॥
यातें बांधत क्षण विषें, भोगै काल प्रमान।
यातें रहो सचेत तो, होय कर्म की हान॥

यों आज्ञा सुन सेवक कम्ये, भययुत सारे थर थर जम्पे।
मुनि ढिग आकें कुवच उचारे, पुरतें निकसो यो ललकारे॥
काष्ट यष्टि सब करमँह धारें, करें अवज्ञा कुवच उचारें।
भृत्य क्रूरपन सहजहिं धारो, पुन आज्ञा हुइ मार निमारो॥

दोहा–होय सहज गुरवेल कटु, नीमहि चढ फरयाय।
तो कटुता को का कहें मनो जहर हो जाय॥
त्योंहा सेवक कहँ कुवच, ललकारें मुनि घेर।
बेंत दिखाय भगायवें, रहे नाहर सम हेर॥

लखी धाय भृत्यन रिसयाकें प्रभुहिं अवज्ञो, आज्ञा पाकें।
लखतइ मनहुँ कटारी लागी, खाइ मूरछा सुध बुध भागी॥
योंलख नृपने वेग सचेती, रुदनीं तबहि हिलकियां लेती।
बँधी हिलकियां अति अकुलाई, तब नृपने दी धीरजताई॥

दोहा–अति आश्वासन देयके, पूँछा दुख का हाल।
का कारण ह्वै यों दुखी, कौन दुःख हिय साल॥
कोंनें कह दिय कुवच या, मात अवज्ञी तोय।
सचमुच तुझे दुखाइ तो दंडो द्यूं दुख वोय॥

जनन मात्र तें जननी मेरी, पला गोद में सुखसे तेरी।
तुअ पथ पीके पुष्ट हुआ मैं, तुझे मान्यता अति द्यू गा मैं॥
यातें वेग बतावहु मोकों, कौन दुखाया हियमँह तोकों।
याविध नृपने बहु समझाया, तब याचित कछु धीरज आया॥
दोहा—नीठ नीठ याने कहा, सुनहु पुत्र मम बात।
असह दुःख मोकों हुआ, मोपै कहों न जात॥
हुई अवज्ञा तात की, जिहीं से जन्म लहाय।
हम तुम सबके हैं प्रभो, आज अहारन आय॥
पूर्व वृत्त संक्षेप बताया, प्रथम विराग तात ने पाया।
सबने रोका ना अधिकारी, तब को रक्षा करै हमारी॥
दै दृष्टान्त तिन्हें समझाये, पुत्र होन तक "आन" धराये।
तुषिय होंय कह "साख" उचारों, सुतमुख लख पुन संयम धारो।
दोहा—याविध कह तुअ तात ने, मानी सबकी बात।
समय पाय तुअ जन्म ह्वँ, रवि सम तेज दिपात॥
वहुतक गोप्यो माय तुअ, छिप न सको तुअ जन्म।
लख पितु तोकों तिलककर, लिय मुनिपद आजन्म॥
तपें उग्र तप तात तिहारे, आए अहारन वे तुअ दारे।
विन अहार कोउ लौटा नांहीं, परम्परा थी इस गृह मांही॥
उनहिं अवज्ञा माय कराई, भृत्यन द्वारा दै निसराई।
लखी अवज्ञा में जब प्रभू की, दुःख हुआ अति होत अभी भी।

दोहा–चली आइ तुअ वंशमँह, सुतको दैके राज।
तात जाय संयम धरन, साधन शिव सम्राज ॥
रीति विलोपै माय तुअ, पियमुनि दियो निकास।
कहै देख मुनिभेष सुत, करै न मुनिपद आस ॥
सुनत सुकौशल नृप दुख पाया, नीचे उतर वेग तें आया।
तव मुनि, दर्शन कों द्रुत चले, पांछे दौड़े वाहन वाले ॥
छत्र चंवर सव सेवक लाये, परिजन पुरिजन हू संग धाये।
पै नृप ने परवाह न कीन्हो, पांव पियादे ही चल दीन्हो ॥
दोहा–पूछे नप, पुरजननन से, कँहते गये मुनिराज।
वेग वनावो, पितु मुनिहीं, दर्श करूं, मैं आज ॥
अभय पूछत मुनि निकट, पितु मुनि को शिरनाय।
सजल नयन, कर जोड़कें, की थुति हे, मुनिराय ॥
आप जगत के, हो उपकारी, आज आइ है मेरी वारी।
मैं अनादि से जगमँह सोया, निज स्वरूपकों कवहूं न जोया ॥
अग्नि लगी लख मुझे वचायो, आहारन मिस आय जगायो।
दीक्षा देव करो ना देरी, किरपा करहु सुन विनती मेरी ॥
दोहा–याविधि नृपके वयन सुन व्है शोकित सव लोक।
परिजन, पुरजन भृत्यजन करत विनय दे धोक।
सुनहु नाथ याविध विनय, हम सव करत पुकार ॥
परम्परा मेंटो मती जनता शरणाधार ॥

आष तात हू संयम धारो, सुतमुख[illegible] विचारो ।
आंपहु सुतमुख लखकें कीजो, जो मन भाव वृत धर लीजो ॥
विनसुत किमचलिमुनिपरिपाटी बावा दादा सुत अरु नाती ।
हुए मुनी अरु मुनिपद धारें सुत को दै पद भार उतारें ॥

दोहा—परिजन पुरजन के प्रति कहा सुकौशल राय ।
विन सुत संयम ना धरत यदि यों परम्पराय ॥
तदिनिश्चयचिंतमंह धरहु रानि उदर सुत जान ।
ताहि तिलक मैंने कियो अब नृप ताको मान ॥

यामें संशय रंच न मानों दी आज्ञा सो ताहि प्रमानो ।
यों कह तत्त्तण दीत्ता लीन्ही ममता परिग्रह से तज दीन्ही ॥
पितु मुनि संगै कीन्ह विहारा भ्रमत फिरें देशान्तर सारा ।
वनमंह तिष्ठे किय चौमासा ऋतु पावस तक लियउपवासा ॥

दोहा—हरित भूमि तृणसंकुलित समझ परै ना पन्थ ।
हिंसा भय गमने नकहुं महामुनी निर्ग्रन्थ ॥
दामिनि दनकै मेह अति बरसै मूसलधार ।
शीतल चलै बयार जिमि चुभै धार तलवार ॥

नाग रीछ व्याघ्रादिक सारे, तंह विचरत शार्दूल दहाड़े ।
तात पुत्र मुनि निर्भय होकें, तिष्ठे आतमनिज निधि जोके ॥
द्वादशभावन चितमंह भाये सहें परीषह समता ध्याये ।
याविध कीन्ह पूर्ण चौमासा, करी पारणा की तब आसा ॥

दोहा—माय सुकौशल सुनतही सुत मुनि व्है जा दूर।
आर्तध्यान धरके मुई हुई नाहरिन क्रूर॥
उपजी ताही वन विषैं जंह तैं युगल मुनीश।
महा भयानक, या वदन मनु यम जिह्वा दीस॥
याही ओर विहरती आई जंहसे गमन कीन्ह मुनिराई।
ज्योंही मुनिवर देखा याको वेग आवती याहि दिशा को॥
तबपितुमुनि, सुत मुनिहिं उचावै, दिखत नाहरी हमको खावै।
हमने केती समता ध्याई, लैन परीक्षा यासे आई॥
दोहा—सुन सुत ने आदेश को विंनवत यो उच्चार।
श्री गुरु चरण प्रसाद से निर्भय चित्त मंझार॥
निधिअखंड लखि आत्मकी व्यापै आतम मांहि।
क्षणभंगुर पर्याय यह विनशैगी थिर नांहि॥
योंकह आतमध्यान लगाके तिष्ठे दोऊ स्वात्म समाके।
तभी प्रमाद सुकौशल नाशो शुकलध्यान का बल परकाशो॥
ज्योंही क्षायिकश्रेणी मांडी तुरत मोह की मूल उपाड़ी।
त्योंही लह बारम गुणथाना द्वितिय शुकल का पाया ठाना॥
दोहा—लखी नाहरी पुत्र को हृदय विदारा तास।
तक मुनिने केवल लहा कीन्ह अघाती नास॥
हो अंतकृतकेवली लहा मोक्ष साम्राज।
गुण अन्नत प्रगटे सकल प्रगटा आतमसमाज॥

इन्द्रादिक सुर तत्क्षण आये केवल उत्सव तवहि रचाये।
जय जय नाद सुरन ने कीन्हें, यों अतिशयकर अति सुख लीन्हें।
तव मुनि कीरतधरने जानो, टल उपसर्ग देवगण आनो ॥
खोला ध्यान सुरनकों देखा, केवलि अतिशय का फल लेखा।
दोहा—अवधिज्ञान से यों, लखा यही सुकौशल माय।
आरत से ह्वै नाहरी सो निज सुत को खाय ॥
तभी ताहि उपदेश दिय अति संबोधन कीन्ह।
जासुत आरत धर मुई, ताही को खा लीन्ह ॥
जातिस्मरण हुआ अब याको, पूरव का भव भासा ताको।
मैं हूँ मां ये सुत है मेरा, मुझे मोह ने अति ही घेरा ॥
यासे मैंने आरत धारी, हुई नाहरी गती बिगारी।
पति मुनिका हू अविनय कीन्हो, याविध पूरव भव लखलीन्हो।
दोहा—लखतइ दुख दारुण हुआ मुनिपग नाया शीस।
रुदनें चिन्तै याविधै कहा करों जगदीश ॥
शिरको पटके भूमिमंह ह्वै दुख अपरम्पार।
चिन्तै मनमंह हे प्रभो मेरी गती सुधार ॥
कीरतधर ने पुन समझाया, याको आतम रूप बताया।
मोह रागरुष जीको घातें, नाश करो द्रुत इनको यातें ॥
सम्यक सांचा रूप लखावो, निधि रत्नत्रय आतम ध्यावो।
यों मुनिने संबोधा ताको, उपजा सम्यक तब ही याको ॥

दोहा—यातें द्रुत समता धरी हिये अणुव्रत धार।
क्रम क्रम से शिवपद लहै कीन्ह आत्म उद्धार॥
सम्यक आत्म स्वरूप निधि येही शिवपद देय।
"नायक" रमत स्वरुप मंह निश्चय शिवपद लेय।

❀ इति एकचत्वारिंशतितमः परिच्छेदः समाप्तः ❀

अथ सिंहका राणी का महात्य, मांसाहारी सौदास का यतिपद ग्रहण वर्णन

वीर छन्द—

नृपति सुकौशलसुत, गुणमंडित, नृपति हिरएय गर्भ सुत नाम ।
शस्त्र शास्त्र विद्यायुत शोभित, सुत नघोष उपजा तसु धाम ॥
ह्वै सुखयुत नृह परजा पालै, बुद्धि कुशल गह नीतरु न्याय ।
इकदिन, दर्पणमँह मुख निरखत, एक केश को, श्वेत लखाय ॥
दोहा—ह्वै विकरक यों चिन्तवै, दूत काल नियराय ।

देय सँदेशा, समझ जा, विघटै तेरी काय ॥

करहु शीघ्र उद्धार निज, नहिं पांछे पछताव ।

चिड़िया चुन गइ खेत पुन, पांछे तुम का खाव ॥

यों विचार, द्रुत सुतहिं बुलाके, देव आपना पद हरपाके ।
जात सुगुरु ढिग दीक्षा लीन्ही, परिग्रह ममता द्रुत तजदीन्ही ॥
तपें उग्र तप, त्रय ऋतु मांही, सहें परिषहकम्पें नांही ।
भैक्ष्यशुद्धियुत, लेंय अहारा, विविध देश मँह करें विहारा ॥
दोहा—नृप नघोष चिन्तन किया, निजबल राज बढ़ावं ।

उत्तर दिशमँह जायकें, तँहके भूप नवाऊं ॥

यों विचार, द्रुत दलसहित, नृप ने कीन्ह चढ़ाइ ।

ये तो उत्तर दिश गये, अवधाशून्य कहाइ ॥

यौंलखे दक्षिण के नृप सारे, या अवधा को लैन विचारै।
आके कीन्हा धावा यापे, सहज लेंय, मनमॉहयों व्यापे॥
यौंलख नघोष की पटराणी, नाम सिंहिका, थी क्षत्राणी॥
हम पै बहु नृप, चढ़कें आये, लैन अयोध्या चितमॉह चाये॥
दोहा– होय कुपित, द्रुत सैन्य ले, अरि के सन्मुख जाय।
मारामार मॅचाइ यो, अरि सब दिये कपाय॥
देखत याकी वीरता, क्षणक न ठहरा कोय।
अतिहि प्रचंड बयार तें, घन विघटन जिम होय॥
अरि सब भागे देखा याने, कीन्ह चढ़ाई, तिनपर ताने।
निजपौरुषसे, सर्व हराये, दक्षिण दिश के, भूप नवाये॥
कहैं, धन्य नारी जग मांही, यासम विक्रम नरमॅह नांही।
याविध गौरव, बढा विशाला, याका हुकम सबो पै चाला॥
दोहा–विजय ध्वजा फहराय पुन, आई अपने थान।
परिजन पुरजन सबहिं ने, कीन्हा अति सन्मान॥
लौट नृपति आये जबै, उत्तर दिश कों जीत।
पटराणी का सुयश सुन, नृपहिं जची विपरीत॥
तियपद तज पौरुष बतलावै, अपना श्रेष्ठपना दिखलावै।
मोकों जान लगी ना देगी, यानें समतर कीन्ही मेरी॥
परिजन पुरजनहूं यश गावै, याका विक्रम अधिक बतावै।
नारी होके सब नृप जीते, सुनत नृपति कें, कछु दिन बीते॥

दोहा–होय कुपित नृप चित विषें, गुण तज अवगुण लीन्ह ।
कीन्ह पराभव रानि का, पटराणी पद छीन्ह ॥
अधिक प्रशंसा ना रुची, पदतें दीन्ह उतार ।
कीन्ह अनादर अति घना, तसु अवगुण चितधार ॥

नृपही, उल्टी निन्दा ठाने, तब को आदर देके माने ।
चितमँह ममस दाहि ने लीन्हो, अशुभ कर्म झक झोरा दीन्हो ।
कछुक समय पून याविध बीतो, निर्भय होय, सिंहि का जीतो ।
जगमँह समता है सुखदाई, मेटै चिन्ता, हिय अकुलाई ॥

दोहा–चिन्तै, विपदा जगतमँह, सबही को विधि दीन्ह ।
तब मोरी का बात है, यों ममता गह लीन्ह ॥
यहै परीक्षा का समय, हियमँह ना अकुलावं ।
इकदिन ऐसा आयगा, पुन नृपसे पदपावं ॥

समय वितीतो, नृपतन माही, ह्वै दाहज्वर, मिटता नांही ।
सारे वैद्य यतन कर हारे, मंत्र तंत्र हू आदिक सारे ॥
ज्वरनाशनमँह चली न काकी, तब सुध आई, सबकों याकी ।
आय कही, नृपज्वर को हानो, करहु यतन तुम, जो कुछ जानो ।

दोहा–सुन प्रभु चिन्तो, सिंहिका, फूंक मार जल देय ।
कहि छिड़को नृपतन विषें, दाहज्वर हर लेव ॥
मेरे सत्य प्रभाव तें, नृप काज्वर मिट जाय ।
मैं जाग्रत या स्वप्नमँह, अनादरे ना राय ॥

पतिहि अवज्ञा, ना हिय आनी, ना मद कारण, चढ़ाइ ठानी।
रक्षण हेतु, युद्ध थल जाके, विजह कीन्ह अरिगणहिं नवाके ॥
पिय आशिष, मै परोक्ष पाई, याते विजय ध्वजा फहराई।
पै पाया फ़ल उल्टा मैंने, चिन्तूं, अशुभ कमाया तैंने ॥
दोहा– याते साक्षी सबहिं की, देती हूँ या तोय।
यदि सत्य है मम हृदय, नृप ज्वर देहैं खोय ॥
परिजन पुरजन सुनत ही, मनमॅह अचरज धार।
मंत्रित जल छिड़का जबहि, मिटा दहाज्वर भार ॥
छिड़का मनो अमिय तन मांही, मिटा दहाज्वर, पीरा नांही।
हो हर्षित, नृप गिरा उचारी, कोनें पीरा हरी हमारी ॥
अमृतजल ये कॅहसे लाके, छिड़का तन पर' निश्चय पाके।
विलम न लावो, वेग बतावहु, कृतज्ञता का फल चुकवावहु ॥
दोहा–याविध नृप के वयन सुन, सबने वृक्ष बताय।
हारे सवविध यतन कर पटराणी ढिग जाय ॥
तासे कह दुखः वृक्ष, किय, आग्रह, करन उपाव।
दारुण दुख नृप तन विषें, दाहज्वराहिं मिटाव ॥
यों, दुख, को लीन्हा वाने धर्म चिन्तना कीन्ही ताने।
या सत्य है यदि हिय मेरा, पिय प्रति आदरभाव घनेरा ॥
हैं अवज्ञा मनमॅंहठानी, मैंने कीन्ही ना मनमानी।
तो जल छिड़कत पिय सुख पावै, नृप दाहज्वर वेग मिटावैं

दोहा—सुनत नृपति हर्षित हुये, पटराणी बुलवाय।
विहँसत अति सन्मान किय, पद पूरब दिय राय॥
श्रद्धा ह्वै राणी विषैं, पुन ताकी थुति कीन्ह।
क्षमो राणि अपराध मम, तुझे कष्ट बहु दीन्ह॥

मैं मुरख ने नांहि विचारो, गुण को, तज अवगुण चित धारो।
तू नां होती यों क्षत्राणी, कैसे बचती ये रजधानी॥
धावा बोले अरि मिल आके, विजय ध्वजा लिय तिन्हें भगाके
पुनहु जाय, ध्वजा फहराई, वीरांगन पद जगमँह पाई॥

दोहा—पटराणी ने सुत जना, रखा नाम सौदास।
पापी पलका लोलुपी, रखै सदा पल आस॥
कर्म अनादि प्रधानता, बिगड़ा है संसार।
याते चतुगति मँह रूलै, लह दुख अपरम्पार॥

नृपति राज निष्कंटक पाया, भोगत सुखयुत काल विताया।
समय पाय पुन विराग लीन्हा, द्रुतही निजपद सुत को दीन्हा॥
जाय सुगुरु ढिग दीक्षा लीन्हें, परिग्रह ममता सब तज दीन्हें।
सहें परीषह बाइस सारी, तपें उग्र तप आत्म विहारी॥

दोहा—लह नृपपद सौदास ने, पलकी बाढ़ी आस।
पर्व माँहि हू पल चहै, नामिल होय निरास॥
कहै रसोईदार सों, आसा पूरो याहि।
बिन पल मैं ना रह सकों, डांट बताई ताहि॥

विनवत वाने बोला याको, सुनहु नाथ किम पूरों ताको।
पर्व मांहि ना जीव विराधें, जीव वधे विन किम पल रांधें॥
परम्परा से हैं यह रीती, कैसे मिटैं न्याय अरु नींती।
आप चाहो तो मोकों मारो, पल ना मिल है आश निवारो॥
दोहा—यों सुन विलखा होयके, विनवत बोला बोल।
मै हूँ भी जानत रीती सब, है यह पर्व अमोल॥

पै पल आशा ना तजूं, जावे चाहे प्रान।

ताको याविध से कहा, भेंट धर्म की आन॥

नृप को विलखत देखा वाने, पुन इक युक्ति सोची ताने।
जाय मसान तहां शव देखा, मृत वालक का, अति सुख लेखा॥
लाय तास शव रांधा ताको, मिष्ट स्वाद युत बनाय वाको।
असन पान को जब नृप आया, अति रुचियुतता पल को खाया
दोहा—यासे पूंछा भूपने कॅह से पलतू लाय)

वेग वतावो तुम मुझे,सयों जिज्ञासो राय॥

वह डरपा अति हिय विषें, अभयदान कहि देव)

तवहि वताहों रहस सव, यों सुन या कहि लेव॥
तवही वाने रहस वताया, मैंने मांह कहूं ना पाया।
जाय मसान मृतक शिशु देखा, ताको लाय सुःख अति लेखा॥
सविध मांस को रांध खिलाया, सभय होय ना तुम्हें जताया।
सुनयों नृपने तुरत उचारा, पकै मांस यों विधहि हमारा।

दोहा—राजाज्ञा सुन या विधहिं, नितप्रति जाय मसान।
लावै शव शिशु मृतक का, देवै नृप को खान॥
एक दिवस जब ना मिला, तब इक शिशु हन लेय।
नृप प्रसन्न राखन निमित, रांध खिला नृप देय॥
सहज मिलन जब शिशु ना जानो, सविध युक्ति तब यानें ठानो।
मीठा लेय शिशुन को देवै, पांछा रहै ताहि हन लेवै॥
शिशु छीजे जब बस्ती मांही, याका भेद खुलन विध नांही।
तभी कोय चित संयम आया, मीठा नृप ने क्यों बटवाया॥
दोहा—नितप्रति बांटै मिष्ट यों, कछू रहस या मांहि।
याते छिपकर देख लिय, गोप्य अब रहा नांहि॥
सब पुरमँह या रहस का, खुला भेद रुषियाय।
नृपहि रसोईदार युत, पुर बाहर निकसाय॥
नृप सुत को तब नृप पद दीन्हा, नाम सिंहरथ नृप पद लीन्हा।
न्याय रीति से राज चलाया, कबहुँ न जनताने दुख पाया॥
पिता पुत्र सम धर्म निबाहै, परिजन पुरजन सबको चाहै।
धर्म कर्म गह न्याय सुनीती, परम्परा की मही सुरीती॥
दोहा—देश मांहि पैसन कठिन, लखलिय जब सौदास।
इक्का दुक्का को लखै, मार बुझावै आस॥
नांहि मिला जब इक दिवस, रसौयदारहिं खाय।
जो जैसी करनी करै, सो तैसो फल पाय॥

तौभी भूख मिटै ना ताकी, फसै न चंगुल अब कोय ताकी ।
मंहराक्षस सौदास कहाया, काचा मांस मनुज का खाया ॥
महा भयावह मुख है याको, सिह समान पराक्रम जाको ।
एक दिवस मुनि दर्शन पाके, सुनी देशना हिय हरषाकें ॥
दोहा—सम्यक श्रद्धा ऊपजी, धरे अणुव्रत सार ।
साम्य भाव चितमंह उपज, धर्म हिये मंह धार ॥
नगर महापुर निकट लख, आया पुरके मांहि ।
तंहका नरपति था मुआ, ताका सुत था नांहि ॥
यातें जनता निर्णय लावै, गज उठाय ले, नृप पद पावै ।
यों विचार द्रुत गज को छांड़ो, था सौदास जहांपै ठाड़ो ॥
गजने वेग उठाया याको, कांधेपै बैठाया ताको ।
जनसमूह जय ध्वनी मंचाके, माना नृप, ढिग आये याके ॥
दोहा—याने समझा धर्मफल, तत्क्षण मैंने पाय ।
मैं कुधर्म किय पूर्वमँह' ताने राज छुड़ाय ॥
जब हिय सम्यकव्रत गहा, श्री गुरुचरण प्रसाद ।
ताने दई विभूति यह, चढ़ने धर्म जहाज ॥
न्यायनीति से राज चलाया, अतिसुख जनता को उपजाया ।
सबहि करें प्रशंसा याकी, गजने शकुन विचारा ताकी ॥
यों सुखयुत कछु काल विताया, पुन निजसुतपै दूत पठाया ।
नमन करो मेरे ढिग आके; याविध दूत सुनाया जाके ॥

दोहा–दूत वचन सुन पुत्र तब, उत्तर दीन्हा ताहि ।
नरभक्षी को ना नमें, कह पठाय दिय वाहि ॥
दूत आय उत्तर कहा, सुन ये अति रिषयाय ।
दल ले चाढ़ा पुत्र पै, रणथल पहुँचा आय ॥

द्रुत रणथलमंह वजे नगाड़े, पैदल सैना हुती अगाड़े ।
गय हय युत दल याका भारी, पुर जनता घवराई सारी ॥
मंहाराक्षस भखने आया, छौना हू ना वचै वचाया ।
पूर्व निकासन वदला काढ़ो, यातें दल ले हम पै चाढ़ो ॥

दोहा–सुतने देखा अरि प्रवल, तऊ सैन्य ले आय ।
आया याके सन्मुखें, मारामार मंचाय ॥
दुहू सैन्य संघट्ट ह्वै, मँचा युद्ध घमसान ।
तनकी आशा छांड़कें, प्रभुहित देवें प्रान ॥

वहुत समय तक सैना जूझी, अव प्रभुवन को रण की सूझी ।
ना हो सैना से निपटारा, प्रगट किया वल दुहु निज सारा ।
अंतिम तात प्रवल वलधारी, ना चलि सुत की याहि अगारी ।
वांध पुत्र को याने लीन्हा, पुन सुतकोही नृप पद दीन्हा ॥

दोहा–दुहू ठौर का राज्य दिय, आप विरक्ति होय ।
सुतने वंद्या तात को, कीन्ह नमन सब कोय ॥
सव हियमँह अचरज लिया, थे अति पूर्व कुभाव ।
अव सुलटा याका हृदय, मुनिपद का धर भाव ॥

धन्य धन्य धुनि गूंज मंचाई, जय जय कार चहू दिशि छाई।
को कह सकत घड़ी वह जा में हुये भाव मुनिवद के तामें ॥
सुगुरु ढिगै आ मुनिपद धारा, सर्व परिग्रह तत्क्षण त्यांरा।
तपैं उग्र तप आत्मविहारी; सहै परिषह बाइस सारी ॥

दोहा—कर्म निमित से ऊपजें, आतम भाव कुभाव।
कर्म उपाधी दूर हो, प्रगटे सहज स्वभाव ॥
कर्म निमित्तज भाव को, दूर तही मेंटो आत्म।
"नायक" रमत स्वरूपमंह, होय आत्म परमात्म ॥

॥ इति श्री चत्वारिंशततमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

इति श्री सरल जैन रामायण

प्रथमकांडः समाप्तः

चौ० बलबीरसिंह वाल्याण, अर्जुन प्रिंटिंग वर्क्स, मेरठ में मुद्रित।